रामकाव्यधारा अनुसंधान एवं अनुचिंतन

रामकाव्यधारा अनुसंधान एवं अनुचिंतन

•

डा० भगवती प्रसाद सिंह
आचार्य तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

लोकभारती प्रकाशन
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५ ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित
•
कापीराइट
डा० भगवती प्रसाद सिंह
•
प्रथम संस्करण १९७६
•
लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

मूल्य ३०.००

'भायप भगति'
के साक्षात् स्वरूप
परलोकवासी
दादा जोधासिंह
को
अर्पित

आत्मनिवेदन

राममक्ति-साहित्य से मेरा सम्बन्ध चन्दन-पानी का रहा है। कबसे ? कह नही सकता। उसके सम्बन्ध मे पढने-लिखने की रुचि, पढने-लिखने मे गति होने के साथ ही अकुरित हुई, किन्तु इस क्षेत्र मे अनुसधान की प्रवृत्ति आचार्य स्व० प० रामचन्द्र शुक्ल की प्रत्यक्ष प्रेरणा तथा तपानिधि प० चन्द्रवली पाण्डेय के प्रोत्साहन से जगी। इसके फलस्वरूप सरस्वती (जनवरी, १६४३) मे मेरा प्रथम लेख 'मूकरखेत' प्रकाशित हुआ। तुलसी साहित्य के सुधी विद्वानो मे उसका जैसा स्वागत हुआ, उससे मुझे परिष्कृत शोध प्रविधि अपनाने मे सहायता मिली।

राम काव्य के ऐतिहासिक विकास का अनुशीलन करते हुए तुलसीदास के पूववर्ती तथा समकालीन अनगिनत रामभक्त कवियो और काव्यग्रथो का सधान मिला। उनमे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रथ है—पदमुक्तावली। यह प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर मे सुरक्षित है। इसके अन्तगत १५वी तथा १६वी शती के अनेक निगुण सगुण रामभक्तो के पद सग्रहीत है। उनकी विषय-शैली की मीमासा करने से आचार्य शुक्ल का यह अनुमान तथ्याश्रित प्रतीत हुआ कि 'सूरसागर पहले से चली आती हुई हिन्दी गीतिकाव्य-परम्परा का एक अत्यन्त विकसित रूप है।' स्वामी रामानन्द से लेकर तुलसी के समकालीन महात्मा अग्रदास और उनकी परम्परा के रामभक्तो की पद-शैली की रचनाओ से उक्त विधा की लोक तथा सत समाज मे समान रूप से व्याप्त प्रतिष्ठा प्रमाणित हो गयी। अत तुलसीदास की जीवनी एव कृतित्व के अज्ञात एव अल्पख्यात तत्वो का अनुसधान तथा विश्लेषण अपनी साहित्य साधना का मुख्य उद्देश्य बन गया। इस सुदीघकाल-व्यापी शोध की अतयात्रा मे सचित तथ्यो और तत्वो को प्रकाश मे लाने के समय-समय पर अनेक निमित्त बनते रहे। प्रस्तुत ग्रथ उन्ही स्फुलिंगो का समवेत रूप है।

गहरे अनुशीलन से प्राप्त इन बिखरी हुई मुक्तामणियो को सग्रथित करते हुए मेरी दृष्टि इनके माध्यम से यथासम्भव न कवल रामभक्ति-काव्य धारा का

शृङ्खलाबद्ध वृत्त प्रस्तुत करने की ओर रही है, वरन् इस शृङ्खला की कुछ अनात और अननुसधानित कडियो को विद्वज्जनो के समक्ष प्रस्तुत करने तथा नवीन सदर्भ म सामान्यत समस्त राममक्ति-काव्य और विशेषत तुलसीदास के काव्य का आस्तिक दृष्टि स मूल्याकन करने की ओर भी रही है। इस लक्ष्य को दृष्टि मे रखकर निबधो को सकलित, नियोजित एव व्यवस्थित करने के कारण इनके प्रकाशन का ऐतिहासिक क्रम सुरक्षित नही रह सका है। यह तथ्य मेरे साहित्यिक व्यक्तित्व के विकास क्रम को लक्षित करने म बाधक हो सकता है। अत तत्वग्राही पाठको से मेरा विनम्र निवदन है कि वे इसके क्षीराश—राम-तत्व तथा उसके आस्वादक सतो की निष्ठा—को ग्रहण कर लें और नीराश—दुराग्रह तथा दृष्टिदोष को मरा अतर्मल धुलने के लिय छाड दें।

श्री जानकी नवमी वैशाख शुक्ल ९, स० २०३३
साकेत, बेतियाहाता, गोरखपुर। —भगवती प्रसाद सिंह

विषय-सूची

क्रमांक		पृष्ठ
१	आत्मनिवेदन	५
२	साम्प्रदायिक रामोपासना का प्रवर्तन	६
३	नाथयोग और रामभक्ति धारा	२७
४	श्री कृष्णदास पयहारी की योगमूला भक्ति	३१
५	मध्यकाल के अल्पख्यात रामभक्तों की कुछ नवप्राप्त रचनाएँ	४१
६	स्वामी अग्रदास और उनकी अप्रकाशित पदावली	७८
७	अकबर की रामनिष्ठा	१३४
८	तुलसीदास का गुरुधाम	१३७
९	रामलला नहछू पुनर्विचार	१६५
१०	मानवता और रामचरितमानस	१८९
११	तुलसी की लोकाराधना	२०६
१२	तुलसी का लोकानुभव	२३२
१३	मीराबाई के रामभक्ति-परक पद	२५६
१४	रामभक्ति साधना में योग तत्व	२६४
१५	तुलसी विषयक शोध का मूल्यांकन	२७८
१६	बिहार के रसिक संत	२९२
१७	तुलसीमत और वर्तमान जीवन संघर्ष	३१०
१८	मामा प्रागदास के कुछ नवप्राप्त छंद	३२०
१९	बाबा लक्ष्मीनारायण दास पौहारी	३२५
	परिशिष्ट (क) मीराबाई के रामभक्ति-परक पद	
	(ख) नामानुक्रमणी	

सांप्रदायिक रामोपासना का प्रवर्तन

पुराणों में रामावतार की प्रतिष्ठा हो जाने के साथ ही रामोपासना का द्वार उन्मुक्त हो गया। वाल्मीकि रामायण[1] तथा महाभारत[2] में हनुमान और विभीषण की रामभक्ति का जो वृत्त प्रस्तुत किया गया है, उससे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि रामोपासना का बीजारोपण सर्वप्रथम दक्षिण की आदिवासी जातियों—वानरों, ऋक्षों तथा असुरों में हुआ। हनुमान, सुग्रीव, जाम्बवंत, विभीषण आदि रामभक्त के रूप में लोकविश्रुत हैं। उत्तरी भारत में इसका प्रसार उन्हीं के माध्यम से हुआ। महाभारत काल में राम के साथ उनके भक्त, विशेष रूप से हनुमान की भी पूजा होने लगी थी। वनपर्व[3] में पांडवों के द्वारा की गई हनुमान-पूजा प्रकारान्तर से रामपूजा अथवा रामभक्ति का ही आनुषंगिक विकास माना जायगा। वाल्मीकि रामायण के अनुसार विभीषण ने ऐक्ष्वाकुओं के कुलदेव श्रीरंग का दिव्य विग्रह विमानसहित अयोध्या से लाकर श्रीरंगनाथ धाम में कावेरी की दो धाराओं के बीच स्थापित किया था। श्रीवैष्णव संप्रदाय में श्रीरंग राम से अभिन्न और श्रीरंगधाम वैष्णवभक्ति का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। ऐतिहासिक काल में शठकोप, कुलशेखर आदि प्रमुख आलवारों तथा नाथमुनि एवं रामानुज ऐसे अग्रणी वैष्णवाचार्यों को रामभक्ति का प्रसाद इसी दिव्यधाम में प्राप्त हुआ था।

व्यक्तिगत साधना में रामोपासना की यह परंपरा गुप्तकाल में अबाधरूप से चलती रही। महाकवि कालिदास ने अपने समय में 'रामगिरि'[4] की रामतीर्थ रूप में प्रतिष्ठा का संकेत दिया है। गुप्तकालीन इतिहास में भी चन्द्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता को 'भगवत् रामगिरि स्वामिन्' की उपासिका कहा गया है।[5] वराहमिहिर ने भी बृहत्संहिता में दाशरथिराम की उपासना के प्रचार की चर्चा की है। यह क्रम प्राचीन पांचरात्र संहिताओं के निर्माणकाल (चौथी से आठवीं

---

१ वाल्मीकि रामायण उ० का० ४०/१४ १७

२ महाभारत वनपर्व १४८/१६ १७, १८, २०

३ महाभारत वनपर्व १५१/१५, १६, १७

४ मेघदूत १

५ दि क्लासिकल एज, पृ० ४१७

शताब्दी) तक किसी प्रकार चलता रहा, इसका पता अहिर्बुध्न्यसंहिता के कतिपय उल्लेखों से लगता है।

यह द्रष्टव्य है कि प्रवर्तन काल से लेकर आठवीं शती तक रामोपासना व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में ही विद्यमान रही। उसका साम्प्रदायिक रूप इसके पश्चात् विकसित हुआ। साम्प्रदायिक साहित्य का प्रणयन भी तभी से आरंभ हुआ। श्री वैष्णव ऐतिहासिक काल में अपनी परंपरा का सूत्रपात शठकोप आलवार (नवीं शती) से मानते हैं। रामानंदीय सम्प्रदाय का प्रवर्तन श्रीसंप्रदाय के ही अन्तर्गत हुआ। अतएव राममक्त भी शठकोप को ही अपना प्रथम आचार्य कहते हैं। इस प्रकार रामभक्ति की साम्प्रदायिक धारा का प्रवाह नवीं शती से आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप में पाया जाता है।

आलवारों की रामभक्ति

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तरी भारत में भागवत धर्म का ह्रास होने लगा। उनके परवर्ती शासक मिहिरकुल यशोधर्मन् और हर्षवर्धन वैष्णवेतर धर्मों के अनुयायी थे। अतएव आश्रय और प्रोत्साहन के अभाव में, गंगा की घाटी तथा मध्यभारत से हटकर, द्रविड देश वैष्णवसाधना का मुख्य गढ़ बन गया। आठवीं शताब्दी से आलवारों की पीयूषवाणी से सिंचित हो भक्तिलता पुनः लहलहा उठी। इनकी संख्या बारह मानी जाती है। जिनमें प्रथम चार प्वायगार, भूतत्तार, पे, तथा तिरुमलिशाइ, प्रधानतया नारायण और विष्णु के उपासक थे। पाँचवें आलवार शठकोप थे। वे नम्मालवार के नाम से भी जाने जाते हैं। आलवारों में इन्हीं की सर्वाधिक प्रसिद्धि हुई। इनकी 'सहस्रगीति' में ही दाशरथि राम की अनन्य शरणागति का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है। 'दशरथस्य सुतं तं विना अन्यशरणवान्नास्मि'[1] में इनकी यह भावना स्पष्टतया व्यक्त हुई है। सम्प्रदाय में ये राम की पादुका के अवतार कहे जाते हैं। अपने समय के जिन ३२ दिव्यविग्रहों की स्तुति इन्होंने की है, उनमें राममूर्तियाँ भी हैं।[2]

वेंकटाचल के निकट तिरुपति में श्री रामचन्द्र की मूर्ति की स्थापना इन्होंने ही की थी। इसका उल्लेख साम्प्रदायिक साहित्य में पाया जाता है।[3] सदाशिव-

१ सहस्रगीति, ३/६/८
२ प्रपन्नामृत, पृ० ३६७
३ श्रीराम रहस्यत्रयाय (परि०), पृ० ४३, ४४

संहिता में कलियुग में रामतारक मंत्र के उपदेश से साम्प्रदायिक रूप में रामोपासना के प्रचार का श्रेय, इन्हीं को दिया गया है। इनकी साधनाभूमि वेंकटाचल बताई गई है—

कलिकलोद्भवानां च जीवानामनुकम्पया।
दयानुबोधिन साम्याद्विष्णु सर्वजनेश्वर ॥
कृतकृत्या तदा लक्ष्मीर्लब्ध्वा मंत्रं षडक्षरम्।
ददौ प्रीत्या तदा देवी विष्वक्सेनाय तारकम् ॥
वेङ्कटाद्रौ पुरा वेदा द्वापरान्ते पराङ्कुश।
विष्वक्सेनं समाराध्य लभिष्यति षडक्षरम् ॥
तत्समीपे महापीठे वङ्कट रत्नमण्डपे।
जपिष्यन्ति चिरं मंत्रं तारकं तिमिरापहम् ॥[1]

इसमें रामभक्ति के प्रचार में शठकोप आलवार का महत्त्व आंका जा सकता है। उनकी माधुर्यभक्ति की विवेचना आगे की जायगी।

छठवें आलवार शठकोप के शिष्य मधुर कवि हुए। साम्प्रदायिक ग्रंथों में इनकी जीवनी का जो अंश प्राप्त है, उससे इनके रामोपासक होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। प्रपन्नामृत में इनकी अयोध्यायात्रा, सरयूस्नान और सीताराम-पूजा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इन्होंने कुछ दिन अयोध्यावास भी किया था।

सातवें आलवार केरल के राजा कुलशेखर प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं। रामायण को वे वेद के समान पूज्य मानते थे।[2] कहा जाता है कि रामचरित में उनकी इतनी आस्था थी, कि एक बार कथा में व्यास के मुख से खरदूषण द्वारा विशाल

---

१ वही (सदाशिव संहिता से उद्धृत), पृ० ४४

२ तस्मिन्कालेऽथ वेदान्तिस्तस्माद्बदरिकाश्रमात्।
अयोध्यामगमद्धीमान्कविमधुरसंज्ञक ॥
स्नात्वाथ सरयूनद्यां वेदान्ती भगवत्पर।
ससेव्य सीतासहितमयोध्यारघुनन्दनम् ॥
कञ्चित्कालमुवासात्र नित्यदासरत सन्॥ प्रपन्नामृत, पृ० ३६२

३ वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेद प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥
वेदतुल्यमिदं साक्षाच्छ्रीमद्रामायणं परम्।
काल संक्षिप्य तद्भक्त्या भगवान्कुलशेखर ॥ वही पृ० २७८

रामानन्दी सेना के साथ काशी राम पर आक्रमण किए जाने का वृत्तान्त सुनकर वे आवेश में आ गए थे और प्रभु की सहायता के लिए झट अपनी सेना को कूच करवा दिया था। इसी भाँति एक अन्य अवसर पर सीताहरण का वृत्तान्त सुनते ही, उनके उद्धार के लिए उन्होंने लंका पर धावा बोल दिया था और सेना सहित समुद्र में कूद पड़े थे।[1]

नाभादास ने भक्तमाल के नाम से इनका परिचय देते हुए इनका स्मरण किया है। प्रियादास ने इन्हें 'आदर्श रामभक्त' कहा है। कुलशेखर के संबंध में यह भी प्रसिद्ध है कि उन्होंने राम की प्रतिमा से अपनी पुत्री उनके प्रतिनिधि श्रीरंगदेव को ब्याह दी थी।[2] आराध्य के प्रति इस अगाध अनुराग के उदाहरण भक्तिसाहित्य में दुर्लभ हैं।

रामभक्ति के ये भाव कुलशेखर की कृतियों में भी अभिव्यक्त हुए। तमिल भाषा के रामायण ग्रंथ में उनके द्वारा वर्णित सम्पूर्ण रामकथा, भक्तिसाहित्य की एक अमूल्य निधि है। सन्त पल्ली बारह भक्ति के उद्गारों से आत्मसात् गहन

---

१ वही, पृ० २८०

२ जब लंकनि आगे गये, प्रगट प्रेम कौतुक प्रचार।
सरनागत हित सूर भवन तजि कूदि पर्यो ॥
मार-मार करि तुरत कूदि सागर में ढोरो।
श्रीरंग को अनुराग होइ हितसुख पाइयो ॥
कहै नाभो बात्सल्य राम दिखराय तब हारयो ॥
भक्तमाल सटीक (रूपकला) पृ० १६७

रामचरित के दर्शन होते हैं। आरम्भ में अयोध्या और राम की स्तुति करके आठवें छंद तक राम के राज्याभिषेक की कथा कही गई है। इसके पश्चात् सीता के भू-प्रवेश का उद्देश्य पृथ्वी में अपने अणुपरमाणुओं को मिलाकर लवकुश के समान रामयशगायकों को जन्म देना बताया गया है। दसवें छंद में उनकी सेवा में गरुड़ की नियुक्ति का कारण भक्तों की रक्षा कही गई है। ग्यारहवें श्लोक में राम के मंत्री और दूत हनुमान की वंदना की गई है। अंत में राम का गुणगान करने वाले भक्तों को परम पद की प्राप्ति का अधिकारी कहा गया है।[1] इस विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि वस्तुतः साम्प्रदायिक रामभक्ति की उद्भव-स्थली, द्रविड देश के उपर्युक्त आलवार भक्तों की भावसाधना ही है।

वैष्णवाचार्यों की रामभक्ति

वैष्णवों के चार सम्प्रदायों—श्री, सनक, ब्रह्म और रुद्र—में रामभक्ति के सूत्र केवल श्रीसंप्रदाय और ब्रह्मसम्प्रदाय, में ही पाये जाते हैं। उसकी साम्प्रदायिक परम्परा भी इन्हीं दो के भीतर पल्लवित हुई। प्रथम के आदि आचार्य नाथमुनि और द्वितीय के मध्व थे।

श्रीसंप्रदाय के आचार्यों की रामभक्ति

आलवारों के उत्तराधिकारी श्रीसंप्रदाय के आचार्य हुए। ये उच्चकोटि के विद्वान् होने के साथ ही भक्तिरस के भोक्ता भी थे। आलवारों की भांति इन्होंने विष्णु तथा उनके अवतारों में कृष्ण, वामन और नृसिंह के साथ रामावतार में भी अपनी गूढ़ आस्था और तद्विषयक साहित्यरचना में रुचि दिखाई। इसीलिए रामभक्तों में ये पार्षदों के अवतार के रूप में पूज्य हैं।[2] वैसे श्रीसंप्रदाय में लक्ष्मीनारायण को ही प्रमुखता दी जाती है, किन्तु सीताराम की उनसे एकात्मता स्थापित कर इन उदाराशय और दोषदर्शी महात्माओं ने सम्प्रदाय के भीतर रामभक्ति के प्रति एक अद्भुत आकर्षण पैदा कर दिया।

---

१ प्रपन्नामृत, पृ० २८५

२ देखिये—'पेरुमल—तिरुमुडि' (स० पी० कृष्णमाचार्य), पृ० १५४-५७

३ प्रपन्नामृत, पृ० ४५०

४ श्री वैष्णव सम्प्रदाय के एक मुख्य सिद्धान्त ग्रन्थ—'बृहद्ब्रह्म संहिता' में सीताराम और लक्ष्मीनारायण की अभिन्नता दिखाई गई है—
तत्रायोध्यापुरी रम्या यत्र नारायणो हरिः ।

प्रथम आचार्य नाथमुनि (८२४ ई०—६२४ ई०) थे। ये रघुनाथाचार्य तथा रंगाचार्य के नाम से भी जाने जाते हैं। 'दिव्य देशों' का पर्यटन करते हुए, इन्होंने अयोध्या और चित्रकूट का भी दर्शन किया था।[1] इनके द्वारा आराधित कोदण्ड पाणि राम की मूर्ति बालाजी पर्वत पर बड़े जियरमठ मे अब तक विद्यमान है। सर्वप्रथम श्रीरामानुजाचार्य ने इसी विग्रह से प्रेरणा प्राप्त की थी। तत्पश्चात् गोविन्दराज ने रामायण की विश्रुत, 'भूषण' टीका की रचना, इसी स्थान पर, हनुमान जी के समक्ष बैठकर की थी। 'श्रीमत्यजनभूधरस्य शिखरे श्रीमारुत सन्निधौ' से इसकी पुष्टि आप ही हो जाती है। इनके द्वारा विरचित 'नाथमुनि योगपटल' और 'मानसिक ध्यान रामायण' नामक दो रामभक्तिविषयक ग्रन्थ बताये जाते हैं।[2] इनमे प्रथम के सम्बन्ध मे श्री रामटहलदास का कहना है कि उसकी तोताद्रिमठ से प्राप्त ३०० वर्ष पुरानी प्रतिलिपि उपलब्ध है।[3] इसके ४०वे पटल से इन्होंने राममत्र-वैभव पर लिखे गये कुछ छन्द भी उद्धृत किये हैं।[4] इसके अतिरिक्त प्रपन्नामृत मे नाथमुनि के महाप्रस्थान का जो वृत्तान्त दिया गया है, उससे रामचरणों मे उनकी अलौकिक श्रद्धा व्यक्त होती है। कहते हैं एक दिन नाथमुनि को ढूंढते हुए दो धनुर्धर राजकुमार, एक सुन्दरी और बलवान वानर के साथ, उसके घर आये। उनकी पुत्री से पूछने पर उन्हे पता चला कि नाथमुनि

रामरूपेण रमते सीतया परया सह ॥
आविर्भूता महालक्ष्मी सीता तु विभवे मता ।
आविर्भाव क्षितौ जाता जानकी दिव्यरूपिणी ॥
ब० ब० स०, पृ० ८४, ८६

१ प्रपन्नामृत, प० ४५०,

२ श्रीरामरहस्यत्रयाथ (परि०), प० ४५

३ वही, प० ४६

४ एव श्रीरामदेवस्य मत्राक्षरषडाक्षर ।
रा रामाय नम इति मत्रराजो मितार्थद ॥
ध्यायेदथ जगन्नाथ राम दशरथात्मजम् ।
पर ब्रह्मेति सचिन्त्य वर्णयस्य विभूतिभि ॥
तत श्रीराममत्रस्य षडक्षरनियोगिन ।
रामबीजेन रामस्य परमपदो भवेत् ॥
(श्रीनाथमुनि योगपटल से उद्धृत)
श्री रामरहस्यत्रयार्थ (परि०), प० ४६-४७

कही बाहर गये हैं। अतएव चारो आगन्तुक लौट गये। पिता के घर आने पर पुत्री ने सारा हाल कह सुनाया। नाथमुनि तुरन्त ही उनके दर्शना के लिए घर से निकल पडे। गाँवो, नगरो, पर्वतो और जगलो म ढूढते-ढूढते जब वे हताश हो गये, तो आराध्य का साक्षात्कार लाभ करने के उद्देश्य से उन्होने परमधाम की यात्रा की।[1]

नाथमुनि के अनन्तर पुडराकाक्ष आचार्यपीठ के अधिकारी हुए। उनका रामार्था नामक राममक्ति का ग्रन्थ दक्षिण के 'दिव्य दशो मे पाया जाता है।[2] तीसरे आचाय राममिश्र थे। इनकी दो रचनाओ 'रामषडक्षर प्रपत्ति स्तोत्र' और वाल्मीकि-रामायण की 'भावप्रकाश टीका' का उल्लेख है। नाम से ही इनका प्रतिपाद्य स्पष्ट है।[3] श्री राममिश्र के शिष्य यामुन मुनि (९१६-१०४० ई०) असाधारण महत्व के आचाय हुए। वास्तव मे श्रीसप्रदाय की स्थापना तथा उसके सिद्धान्तो का प्रवतन इन्ही की प्रेरणा का फल था। अपनी प्रसिद्ध रचना 'आलवन्दार स्तोत्र म, इन्होंने राम की विभीषण से की गई प्रतिज्ञा 'सकृतदेव प्रपन्नाय की दुहाई दी है और अपने पितामह नाथमुनि की अकृत्रिम राममक्ति का स्मरण दिलाकर, उसी नाते से चरणो म स्थान पाने की पात्रता

---

१ सम्यगवेषयस्तत्र ग्रामेषु नगरेषु च।
तौ राजपुत्रौ नाथाय काननेषु च सादरम् ॥
चचार लग्नहृदयस्तेषा सदर्शने तदा।
तेषामलभमानोऽथ दर्शन सुमहात्मनाम् ॥
कुत्रापि भूतले योगी क्वचिदपि यत्नत।
वकुठेऽपि च तान्द्रष्टु यतेयमिति वाञ्छया ॥ प्रपन्नामृत, पृ० ४१८

२ श्रीरामरहस्यत्रयाय (परि०), पृ० ४७

३ रामटहलदास जी ने राममिश्र स्वामी के राममन्त्रविषयक १० श्लोक 'श्रीराम षडक्षर प्रपत्ति स्तोत्र' से उद्धृत किये हैं। उनमे से नमूने के लिये दो नीचे दिये जाते हैं—
रामायणपरत्वार्थप्रतिपाद्यपर स्मृतः
एकान्तिकाना सेव्योऽय मन्त्रराज षडक्षर ॥
गुहपक्षीप्रकाकादीन भल्लप्लवगराक्षसान।
मोक्षो दत्त पुरा येन स मे त्राता भविष्यति ॥
वही, पृ० ४८

दिखाई है।[1]

रामानुजाचार्य (१०१६-१११७ ई०) यामुन मुनि के प्रशिष्य थे। इन्होंने अपनी जीवन-यात्रा का अधिकांश श्रीसम्प्रदाय के सैद्धान्तिक ग्रन्थों की रचना और प्रचार में बिताया। सम्प्रदाय के अन्तर्गत ये अपने नाम-गुणानुसार शेष अथवा लक्ष्मण के अवतार माने जाते हैं और अहर्निश अग्रज की सेवा ही इनकी निष्ठा बताई जाती है।[2] प्रसिद्ध है कि महापूर्ण स्वामी ने इनका दीक्षासंस्कार रामविग्रह के सामने कोदण्ड राममंदिर (वेंकटाचल, तिरुपति) में किया था।[3]

वाल्मीकि रामायण में इनकी अत्यधिक निष्ठा थी। उसकी चौबीस आवृत्तियाँ इन्होंने शैलपूर्ण स्वामी से मनोयोगपूर्वक सुनी थी।[4] रामतीर्थों में इनकी भक्ति इसी से जानी जाती है कि जैन राजा कृमिकंठ द्वारा आक्रान्त चित्रकूट का इन्होंने उद्धार किया था[5] और अयोध्या का भी दर्शन करने आये थे। प्रपन्नामृत के अनुसार यादवाचल पर इन्होंने स्वयं राम के लीलाविग्रह सम्पत्कुमार[6] की स्थापना की थी।[7] उसमें इनकी अनुरक्ति इतनी दृढ़ हो गयी थी कि आलवारों तथा अन्य पूर्वाचार्यों द्वारा आराधित श्रीरंगदेव को भी ये भूल गये थे। श्रीभाष्य

---

१ ननु प्रसन्नः सकृदेव नाथ तवाहमस्मीति च याचमानः।
तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां मदेकवर्ज्यं किमिदं व्रतं ते ॥
अकृत्रिमत्वच्चरणारविन्दप्रेमप्रकर्षावधिमात्मवन्तम्।
पितामहं नाथमुनिं विलोक्य प्रसीद मद्वृत्तमचिन्तयित्वा ॥
आलवन्दारस्तोत्र, पृ० ६७, ६८

२ श्रीरामो भगवान्पूर्वं तत्र ज्येष्ठो भवद्यथा।
तथवाभूत्कलियुगे श्रीमाल्लक्ष्मणदेशिकः ॥ प्रपन्नामृत, ४५०

३ सन्निधौ रामचन्द्रस्य कोदण्डशरधारिणः।
तप्ताभ्यां शंखचक्राभ्यां विधिनाग्नौ कृपानिधिः ॥ वही, पृ० ३४
यह कोदण्डराम मंदिर अब तक विद्यमान है। विशेष विवरण के लिए देखिये—कल्याण, तीर्थाङ्क, पृ० ३४६

४ वही, पृ० १००

५ वही, पृ० ८७

६ वही, पृ० १०८

७ वही पृ० १५५

८ सम्पत्सुतस्य जनदृष्टिमनोहरस्य लावण्यसम्पदि निमग्नमना यतीन्द्रः।
विस्मृत्य रंगपतिमागमभूधरेन्द्रं तस्थौ सुखं विविधदास्यपरम्पराभिः ॥
वही, पृ० १५६

की रचना इसी स्थान पर हुई थी।[1] 'शरणागति गद्य' में राम के प्रति अभिव्यक्ति भाव, इनकी अगाध रामभक्ति के द्योतक हैं।[2]

श्री रामानुज की शिष्यपरम्परा में, कुरेश स्वामी के 'पंचस्तवी', पराशर भट्टाय के 'गुण रत्न कोष', लोकाचार्य के 'श्रीवचनभूषण' और देवराजाचार्य के 'वरवरमुनि शतक' आदि ग्रन्थों में पूर्वाचार्यों की रामभक्ति का अखंड प्रवाह मिलता है। इनके पीछे भी श्रीसम्प्रदाय के आचार्य—नृसिंहार्य, ताताचार्य और लक्ष्मीकुमार ताताचार्य रामभक्ति का प्रचार करते रहे। विजयनगर के वीरशैव मतानुयायी राजा विरूपाक्ष (द्वितीय) को 'पंचसंस्कारों से भूषित कर रामभक्त बनाने'[3] का श्रेय श्री नृसिंहार्य का ही है। प्रपन्नामृत के इस उल्लेख का समर्थन तत्कालीन इतिहास भी करता है।[4] विजयनगर के राजा विरूपाक्ष (द्वितीय) द्वारा निर्मित 'हजारा राममंदिर' उस प्राचीन नगर के ध्वसावशेषों के बीच खड़ा आज भी

---

१ वही, पृ० १४०

२ 'अपारकारुण्यसौशील्यवात्सल्यौदार्यैश्वर्यसौन्दर्यमहोदधे ... काकुत्स्थ।'
'मा ते भूदत्र संशयः अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन, रामो द्विर्नाभिभाषते।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

इति मयैव ह्युक्तम्, अतस्त्वं तत्वतो मज्ज्ञानदर्शनप्राप्तिषु निस्संशय सुखमास्स्व।" शरणागति गद्य, पृ० ११, १२

३ नृसिंहार्य इति ख्यातः सर्वशास्त्रविशारदः।
रामभक्तो विशेषेण नित्यं रामकथाप्रियः॥
विरूपाक्षस्ततो धीमान्वीरशैवमतोऽपि सः।
पुत्रमित्रकलत्रादिसहितश्च स नागरः॥
पंचसंस्कारसम्पन्नो बभूव सुमहायशः।
राजांगुलीये श्रीराममुद्रा दत्तरा ख्यपात्॥
श्रीराममुद्रा सर्वत्र तदा प्रभृति विश्रुता॥ प्रपन्नामृत, पृ० ४८५

४ प्रपन्नामृत, पृ० ४७७

५ The Hazara Ram Temple, most probably the work of Virupaksha II is a modest but perfectly finished example of this style. The inner walls of the temple are decorated in relief with scenes from the Ramayana.
A History of South India
(K A Nilkantha Shastri) P 464

अपने निर्माता की रामभक्ति का साक्ष्य दे रहा है।

प्रपन्नामृत म वर्णित परवर्ती आचार्यों की रामभक्ति सम्बन्धी अनेक कथाओ से यह ज्ञात होता है कि पन्द्रहवी शताब्दी तक विकसित होते-होते श्रीसप्रदाय के भीतर राम की प्रतिष्ठा इतनी बढ गई थी कि आचार्य लोग उनके चरित का गुण-गान ही नही करते थे प्रत्युत उनकी विधिवत् पूजा और राममत्र सहित पचसस्कार दीक्षा का भी प्रचार करने लगे थे।

ब्रह्मसप्रदाय मे रामोपासना

श्री मध्वाचार्य (११९९-१३०३ ई०) के ब्रह्मसप्रदाय मे रामभक्ति के सूत्र आरभ ही से मिलते हैं। उत्तर भारत की दिग्विजय करके बदरिकाश्रम से वे दिग्विजयी राम की एक मूर्ति दक्षिण ले गये थे।[1] प्रसिद्ध है कि अपने शिष्य नरहरितीर्थ से, १२६४ इ० के लगभग, उन्होने जगन्नाथपुरी स मूल रामसीता की मूर्ति मगाई थी। सभवत यही विग्रह उन्होने अपने अष्ट शिष्यो म से एक को दिया था, जिसकी स्थापना उत्तरादिमठ मसूर म 'मूलराम' क नाम से हुई थी। इसके अतिरिक्त उडुपी के 'फलमारमठ' म प्रतिष्ठित रामविग्रह भी मध्वाचार्यप्रदत्त बताया जाता है। काशी म हनुमान घाट पर स्थापित 'मध्वाश्रम', मध्व सप्रदाय की रामभक्ति शाखा की मूल गद्दी—उत्तरादिमठ—से ही सम्बद्ध है।

मध्वाचार्य हनुमान के अवतार कहे जाते हैं।[3] मध्व विजय म रामदूत हनुमान का यशगान किया गया है। साम्प्रदायिक परपरा म, हनुमान की राम-भक्ति सम्बन्धी एक छद प्रचलित चला आता है, जिसका भाव यह है कि रामाचन

१ वष्णविज्म शविज्म (भडारकर), पृ० ६६

२ माध्व सप्रदाय मे मूलराम विग्रह की वदना का श्लोक नीचे दिया जाता है। इससे उसके प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश पडता है—

सीतायुक्तमजादिपूजितपद श्रीमूलराम विभुम्।
राम दिग्विजयाद्यमेवममल श्रीवशराम सुधी ॥
व्यासाख्या प्रतिमा सुदर्शनशिला श्रीविट्ठलाचार्या मुदा।
चक्राकानपि पूजयन विजयते मध्यप्रमोदो गुरु ॥

३ राममत्र निज कण सुनाया। ( ) मे तत्व लखावा ॥
सप्रदाय विधि मूल प्रधाना। आचारी तामह हनुमाना ॥
मध्व रूप सोई अवतरिया। मत अभेद जिन खडन करिया ॥

मू० रा० मि०, पृ० ४५।

के लिए साम्प्रदायिक आचार के अनुसार अजलि म पुष्प धारण करने मे जितना प्रयत्न उन्हे करना पडता है उतना सजीवनी बूटी समेत द्रोणाचल को उठाकर लाने म भी नही करना पडा था।[1] माध्वमत म हनुमान क साथ भीम का भी बडी प्रतिष्ठा है। हो सकता है, वायुपुत्र होने से हनुमान के बधुत्व के कारण ही उन्हें यह गौरव प्राप्त हुआ हो। उत्तरादिमठ की शाखाओ म राम और हनुमान क साथ उनकी भी मूर्ति पूजी जाती है।

मध्वाचार्य विरचित 'द्वादश स्तोत्र' मे जानकीकान्त राघव की वदना भावपूण शैली म की गई है।[3] माध्व-सम्प्रदाय म रामोपासना क ये बीज आगे चल कर रामभक्ति की स्वतत्र परपराओ की स्थापना मे सहायक हुए। १८वी शती के विख्यात रामभक्त निम्बाचार्य 'रामसखे इसी मत क अनुयायी थे। अयोध्या तथा मैहर (मध्य प्रदेश) में स्थापित गद्दियो की परपरा अब तक चली आती है। माध्वसम्प्रदाय म रामभक्ति का प्रसार मात्र इसी शाखा द्वारा हुआ, जो उसके विशाल स्वरूप को देखते हुए नगण्य ही कहा जायगा। उसकी मुख्य धारा कृष्ण-भक्ति को लेकर चली, गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय अथवा चैतन्यमत भारतीय धम-साधना म उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूण देन है।

रामावत सम्प्रदाय की स्थापना

रामानुजाचाय की परपरा क बारहवें आचाय हर्यानन्द स्वामी क समय तक श्रीसम्प्रदाय क अन्तगत रामभक्ति का प्रचार दक्षिण भारत म होता रहा। उत्तरी भारत म रामगगा क भगीरथ बने स्वामी राघवानन्द। य स्वामी हर्यानन्द के शिष्य थे, जिनका आविर्भाव आचाय रामानुज की परपरा म बारहवी पीढी मे हुआ था।

---

१ रामाचने यो नयत प्रसून द्वाभ्या कराभ्यामभवत्प्रयत्न ।
एकेन दोष्णा नयतो गिरीन्द्र सजीवनाद्याश्रयमस्य नाभूत् ॥

२ प्रथमो हनुमन्नाम द्वितीयो भीम एव च ।
पूणप्रज्ञस्तृतीयस्तु भगवत्कायसाधक ॥

३ 'राघव राघव राक्षसशत्रो मारुतिवल्लभ जानकीकान्त'—द्वादशस्तोत्र (मध्वाचाय), पृ० ६/४

४ रामानुजाचाय—गोविन्दाचाय—भट्टाक स्वामी—वेदान्ताचाय—कलिजित स्वामी—कृष्णाचाय—लोकाचाय—शलेशस्वामी—वरवरमुनि—देवाचाय—पुरुषोत्तमाचाय—हर्याचाय—राघवानद। गलता गद्दी (जयपुर) की आचाय

नाभादास के अनुवर्ती राघवदास ने स्वरचित भक्तमाल म इस परपरा के विशिष्ट आचार्यों का परिचय देते हुए लिखा है—

इम रामानुज क पाटि, पटेतर देवाचारिय।
देवाचारिय के शिष्यो, हय हरियानद आरिय।
हरियानद करि हेत, राघवानद निवाजे।
ताके रामानद महत महिपुर में बाजे॥
अब राघो रामानद के है, अनतानद सिष बडो।
येकादस सिष आर है, आदि पषित अनुक्रम पढ़ो॥[1]

स्वामी हर्यानद रामोपासक थे। उन्ही के आदेश से रामभक्ति का प्रचार करने के लिए राघवानद ने आचार्यपीठ से विदा लेकर उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान किया था। यहाँ पहुँचकर इन्होने अयोध्या, काशी, प्रयाग आदि तीर्थों का पर्यटन करते हुए स्थिति का अध्ययन किया और रामोपासना के प्रसार की पृष्ठभूमि तैयार की। इसके पश्चात् दक्षिण को लौट गये। आचार्य पीठ म पहुँचने पर इन्हे गुरु के देहावसान का समाचार मिला। गद्दी पर गुरुभाई को बैठे देख उनसे बडे प्रेम स मिले। यही इनकी माता भी रहती थी। उनका चरण-वदन किया। मन्दिर म जब 'पगत' का समय आया तो वहाँ के कर्मचारियो ने इनका आसन पक्ति से अलग लगाया। जिसका कारण यह था कि राघवानन्द जी आचार-व्यवहार म वैष्णवमात्र म भेद नही रखते थे। उनका यह सिद्धान्त श्री वैष्णवो की उस गद्दी की सदाचार-परपरा के विरुद्ध पडता था। गुरुभाइयो के इस व्यवहार से खिन्न हो वे काशी चले आये और फिर आजन्म यही रह कर रामभक्ति का प्रचार करते रहे। पचगगा घाट पर इनकी मढ़ी के अवशेष आज भी पाये जाते हैं। 'हरिभक्त रसामृत सिंधुवेला' नामक ग्रथ मे अनतस्वामी ने भी राघवानद के दक्षिण से आकर उत्तर भारत मे राममत्र प्रचार करने की चर्चा की है। इनकी

परपरा यही है। भक्तमाल मे दी गई परपरा से इसमे भिन्नता केवल ११वें आचार्य के नाम मे पाई जाती है। भक्तमाल के अनुसार हर्यानाय देवाचार्य जी के शिष्य थे, किन्तु इससे वे पुरुषोत्तमाचार्य के शिष्य ठहरते हैं।

१ राघवदासकृत भक्तमाल, पृ० ५१

२ गद्दी प अपर गुरु भाई को बैठे विलोकि,
करिकै प्रणाम मिले परस्पर धाइकै।
माता तह आई ताके पद सिर नाइ,
पाई सुखद असीस लह्यो आनद अघाइकै।
मदिर मे तीरथ ल पगति मे आये जब,
सदाचार रीति ते बैठारे बिलगाइ कै।

'सिद्धान्त पचत मात्रा'[2] नामक रचना इधर खोज म मिली है। उससे ज्ञात होता है कि ये योगपरक-सगुण-रामभक्ति के प्रतिपादक थे। अत इष्टदेव की पूजा मे आरती, अर्घ्य, चरणामृत आदि बाह्य उपचारो की आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी आतरिक श्रद्धा को अधिक महत्त्व देते थे। प्रसिद्ध है कि काशी मे इन्होंने शाकरमतानुयायी, प्रयागनिवासी, कान्यकुब्ज ब्राह्मण रामदत्त अथवा रामभारती[3] को राममत्र की दीक्षा दी। यही आगे चलकर रामानद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वामी रामानद

स्वामी रामानद रामोपासना के इतिहास मे एक युग-प्रवर्तक आचार्य हैं। उसे एक सगठित तथा स्वतन्त्र सम्प्रदाय का रूप देना इन्ही का काम था। इनके पूर्व श्रीसम्प्रदाय मे श्रीराम की प्रतिष्ठा होते हुए भी प्रधानता लक्ष्मीनारायण को ही दी जाती थी। आरभिक आचार्यों की दृष्टि मे दोनो समान रूप से पूज्य थे, किन्तु सम्प्रदाय के प्रसार के साथ उसकी कुछ शाखाओ मे भेदपूर्ण व्यवहार होने लगा था। इसके साथ ही वैष्णवाचार के निर्वाह की भी समस्या थी। श्रीसम्प्रदाय के भीतर रामभक्तो का वर्ग अपने सहधर्मी अन्य वैष्णवो की अपेक्षा आचार-व्यवहार मे अधिक उदारता का समर्थक था। स्वामी राघवानन्द को इसी कारण आचार्य पीठ से बहिष्कृत होने का दड मिला था। दोनो वर्गों म कटुता का एक और कारण उपस्थित हो गया था। वह था रामभक्तो की विचारधारा पर नाथ पन्थ का प्रभाव। राघवानन्द जी की 'सिद्धान्त पचत मात्रा' म उसकी पूरी छाप दिखाई देती है। 'सदाचार'-परायण तथा भक्तिप्रधान वैष्णवसम्प्रदाय से सामाजिक एव व्यक्तिगत आचार को अपेक्षाकृत गौण स्थान देने वाली इस ज्ञानमार्गी शैव साधना का परपरागत विरोध था। इस प्रकार के मौलिक मतभेदो के कारण अपनी मातृभूमि, द्रविड देश म विकास की सम्भावना न देखकर, रामोपासना, आचार्य पीठ से स बिन्न हो, राघवानन्द के साथ उत्तर भारत आई थी। रामानन्द के हाथो वह सर्वांग समृद्ध बनी।

वैलि अभिमान उर याग बलआन कही,
करौ शुद्ध वापी जल मधुर बनाइक ॥ र० प्र० भ०, पृ० ११

१ वदे श्रीराघवाचार्य रामानुजकुलोद्भवम्।
यास्याद्युत्तरमागत्य राममत्र प्रचारकम् ॥
योगप्रवाह, प्रथम स० २००१, पृ० २२ (पाद टिप्पणी) मे उद्धृत।

२ र० प्र० भ०, पृ० १२

३ श्रीमद्रामानद दिग्विजय, भूमिका, पृ० २३

सैद्धातिक वि`षतायें

स्वामी रामानन्द ने श्रीसम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत दशन और प्रपत्तिसिद्धात का आधार लेकर रामायत सप्रदाय का सगठन किया। इसम उन्होंने कुछ नये विचार रख, जो पुराने मत के विरुद्ध पडते हुए भी सामयिक परिस्थिति क अनुकूल तथा लोकोपयोगी थ। इसकी प्रेरणा उन्हे राघवानन्द जी म मिली थी, इसम सदेह नही। उन्होने श्रीवैष्णवो के नारायणमत्र के स्थान पर रामतारक अथवा षडक्षर राममत्र को साप्रदायिक दीक्षा का बीज मत्र माना बाह्य सदाचार की अपेक्षा साधना मे आन्तरिक भाव की शुद्धता पर जोर दिया, जाति पाँति छुआ-छूत, ऊच-नीच का भाव मिटा कर वैष्णव मात्र म ममता का समर्थन किया, नवधा म परा और प्रेमासक्ति का श्रेयस्कर बताया और साप्रदायिक सिद्धान्तो के प्रचार मे परपरापोषित सस्कृत भाषा का अपेक्षा हिन्दी अथवा जनभाषा को प्रधानता दी। एक आचाय होने के नाते साप्रदायिक विचारो के निरूपण मे उन्होने जहाँ एक ओर प्राचीन पद्धति का सत्कार कर 'वैष्णवमताब्जभास्कर और 'रामार्चनपद्धति की रचना सस्कृत म की वही दूसरी ओर रामरक्षास्तोत्र सिद्धान्त पटल ज्ञान लीला ज्ञान तिलक और योगचिंतामणि आदि हिन्दी रचनाओं में तत्कालीन आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो से उत्पन्न नवीन आस्थाओ और विचारो को भी स्थान दिया। शैव तथा शाक्त पथियो के प्रभाव स समाज मे तत्र, मत्र कीलक-कवचादि तात्रिक उपासना के अगो के प्रति लोगो का आकर्षण देख उन्होने रामोपासना म भी उसकी व्यवस्था की। रामरक्षा की रचना इसी उद्देश्य से हुई थी। इसी प्रकार नाथपथी उपासको क आदश पर सत जीवन क प्रत्यक कृत्य के लिए उन्होने पृथक-पृथक मत्रो की रचना कर सिद्धान्त पटल का निर्माण किया था। उनक ग्रन्थो की प्रामाणिकता म बहुतो को सदेह है। तो भी इतना तो निश्चित ही है कि रामानन्द ने जनवाणी का सत्कार करते हुए सस्कृत तथा हिन्दी (तत्कालीन लोकभाषा) दोनो भाषाओ मे अपने विचारो का प्रकाशन किया था।

यह सब केवल इस उद्देश्य स किया गया कि रामोपासना युगधर्म के अनुकूल बने और पथो के दलदल म फसी हुई जनता का उद्धार करके उन्हें उचित माग प्रदशन कर सके।

साप्रदायिक सगठन

साप्रदायिक सिद्धान्तो क प्रवर्तन के पश्चात् उनके प्रचार की समस्या सामने आई। स्वामी रामानंद ने इसे जितनी सफलता के साथ हल किया उसस उनकी

अद्भुत संगठन शक्ति का परिचय मिलता है। इस्लामी शासन के आतंक से त्रस्त उत्तरी भारत के प्रमुख तीर्थों में, उन्होंने अपने केंद्र स्थापित किये। इस नवीन सम्प्रदाय के अनुयायी वैरागी कहलाये। ये तीर्थों में जम कर रामभक्ति का प्रचार करने लगे। इससे यवन शासकों की असहिष्णुता से प्रोत्साहित मुसलमानों द्वारा नष्ट भ्रष्ट किये जाने से तीर्थों की रक्षा हुई। इसके साथ ही बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को राम तारक मंत्र की दीक्षा देकर पुनः हिन्दू बनाने का क्रम भी चलाया गया।[1]

भविष्यपुराण में अयोध्या में आये दिन घटने वाली इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख मिलता है—

म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानंदप्रभावतः।
संयोगिनश्च ते ज्ञेया अयोध्यायां बभूविरे॥
कंठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता।
भाले त्रिपुंड चिह्नं च श्वेतरक्तं तदाभवत्॥
भविष्य पुराण, ३/४/२१

व्यक्तित्व की व्यापकता

स्वामी रामानंद के द्वारा की गई देश और धर्म के प्रति इन अमूल्य सेवाओं

---

१ 'रामानंद की हिंदी रचनायें' के विद्वान संपादक डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का इस सम्बन्ध में कहना है "हिंदू धर्म से बिछुड़े हुए पूर्वजों को स्वामी रामानन्द ने फिर से हिंदूधर्म की गोद में स्थान दिया था। इसी प्रकार संयोगियों को जिन्हें फैजाबाद के नवाब ने बल से मुसलमान बना लिया था, उन्होंने हिंदू बनाया" (रा० हिं० र०, पृ० ३०)। यह विचारणीय है कि नवाब वंश के प्रथम सूबेदार सआदत खाँ बुर्हानुलमुल्क की अवध में नियुक्ति १७३२ ई० में मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने की थी और वह अयोध्या में किला मुबारक (वर्तमान लक्ष्मण किला) नामक स्थान पर रहता था। उसके उत्तराधिकारी दूसरे नवाब शासक, अब्दुल मंसूरअली खाँ सफदर जंग (१७३९-१७५४ ई०) ने, फैजाबाद को नगर का रूप देकर, उसे अपनी राजधानी बनाया। इस प्रकार रामानन्द जी के समय (१४१० से १५१० ई० अथवा १३५६-१४६२ ई०) और फैजाबाद में नवाबी शासन के स्थापना काल में ३०० से अधिक वर्षों का अंतर पड़ जाता है। अतएव डा० बड़थ्वाल का उक्त मत ग्राह्य नहीं है। हो सकता है अयोध्या के नवाब से उनका तात्पर्य यहाँ के मुसलमान सूबेदार से रहा हो।

ने सभी सप्रदाया के वैष्णवो के हृदय मे उनका महत्व स्थापित कर लिया। भारत के साप्रदायिक इतिहास म परस्पर विरोधी सिद्धाता तथा साधना-पद्धतियो के अनुयायियो के बीच इतनी लोकप्रियता उनके पूर्व किसी सप्रदाय-प्रवतक को प्राप्त न हो सकी थी। महाराष्ट्र के नामपथियो ने नामदेव के पिता विट्ठल पत के गुरु रूप मे उन्ह पूजा, अद्वैत मतावलम्बियो ने ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी के रूप मे उन्ह अपनाया, बावरीपथ के सतो ने अपने सप्रदाय का प्रवतक मानकर उनकी वदना की और कबीर के गुरु तो वे थे ही, इसलिए कबीरपथियो म उनका आदर स्वाभाविक है। स्वामी रामानद के व्यक्तित्व की इस व्यापकता का रहस्य, उनकी उदार एव सारग्राही प्रवृत्ति और समन्वयवादी विचारधारा में निहित है, जिसकी प्रेरणा से सभी जातियो और वर्गों के जिज्ञासुओ को शरण म लेकर उन्होंने प्रकाशमय पथ पर अग्रसर किया था। हिंदू मुसलमान दोनो दीन के सत उनके उपदशो से कृतकृत्य हुए। उपासना की सगुण और निगुण दोना पद्धतियो को उनसे विकास की प्रेरणा मिली। उनके बारह प्रधान शिष्या मे इन दोनो प्रणालिया के प्रचारक सता म प्रमुख थे—अनन्तानद और कबीर। इनम प्रथम से सगुण और द्वितीय से निगुण धारा का प्रसार हुआ। भारतीय सस्कृति की रक्षा और विकास म उक्त दोनो सप्रदाया का कितना योग है यह किसी से छिपा नही है। अत यदि उनके जन्मदाता की तुलना 'नाभादास ने सास्कृतिक आदर्शों के प्रतिनिधि राम[1] से कर दी हो तो अत्युक्ति नही कही जा सकती।

रामभक्ति का प्रसार और रसिक साधना का सूत्रपात

इसी रामानदीय वैष्णवपरपरा म तुलसी का आविर्भाव हुआ। वे अनन्तानन्द जी के प्रशिष्य और नरहरिदास अथवा नरहर्यानन्द के शिष्य थे। यदि रामावत सप्रदाय के प्रवतन का श्रेय स्वामी रामानद को है तो जन जन तक उनका सदेश पहुँचा कर लोकमानस म रामभक्ति की प्रतिष्ठा और रामचरित के प्रति श्रद्धा का भाव जागरित करना तुलसी का ही काम था। उनके 'मानस से जो रसलहरी उठी उससे शताब्दियो के राजनीतिक उत्पीडन, सामाजिक अनाचार और आर्थिक अव्यवस्था से सतप्त राष्ट्रहृदय तृप्त हो गया।

गोस्वामी जी ने रामचरित के जिस स्वरूप की अभिव्यक्ति अपनी कृतियो

---

१ बहुत काल वपु धारिक प्रणत जनन को पार दियो।
श्रीरामानद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥
भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० २२८

में की, वह ऐश्वर्य प्रधान है। उनके राम लोकमर्यादा के रक्षक, लोकविरोधी तत्वों के उन्मूलक और लोकधर्म के संस्थापक हैं। किन्तु तुलसी की समकालीन रामकाव्य-धारा में रामोपासना के एक दूसरे पक्ष के अस्तित्व के भी चिह्न मिलते हैं, जिसका दर्शन स्वयं तुलसी की कृतियों में भी यत्र-तत्र हो जाता है—वह है रामावत सम्प्रदाय में माधुर्यभक्ति का उत्कर्ष। रामोपासना की इस पद्धति का प्रचार भक्तों के एक सम्प्रदाय विशेष तक सीमित था। सिद्धान्तों की गोपनीयता के कारण उसका उपदेश केवल अंतरंग और दीक्षित साधकों को ही दिया जाता था। अतएव उसका सारा साहित्य आचार्यपीठों के बस्तों में बंधा, अप्रकाशित और अविवेचित ही पड़ा रहा। उधर तुलसीसाहित्य के प्रचार से रामचरित के ऐश्वर्य प्रधान अथवा शुक्लजी के शब्दों में 'शील, शक्ति सौन्दर्य समन्वित रूप की प्रतिष्ठा लोकव्यापक हो गई। उसके आधार पर जनसाधारण क्या, साहित्य की गतिविधि से परिचित विद्वानों तक की यह धारणा बन गयी कि रामकाव्य का परम्परागत स्रोत एकमात्र मर्यादाबद्ध अथवा ऐश्वर्यपरक भक्ति को ही लेकर चला है। माधुर्यविषयक जो रचनाएं उसमें यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं वे अत्यन्त अर्वाचीन, अश्लील और अमर्यादित हैं।

परन्तु अनुसंधान, स्थिति का एक दूसरा ही रूप प्रस्तुत करता है। इधर इस माधुर्यधारा का जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उससे विदित होता है कि गोस्वामी तुलसीदास की पूर्ववर्ती, समकालीन और परवर्ती रामोपासना इसी से ओत-प्रोत थी। वास्तव में इस पद्धति के साधक कवियों की संख्या इतनी अधिक है कि तुलसी अपने समकालीन भक्ति क्षेत्र में प्रस्तुत शृंगारी रामभक्ति के एक अपवाद से प्रतीत होते हैं। यह दूसरी बात है कि इस सम्प्रदाय में इतनी प्रखर प्रतिभा का कोई कवि अवतरित नहीं हुआ, जो सूर और मीरा की तरह जनसामान्य को भी इस दिव्यरस का आस्वादन करा सकता।

'युगल सरकार श्री सीताराम' की मधुर लीलाओं के ध्याता और गायक, ये संत 'रसिक अथवा भाविक'[1] नाम से जाने जाते हैं। इस वर्ग के भक्तों की अपनी एक अलग साधना-पद्धति है और पृथक भक्तमाल भी। परिमाण की दृष्टि से संपूर्ण

---

१ दंपति मधुर छवि छाके सख्य भाव बाके,
धीमनृत्यराघव की कला भरे गात हैं।
भाविक सभा में गुण आगर रसिक प्रेम,
सागर समान प्रेम सागर लखात हैं।

र० प्र० भ०, पृ० ४८

रामभक्तिसाहित्य का दो तिहाई से अधिक भाग रसिक भक्तो द्वारा ही विरचित मिलता है और प्राचीनता के विचार से, साम्प्रदायिक विश्वासो के अनुसार, यह कम से कम उतनी ही पुरानी है, जितनी तुलसी की ऐश्वयप्रधान भक्तिपद्धति। इसके विकाससूत्रा के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी कालविशेष मे किन्ही कारणो से इसका प्रवाह क्षीण भले ही पड गया हो, किन्तु स्रोत कभी सूखता नही दिखाइ दिया।

रामोपासना की ये दोनो धाराए आज भी समाना तर बह रही हैं। इनकी गद्दियाँ भारत के विभिन्न प्रदेशा मे स्थापित हैं। रामभक्ति के माध्यम से इनके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी का अहिन्दीभाषी प्रदेशा म प्रचार तो होता ही है, प्रकारान्तर से भावात्मक एकता की स्थापना का भी पथ प्रशस्त हो रहा है। इस दृष्टि से रामभक्ति का आध्यात्मिक महत्त्व क साथ परम्परागत सास्कृतिक मूल्यों की रक्षा मे भी विशिष्ट अवदान है।



नाथयोग और रामभक्तिधारा

महायोगी गोरखनाथ भारतीय अध्यात्मसाधना के ज्योतिस्तम थे। उनकी आचार एव विचार परपरा से सारा मध्यकालीन साहित्य ओतप्रोत है। क्या निर्गुण और क्या सगुण दोनो भक्तिधाराए उनकी योग-साधना से प्रभावित हुई और विषय तथा शैली दोनों क्षेत्रों में उनसे प्रेरणा प्राप्त कर समृद्ध हुई। कबीर और जायसी ने नाथसाहित्य एव नाथपथी साधको से प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त की थी यह उनके दार्शनिक विचारो एव साधनाप्रणाली से स्पष्ट हो जाता है। किन्तु सगुण भक्ति साहित्य म यह प्रभाव प्रतिक्रिया के माध्यम से परोक्षरूपेण अभिव्यक्त हुआ। भ्रमरगीत की रचना करते समय सूरदास के मानसनेत्रा के समक्ष अवश्य ही नाथपथी योग-साधक रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदास को तो नाथयोग का बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर लोकमानस से भक्तिभावना के सर्वथा लुप्त हो जाने की आशका हो चली थी। यह उनके निम्नाकित उद्गार से प्रकट होता है—

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग,
निगम नियोग सो सो केलि ही छरो सो है॥

किन्तु इससे यह भ्रम न होना चाहिए कि रामभक्तिधारा का योगप्रक्रिया से कोई प्रकृत विरोध था। वैष्णवधर्म के प्रधान उपजीव्य ग्रथ भागवत म योग की शारीरिक क्रियाओं को वैधी भक्ति म और मानसिक प्रक्रियाओ को ध्यान मे पर्यवसित करके भक्तिसाधना मे योगपद्धति की महत्ता स्वीकृत की गई थी। नवधा के पश्चात् दशधा अथवा प्रेमाभक्ति की साधना आराध्य की रसमयी लीलाओं के ध्यान द्वारा ही होती थी। ऐसी स्थिति म नाथयोग का प्रकट रूप मे विरोध करते हुए भी परोक्ष रूप म उसके सिद्धाता का अनुसरण करने से वैष्णव भक्त, चाहे वे रामभक्त हो या कृष्णभक्त, अपने को रोक नहीं सके। इस नये सदर्भ में योग उपासक-उपास्य के सबधस्थापना का सर्वोत्कृष्ट साधन बन गया।

रामभक्तिसाधना म योगधारा का अजस्र प्रवाह स्वामी राघवानन्द के समय से मिलता है। उनके शिष्य रामानन्द तथा प्रशिष्य स्वामी अनन्तानन्द से इस भावना के प्रसार म विशेष बल मिला। किन्तु वह पराकाष्ठा को पहुँची थी कृष्णदास पयहारी की अलौकिक सिद्धियों के प्रकाश मे। पयहारीजी की 'राजयोग'

नामक एकमात्र रचना प्राप्य है। इनकी मुख्य साधना-भूमि गलता और पुष्कर थी। नाभादास कृत भक्तमाल प्रियादास कृत उसकी टीका और रसिक-प्रकाश भक्तमाल में इनकी सिद्धियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इन्होंने जयपुर के महाराज पृथ्वीसिंह के शासनकाल में तारानाथ योगी को पराजित करके जयपुर दरबार में राजगुरु का पद प्राप्त किया था।

महायोग के चार सोपानों—मंत्र योग, हठयोग, लययोग और राजयोग में अन्तिम होने से राजयोग योगसाधना की परमोत्कृष्टावस्था है। राजयोग का साधक कुंडलिनी शक्ति के जागरण द्वारा षट्चक्रभेदन कर अनाहतनाद का रसास्वादन करता हुआ ब्रह्मजीव की एकता का रहस्यज्ञान प्राप्त कर मुक्ति की ओर अग्रसर होता है। पयहारी जी ने मुक्ति के लोकप्रचलित चार भेदों सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य से परे पाँचवी मुक्ति ध्यानलीन दशा की कल्पना की है और इस पथ के साधक की उसमें स्थिति बताई है। कबीर, दादू आदि निर्गुण भक्तों की भाँति उन्होंने भी अनहदनाद का रामनाम की अखंड ध्वनि का पर्याय माना है। भेद केवल इतना ही है कि जहाँ निर्गुणमार्गी भक्त नाथपंथियों के आदर्श पर मात्र ज्योति का दर्शन करता है वहाँ पयहारी जी उसके अंतर्गत अपने आराध्ययुगल 'सीताराम' का भी दर्शन करते हैं—

आगे सुपताका उडत देखि। तहँ सेत छत्र छाया सुपेखि।
आसन सपेद तहँ अरुन भूमि। जहँ दिसि प्रकास नहिं बरन घूमि।
को बरनि सकत प्रभु को सरूप। रवि कोटि चंद छवि ते अनूप॥
नभ नील मेघ इति स्याम गात। लखि पीत बसन विद्युत लजात।
इमि बसत राम निज सहित धाम। सब संत कहत जेहि परमधाम॥[1]

पयहारी जी का अनुभव था कि इस स्थिति को प्राप्त करने से सारे भवबंधन छूट जाते हैं। यही योग की परम उपलब्धि है—

तह गए मिटत है जन्म मरण। तेहि हेत जाग जेहि रामशरण॥[1]

'राजयोग' में अपने शिष्य अग्रदास को वे इस योगसाधना का उपदेश देते हुए लिखते हैं—

प्राणहि अपान दृढ गाथि डोरि। कुंडलिनि आव सम युक्ति जोरि।
तब चलत पवन जहँ ब्रह्मरंध्र। तहँ छोडि जाहिं सब त्रिगुण बंध॥
उलटै सु इला-पिंगला नारि। सुषुमना सुद्ध लीजे बिचारि।
पहुँचै सो जबै अनहद गेह। राखै सुणक हरि सों सनेह॥

---

१ राजयोग छं० २४२   २ वही, छं० ५८

आठ पहर चौसठि घरी । ररकार घहराय ।
सकल मोह दावा मिटे तब नाना ठहराय ।।[1]

यह सर्वविदित है कि गोरखनाथ जी अवतारवाद के विरोधी थे, अत दशरथ-पुत्र राम के प्रति उनकी अनास्था स्वाभाविक थी—

दस औतार औतिरीया तिरिया, वै पणि राम न होई
कमाई अपनी उनहूं पाई करता औरै कोई ।।[2]

किन्तु परम्परा से ब्रह्मरूप म सूयवशी महाराज रामचन्द्र को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी, उसकी मूक स्वीकृति 'गोरखबानी' के निम्नांकित छन्द मे मिलती है । इतना ही नही पयहारी जी ने रामभक्ति की प्राप्ति के लिए योग-साधना की जिस प्रक्रिया की व्याख्या 'राजयोग' की उपयुक्त पत्तिया म की है, वह अविकल रूप से नाथयोग म मिल जाती है—

मन रे राजा राम होइल नृदद ।।
मूले कमले राजि ले रविचद ।।
अनहद मौरी भवै तृवेणी क घाट ।
पीयले महारस फाटिले कपाट ।।
चदा करिले धूटा सूरज करिले पाट ।
नित उठि धोवी धोवै, तृवेणी के घाट ।।
भरिले नाडी पोडी, पूरिले बक नालि ।
बदत गोरषनाथ अवधू, इम उतरिवौ पार ।।

पयहारी जी के शिष्यो ने रामभक्ति शाखा म इस योगमूलक सगुण निगुण मिश्रित साधना का प्रचार किया । उनके पटट शिष्य कील्हदास इसक मुख्य स्तम्भ मान जात हैं ।[4] प्रसिद्ध है कि इनकी ध्यान-समाधि इतनी उच्चकोटि की होती थी

---

१ राजयोग छ० २८ २ गोरखबानी पृ ५४ ३ वही, पृ० ५५

४ गागेय मृत्यु गज्यो महीं त्यों कील्ह करन नहिं काल बस ।।
रामचरण चितवनि रहति निसिदिन लौ लागी ।
सबभूत सिर नमित शूर भजनानन्द भागी ।।
सांख्ययोग मत सुदृढ़ कियो अनुभव हस्तामल ।
ब्रह्मरध्र करि गौन भए हरितन करनी बल ।।
सुमेरदेव सुत जग विदित, भू विस्तारयो विमल जस ।
गागेय मृत्यु गज्यो महीं, त्यों कील्ह करन नहिं काल बस ।।
भक्तमाल (रूपकला) पृ० ३१५

कि इस स्थिति म ये सर्वथा वाह्यज्ञान शून्य हो जाते थे। इनकी परम्परा के अवधूतवेष धारण करने वाले साधु विचरणशील एव स्थानधारी रामभक्त महात्मा आज भी भारत के विभिन्न प्रदेशो म पाये जाते हैं। नाथपथी अवधूतो से इनका पार्थक्य धवल तिलक की भिन्नता से जाना जाता है। इस परम्परा से सम्बद्ध अवधूतसत मूज की करधनी, अधारी, विशाल जटाए, वस्त्र क नाम पर मात्र केले के सूखे पत्ते, टाट अथवा छ अगुल चौडे कपडे की लगोटी धारण करते हैं। रामोपासना की यह योगाश्रयी शाखा गोस्वामी तुलसीदास की मर्यादावादी लोकसग्रही पद्धति से सर्वथा भिन्न एकान्तिक साधना का आदर्श लेकर चली है जिसमे हठयोग द्वारा शरीर और प्राण को वश म करने के अनन्तर ब्रह्मजीव की एकात्म्यता का सम्पादन होता है। यही इनकी निर्विकल्प समाधि है। इस शाखा के साहित्य म गोरखपथ और नाथयोग क सिद्धान्तो की न तो कही निंदा मिलती है और न उन्हे रामभक्ति क विकास म बाधक ही माना गया है। रामभक्ति धारा क प्रसार मे इसका विशेष योगदान रहा है। इसके विशाल साहित्य क अन्वेषण-परीक्षण से निश्चय ही मध्यकालीन हिन्दी रामकाव्य के अनुशीलन मे एक नई दिशा मिलेगी।

श्री कृष्णदास पयहारी की योगमूला भक्ति

श्री कृष्णदास पयहारी स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य और अनन्तानन्द के शिष्य थे। रामानन्दीय सम्प्रदाय का वर्तमान व्यापक रूप बहुत अंश में इन्हीं की देन है।[1] वास्तव में सम्प्रदाय प्रवर्तक के महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये जिन चारित्रिक गुणों की अपेक्षा की थी, कृष्णदास के प्रभावशाली व्यक्तित्व में वे पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे। उनके प्रशिष्य नाभादास के निम्नांकित शब्द इसके साक्षी हैं।[2]

जाके सिर कर धर्‌यो तासु कर तर नहिं अड्डयो।
अर्प्यो पद निर्वान सोक निर्भय कर छड्डयो॥
तेज पुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता।
सेवत चरन सरोज राव-राना भुवि जेता॥
दाहिमा वंश दिनकर उदय, सत कमल हिय सुख दयो।
निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास, अन्न परिहरि पय पान कियो॥

ये राजस्थान के निवासी दाधीच्य ब्राह्मण थे। इनका गुरुप्रदत्त नाम कृष्णदास था। दीक्षा के अनन्तर योगसाधना में प्रवृत्त होने पर इन्होंने अन्न त्याग कर केवल दुग्धपान का व्रत ले लिया था इसलिये तत्कालीन मतसमाज में 'पयहारी' नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी मुख्य साधनाभूमि गलता थी।[3] भक्तमाल में इनकी सिद्धियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक बार इन्होंने अतिथि रूप में आए हुए सिंह की अभ्यर्थना अपना मांस अर्पित करके की थी और इस प्रकार कलियुग में परोपकारी महर्षि दधीचि के आदर्श की स्थापना की थी। प्रियादास

---

१ रामभक्तों के ३७ द्वारों में से २० द्वारे श्री कृष्णदास पयहारी की ही परम्परा के हैं। इनकी शताधिक शाखा प्रशाखाएँ देश के विभिन्न भागों में फैली हुई हैं।

२ श्री भक्तमाल (भक्ति रसायनी व्याख्या वृन्दावन)—पृ० २६५।

३ जयपुर नगर के पूर्वी भाग में सूरजपोल से गलता को मार्ग जाता है। यह स्थान वहाँ से थोड़ी दूरी पर पहाड़ी में स्थित है। पयहारी जी की गद्दी और धूनी का दर्शन करने प्रति वर्ष हजारों यात्री यहाँ आते हैं। इस आचार्य पीठ की परंपरा अब तक अक्षुण्ण रूप से चल रही है।

४ गलते गलित अमित गुण, सदाचार सुठि नीति।
दधीच पाछे दूजी करी, कृष्णदास कलि कीति॥

ने अपनी टीका में पयहारी जी की सिद्धाई के दो और उदाहरण प्रस्तुत किए हैं— एक है कुल्हू (पंजाब) के राजपुत्र की प्राण रक्षा कर उसे अपना कृपापात्र बनाना और दूसरा है एक स्त्री के गर्भस्थ बालक के विषय में सत्य भविष्यवाणी करना कि वह महान् संत होगा।

रसिक प्रकाश भक्तमाल' के रचयिता जीवाराम 'युगलप्रिया' ने गलता के अतिरिक्त पयहारी जी की एक दूसरी तपोभूमि पुष्कर का भी उल्लेख किया है और उन्हें माधुर्यभाव का रामोपासक कहा है।[1] उक्त ग्रंथ के टीकाकार वासुदेव-दास ने इनकी साधना के विषय में कुछ अधिक विवरण दिए हैं। उनके अनुसार अनन्तानन्द से मन्त्रदीक्षा लेकर पयहारी जी तीर्थयात्रा को चले गए। लौटने पर उन्हें गुरु के देहावसान का समाचार मिला। गुरुपीठ में ही ठहर कर उन्होंने एक विशाल भंडारा किया। इसके पश्चात् वे पुष्कर चल गए और वहाँ १४ वर्ष तक घोर तपस्या की। इस अनुष्ठान में छः वर्ष के भीतर ही उन्हें आराध्य युगल श्री सीताराम ने साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया। इस प्रकार पुष्कर में योग सिद्धि प्राप्त करके वे गलता लौट आये और वहाँ की रम्य प्राकृतिक शोभा से आकृष्ट होकर कुछ दिन ठहर गए। इस बीच आमेर नरेश पृथ्वीराज (सिंहासनारोहणकाल फाल्गुन कृष्ण ८, सं० १५५६) का दीवान विद्याधर उनके

कृष्णदास कलि जोति ज्योति नाहर पल खोयौ।
अतिथि धर्म प्रतिपालि प्रगट जस जग में लीयौ॥
उदासीनता (की) अवधि, कनक कामिनी नहिं रातो।
रामचरण मकरंद रहत निसिदिन मदमातो॥
श्री भक्तमाल (वृन्दावन), पृ०, ६१४

५ कृपा अनन्तानंद रसिक पूरन पयहारी।
कृष्णदास रसरीति उपासक सियव्रतधारी॥
पुष्कर छाया भजनभूमि प्रगटी सिय प्यारी।
पूर्व सूचिका धरी कथा प्रिय लेहु सुधारी॥
जिमि उलूक अरु काग रति, नित्य रास रस रूप गति।
आचारज शृङ्गार पथ, शिष्य अग्र से विमल मति॥
रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १३

६ तारक जुगुल मंत्रराज जप ठायो व्रत द्वादश जुगुल वप हूप उर छाय के॥
छठए बरस दिव्य दंपति दरस पाय उठि हरषाय दंडवत कीनो भाय के॥
र० प्र० भ०, पृ० १३

दर्शनार्थ आया। वह इनसे बहुत प्रभावित हुआ। उसने लौटकर महाराज को एक तपोनिष्ठ महात्मा के आने का समाचार सुनाया।

उन दिनों आमेर के राजगुरु नाथपंथी योगी तारानाथ थे। उन्हें भी अपने अनुयायियों से यह सूचना मिली। वे तत्काल ही कुछ योगियों को साथ लेकर पयहारी जी के पास गये और उनसे गलता छोड़कर अन्यत्र चले जाने का अनुरोध किया। कृष्णदास जी ने केवल एक रात ठहरने की अनुमति चाही, किन्तु वे न माने। शारीरिक बल प्रयोग करके इन्हें हटाने की इच्छा रखते हुए भी वे साहस न कर सके। अतः अपनी परम्परानुसार यंत्र-मंत्र तथा कृत्या द्वारा इन्हें विचलित करने का प्रयत्न किया। इन पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। उलटे विरोधी ही उसके शिकार बने। योगियों ने क्रुद्ध होकर, जिस स्थान पर पयहारी जी बैठे थे उसके ऊपर की एक चट्टान लुढ़का दी जिससे इनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाय। किन्तु कृष्णदास जी अपने अद्भुत योगबल से उसे बीच में ही रोक दिया। अन्त में योगी तारानाथ सिंह बनकर गरजता हुआ सामने आया। पयहारी जी ने कमण्डल का जल अभिमंत्रित करके उसके ऊपर फेंका जिससे वह गन्हा हो गया। इतना ही नहीं इनकी अलौकिक सिद्धि के प्रताप से सभी स्थानीय योगियों की कर्ण मुद्राएँ निकल कर उनके सामने एकत्र हो गई। प्रातःकाल जब आमेर नरेश गुरु का दर्शन करने गए तो उन्हें मुद्राहीन देखकर बड़े आश्चर्य में पड़ गए। कारण पूछने पर गुरु तो लज्जावश कुछ न बोले परन्तु दीवान ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। महाराज पृथ्वीराज ने पयहारी जी की सेवा में गुरु सहित उपस्थित होकर क्षमा याचना की। अन्य योगी भी आकर उनके चरणों पर पड़े। पयहारी जी ने उन्हें क्षमा कर दिया। गन्हा बने हुए नाथपंथियों को अपना पूर्वरूप मिल गया। कर्ण मुद्राएं भी सबको पूर्ववत् प्राप्त हो गई। पयहारी जी ने उनसे गलता छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर अड्डा बनाने को कहा साथ ही उन्हें दंड के रूप में नित्य पांच बोझ लकड़ी धूनी के लिये पहुँचाने का आदेश दिया। कहा जाता है कि इसके पश्चात् योगियों की इष्टदेवी भी आईं और कृष्णदास जी की शिष्या हो गईं। पृथ्वीराज ने तारानाथ से नाता तोड़कर पयहारी जी का शिष्यत्व ग्रहण किया।

---

१ राज गुरु सेवरा ने सुनि एक सिद्ध आये देखि घबराए तेज कह्यो कहा कीजिए ॥
मिलि दस पाँच गए कह्यो ह्याते उठि जाओ जायेंगे अवश्य आजु रैनर है दीजिए ॥
जंत्र मंत्र मूठि काल कृत्या ल चलाई सब उलटि पठाई निज कियो फल लीजिए ॥
तब खिसियाय सिला ऊपर गिराई स्वामी अधर झुलाई कह्यो इन्हे न पतीजिए ॥
रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १३

उन्होंने यहाँ पर रामानंद जी की परंपरा के साथ ही साधु सेवा और संकीर्तन में काल यापन करते हुए शिष्यों को रामनाम जप का उपदेश दिया।[1] इसी समय से गलता पयहारी जी का प्रधान पीठ बन गया। यहीं पर कुछ दिनों बाद उन्होंने दो शरणागत बालकों—कील्हदास और अग्रदास को पंचसंस्कार युक्त करके साधना में प्रविष्ट किया। एक लम्बी आयु भोगने के पश्चात् गद्दी का दायित्व बड़े शिष्य कील्हदास को सौंप कर श्री कृष्णदास जी ने अपनी ऐहिक लीला संवरण की।

कील्हदास ने गुरु द्वारा उपदिष्ट साधनापद्धति का सम्यक प्रचार एवं संवर्धन किया। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि तत्कालीन देशाधिपति ने मथुरा प्रवास के समय इनकी योगसिद्धि की परीक्षार्थ सिर पर लोहे की कील ठुकवा दी थी

---

१ सुनो पृथिराज हुता मग में विदित जन,
पाय सीतानाथ भजो क्यों न मन सायकै।
स्वामी हम सारति भुलाने नहिं आनै कैसो,
अरणव धरम प्रभु कहो समुझाय कै॥
सुनिकै प्रवृत्ति को निवृत्ति को स्वरूप कह्यो,
नाम को महत्त्व सुनि दियो सीप नाय कै।
द्वादश तिलक माला छाप नाम मंत्र ध्यान,
पायो सुख छायो भयो अभय बजायकै॥

रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ १४

नाभादास ने आमेर नरेश पृथ्वीसिंह की गणना *तत्त्वदर्शी रामभक्तों* में की है। पयहारी जी के प्रसाद से प्राप्त इनकी *अद्भुत आध्यात्मिक* शक्ति का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

(श्री) कृष्णदास उपदेश परम तत्त्व परचो पायो।
निरगुन सगुन निरूपि तिमिर अज्ञान नसायो॥
काछ बाच निकलंक मनों गांगेय युधिष्ठिर।
हरि पूजा प्रहलाद धर्मध्वजधारी जग पर॥
पृथीराज परचौ प्रगट, तन संख चक्र मंडित कियौ।
आमेर अछत कूरम कौ, द्वारिका नाथ दरसन दियौ॥

श्री भक्तमाल (वृन्दावन), पृ० ६१६

२ कील कील सिरदई नृपति तबहूँ नहिं जागे।
प्रबल समाधी रसिक रामसिय छवि अनुरागे॥

र० प्र० भ०, पृ० १४

किन्तु उस स्थिति म भी ये समाधिस्थ रह। ये सांख्ययोग के पारगत विद्वान् थे। इनके शिष्य द्वारकादास भी अष्टांगयोग के निष्णात साधक थे। उन्होंने अपना प्राण ब्रह्मरंध्र से त्याग किया था। इसी प्रकार कील्हदास के छोटे गुरुभाई अग्रदास और उनके लोकविश्रुत शिष्य नाभादास के विषय म भी अनेक चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख साम्प्रदायिक साहित्य म मिलता है।[1]

पयहारी जी के देहावसान के अनन्तर भी उनका अद्भुत प्रताप भक्ति क्षेत्र को आच्छादित किए रहा और रामानंदीय सम्प्रदाय के उपासक उनसे प्रेरणा प्राप्त करते रहे। देवरिया जनपद (उत्तर प्रदेश) के प्रसिद्ध महात्मा लक्ष्मीनारायण दास पयहारी के विषय म प्रसिद्ध है कि उन्हें सर्वप्रथम रामभक्ति का प्रसाद गज रूप मे समागत श्रीकृष्णदास पयहारी द्वारा ही मिला था।[2] इस घटना के बाद भी उन्हें समय समय पर पयहारी जी के स्वप्न म दर्शन देते रहने की कथाये साम्प्रदायिक साहित्य म मिलती हैं।[3]

एक समै सहज सुभाय मधुपुरी आए, यमुना सुनीर न्हाइ बैठे शुचि तीर मे ॥
श्यामल स्वरूप रघुनंदन को हिए आयो, अचल समाधि लागी सतन की भीर मे ॥
देश दुनीपति पादसाह सुनि कौतुक ज्यों, पेषन को आयो नहि जान पर पीर में ॥
कील शिर दई कछू वेदना न भई रहो, अचल समाधि जसी लागी रघुवीर मे ॥
र० प्र० भ०, पृ० १५

१ देखिये श्रीभक्तमाल (वृन्दावन पृ० २७५ २७६ तथा 'भक्ति सुधा बिन्दु स्वाद तिलक' (रूपकला) पृ० ४४ ५०

२ जयपुर राज्य राज रजधानी। तहाँ अवतरे मुनि विग्यानी ॥
कृष्णदास पावन व्रतधारी। रहे कहावत श्री पयहारी ॥
बहुत काल तप कीन्ह कठोरा। नित्य दिवस रघुवंश निहोरा ॥
दिवस एक बन फिरत अकेला। धारयो भेष महा गज मेला ॥
तेहि छन अधकार भइ भारी। दिखराया महिमा पयहारी ॥
वेगवत होइ चला विचारी। जह बैठा बालक ब्रह्मचारी ॥
लीन्ह चढ़ाइ कान्ह पर तिनहीं। अति श्यामल गज भय नहिं जिनहीं ॥
दीक्षा द कृतार्थ तेहि कीन्हा। सादर पौहारी पद दीन्हा ॥
दासान्त पयहारिण परगुरु रामस्वरूप मुनि।
गायत्री जप निर्मल गुरुवर श्री कृष्णदासाभिध ॥
धत्वाहस्तिवपु सुदक्षिणपर पयहारिभि स्थापितम्।
पक्तौलो नगरात्सुदूर विजने सान्द्रे सुरम्ये वटे ॥

३ हरिपूजन मे कृष्णदास मुनि आइ मिले हर्षाई,
लक्ष्मीनारायण चेत करो यह मुक्ति की राह बताई।
अवध प्रसाद होईहैं तव गुरु ऐसो गिरा सुनाई ॥

पयहारी जी और उनके शिष्य प्रशिष्यो के सम्बन्ध म प्रचलित इन कथाओ से उनकी योग साधना मे असाधारण आस्था एव गति का पता चलता है। रामोपासना के अतगत यह योगप्रवृत्ति निरन्तर बढती गई । आगे चलकर उसने एक पृथक् साधनाप्रणाली का रूप धारण कर लिया और तपसी शाखा के नाम से अभिहित की जाने लगी। इसके प्रवतक थ पयहारी श्री कृष्णदास और साम्प्रदायिक सगठन कर्ता थ उनक उत्तराधिकारी गलता गद्दी के द्वितीय आचार्य कील्हदास। इस सम्बन्ध म यह विचारणीय है कि स्वामी रामानद के नाम स प्रसिद्ध रामरक्षा, ध्यानलीला ध्यानतिलक योगचिंतामणि आदि रचनाए भी योगपरक ही हैं किंतु उनम राजयोग की अपेक्षा हठयोग और सगुण की अपेक्षा निर्गुण साधना को प्रधानता दी गई है, उनके आराध्य ज्ञानियो के ही ध्येय हैं अपनी पराशक्ति सीता सहित परम धाम म नित्य लीलारत ध्यानमग्न भक्तो को लोकोत्तर आनन्द का रसास्वादन करान वाल अवतारी राम नहीं। इसलिए स्वामी रामानद की प्राप्त रचनाओ से रामोपासना की इस शाखा विशेष का प्रकृत सैद्धांतिक सम्बन्ध स्थापित होता नही दिखाई देता। बहुत सभव है उनकी कुछ हिन्दी रचनायें साकेत विहारी राम विषयक भी रही हो, जो क्रूर काल के प्रवाह के साथ अनन्त म विलीन हो गयी हो।

यह आज भी रामभक्तिक्षेत्र की एक सशक्त साधनाधारा है। प्रयाग हरिद्वार, नासिक आदि तीर्थो मे कुभ के अवसर पर कोपीन, मूंज की करधनी और विभूतिधारी रामोपासक नागाओ के जो अखाड बडी सजधज के साथ एकत्र होते हैं वे प्राय इसी शाखा स सम्बन्ध रखते हैं। इनको अनी और अखाडो म सगठित करने का श्रेय महात्मा बालानन्द को है। [illegible] जयपुर म अब तक स्थापित है।[1] शैव नागाओ स इनकी [illegible] है कि इनकी साधना भावपरक प्रधान होती है जब कि शैवा [illegible]
शाखा के उपजीव्य ग्रंथो म श्री कृष्णदास [illegible]
प्रकाश मे नही आई है।

प्राचीन हस्तलेखो की खोज करत हुए मुझे [illegible]
'राज-योग' नामक ग्रंथ [illegible] । यह एक [illegible]
२८ छन्द हैं—२७ रोला [illegible] ।
यह ग्रंथ अग्रदास को शि[illegible]

१ रामभक्ति मे
२ राजयोग, छ० ६

तब उहाँ अग्र। देखर सुधीर।
जनु भर्यो उदधि अति अगम नीर ॥

इसक प्रतिलिपिकार कील्हदास की परम्परा मे आविर्भूत, महात्मा कामदराम के कोई अज्ञातनामा शिष्य हैं। ग्रथान्त म दी गई पुष्पिका मे अपना परिचय देत हुए वे लिखते हैं—

"॥इति श्री स्वामी पयोहारि कृष्णदास कृत राजयोगम्। श्री राम॥

'कृष्णदास कुल कील मत, साख्य ध्यान सिय राम।
श्री गुरु कामद राम निधि, राम बीज रट नाम॥

इस छोट से ग्रथ मे अभिव्यक्त विचारा मे पयहारी जी की परपराप्रसिद्ध योगसाधना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। वे नाथपथिया की हठयोगी पद्धति के प्रतिकूल पातजलि की अष्टागयोगप्रणाली के प्रचारक थे। 'राजयोग मे उनका तात्पय इसी साधना पद्धति से है जिसका तत्त्ववाद सेश्वर साख्य है। नाभादास न कील्हदास क प्रसग मे इसका उल्लेख किया है—[1]

रामचरण चितवनि रहत निसिदिन लौ लागी,
सर्वभूत शिर नमित सूर भजनानद भागी॥
साख्य योग मत सुदृढ किए अनुभव हस्तामल।
ब्रह्मरध्र करि गौन भये हरितन करनी बल॥

कील्हदास की कोई कृति उपलब्ध न होने से हमे इस सम्बध मे उनके अनुयायिया और नाभादास द्वारा प्रस्तुत तथ्या पर ही निर्भर रहना पडता है। किन्तु पयहारी जी के दूसरे प्रसिद्ध शिष्य अग्रदास की रचना 'ध्यान मजरी से 'राजयोग म प्रतिपादित सिद्धाता का सीधा सम्बध स्थापित किया जा सकता है। अग्रदास न उक्त ग्रथ म अपने 'ध्यानयोग को गुरु (श्री कृष्णदास पयहारी) का प्रसाद बता कर प्रकारान्तर स इसकी पुष्टि की है[2]—

श्री गुरु सत अनुग्रहते अम गोपुर वासी।
रसिक जनन हित करन रहसि यह ताहि प्रकाशी॥
ध्यान मजरी नाम सुनत मन मोद बढावे।
श्री रघुवर को ध्यान मुनि मन अग्र सा गावे॥

अग्रदास रामभक्ति मे रसिक भावना के प्रवतक आचार्य माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय म सीताराम के युगल स्वरूप की उपासना विहित है[3]—

---

१ श्रीभक्तमाल (वृदावन), पृ० २७३
२ ध्यान मजरी (अग्रदास), छ० ७६, ८०
३ राजयोग, छ० १८, १९, २०, २१, २२

षोडश वय किशोर राम नित सुंदर राजैं।
राम रूप को निरखि विभाकर कोटिक लाजैं।।
अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानंद वामदिसि जनक कुमारी।।

'राजयोग' में भी 'परमधाम में नित्यलीला मग्न, शक्तिसंयुक्त, आराध्य का यही स्वरूप ध्येय बताया गया है[1]—

आगे सुपताका उडनि देखि। तहँ सेत छत्र छाया सुपेखि।।
आसन सफेद तहँ अरुन भूमि। चहुँ दिसि प्रकाश नहिं बरन घूमि।।
को बरनि सकत प्रभु को सरूप। रवि कोटि चन्द्र छवि ते अनूप।।
नभ नील मेघ इमि श्याम गात। लखि पीत बसन विद्युत लजात।।
इमि बसत राम निज सहित बाम। सब संत कहत जेहि परम धाम।।

पयहारी जी ने इष्टदेव के इस ध्यान में तल्लीन जीव-मुक्त भक्तों को शास्त्रानुमोदित चार प्रकार की मुक्तियों—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य से श्रेष्ठतर पाँचवीं 'ध्यानलीन' मुक्ति का अधिकारी बताया है[2]—

जे चारि मुक्ति वैकुंठ मानि। ते भुक्ति मुक्ति फल लेहु जानि।।
तब पँचई मुक्ति पावो प्रवीन। जो रहत अहानिसि ध्यान लीन।।

उनकी सम्मति में योगसाधना रामभक्तिप्राप्ति का एक मात्र साधन है।—

तहँ गए मिटत है जन्म मरण। तेहि हेत जोग जत रामशरण।।

आमेर नरेश पृथ्वीसिंह के प्रसंग में नाभादास ने पयहारी जी को निर्गुण तथा सगुण दोनों तत्वों का पारंगत आचार्य कहा है। राजयोग में अग्रदास को उपदिष्ट निम्नांकित साधना प्रणाली इसका समर्थन करती है[3]—

प्राणहिं अपान दृढ गाथि डोरि। कुंडलनि आव मम युक्ति जोरि।।
तब चलत पवन जहं ब्रह्मरंध्र। तहं छोडि जाहि सब त्रिगुण बंध।।
उलटे सु इडा पिंगला नारि। सुषुमना शुद्ध लीजे विचारि।।
पहुँचै सु जवै अनहद गेह। तामे सु एक हरि सों सनेह।।

इस स्थिति की प्राप्ति का एक मात्र उपाय रामनाम का अखंड जप है[4]—

---

१ वही, छ० २४, २६
२ राजयोग, छ० ५, ६, ७, ८
३ वही, छ० २५
४ वही, छ० २८

आठ पहर चौंसठि घरी ररकार घहराय ।
सकल मोह दावा मिटै तब नाना ठहराय ।।

स्वामी रामानन्द का भी मुख्य उपदेश रामनाम जप ही था[1] जिसे आगे चल कर गोस्वामी तुलसीदास ने निगुण एव सगुण ब्रह्म की ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन और दाना के बीच 'चतुर दुभाषी' घोषित किया । पयहारी जी भी रामोपासना की इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति क पोषक थे । परवर्ती राममक्त कवियो ने भी अपनी रचनाओ मे निगुण तत्त्व को महत्वपूण स्थान दिया । यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी के अन्य सगुणाश्रयी सम्प्रदायो मे प्राय इसके विपरीत, निगुण भावना को सगुण के विरोधी रूप मे ही चित्रित किया गया है । कृष्ण काव्य की भ्रमर-गीत परपरा मे इसके पर्याप्त उदाहरण विद्यमान हैं ।

कृष्णदास जी के शिष्यो ने रामभक्ति शाखा म इसी उभय (निगुण-सगुण) प्रबोधक ध्यान योग का प्रचार किया । रामोपासना की प्रधान साम्प्रदायिक धारा आज भी इसी पथ पर प्रवहमान है । इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख्य है कि योग समन्वित राममक्ति की यह स्रोतस्विनी गोस्वामी तुलसीदास की लोक-सग्रही उपासनापद्धति स सर्वथा पृथक एकातिक साधना का आदश लेकर चली है जिसमे वाह्य की अपेक्षा मानसी पूजा को प्रधानता दी जाती है । आराध्य और आराधक की तादात्म्यस्थापना क लिये इसके अन्तगत पचभाव सम्बन्धों की कल्पना की गई है । राममक्तो का यह भावयोग ही रसिक साधना का मूलतत्त्व है, जिसका मम न समझने वाले छिछली प्रवृत्ति क साधक सम्प्रदाय को अपनी ऐहि-

१ मूरख तन धरि कहा कमायौ । राम भजन बिन जनम गँमायौ ।
राम भगति गति जाणी नाहीं । भट्ट भूलो घणा माहीं ।।
रामानद की हिंदी रचनायें, पृ० ६

२ नाभादास ने श्रीकृष्णदास के प्रत्यक्ष शिष्यो की सख्या २४ बताई है, जिनकी नामावली इस प्रकार है—

कील्ह अगर केवल्ल चरन व्रत हठी नरायन ।
सूरज पुरुषा पृथू तिपुर हरिभक्ति परायन ।।
पद्मनाभ गोपाल टेक लीला गदाधारी ।
देवा हेम कल्यान गगा गगा सम नारी ।।
विष्णुदास क हर रगा चांदन सविरी गोविन्द पर ।
पयहारी परसाद तें सिष्य सब भये पारकर ।।
श्री भक्तमाल (वृन्दावन), पृ० २७३

बातें उनकी नवोपलब्ध रचनाओं के साथ दी जायेंगी। इनसे रसिक सम्प्रदाय के भक्तों की काव्यशैली में एक विशिष्ट तत्त्व प्रकाश में आता है और वह है चरितात्मक शैली में रामकाव्य निर्माण में इन भक्तों की अभिरुचि तथा गति। उदाहरण के लिए हर्याचार्य तथा सूरकिशोर की कृतियाँ ली जा सकती हैं। इनमें से प्रथम शृंगारी साधक थे और द्वितीय वात्सल्यनिष्ठ भक्त। इनकी जो रचनाएँ अब तक उपलब्ध थीं उनमें भावपूर्ण शैली में आराध्य की रसमयी लीलाओं का वर्णन मिलता है। किन्तु नवप्राप्त रचनाओं में उनकी लीला का इतिवृत्त बड़ी ही संयत और प्रवाहपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है। हर्याचार्य का 'सीताराम-विवाह' वर्णन और और सूरकिशोर का 'रावण-अंगद-संवाद' इसके प्रमाण हैं। इनसे यह विदित होता है कि कोमलकांत पदावली के समान ही ओजपूर्ण छंद रचना की भी इनमें अपूर्व क्षमता थी। साथ ही ये इस तथ्य के साक्षी हैं कि रसिक राम-भक्त—चाहे वे माधुर्यासक्त हों या वात्सल्यनिष्ठ—अपनी कृतियों में सामाजिक मर्यादा तथा व्यक्तिगत चारित्रिक आदर्शों की रक्षा का बराबर ध्यान रखते थे। इसी से पदमुक्तावली में संकलित इस सम्प्रदाय के संतों की सारी रचनाएँ उस घोर शृंगारिकता से अछूती हैं, जिसके आधार पर इस शाखा के कवियों पर 'ईश्वरत्व की छीछालेदर' का आरोप लगाया जाता रहा है।

हमारा विश्वास है कि इन कृतियों से रामभक्ति की रसिक शाखा की साधना एवं साहित्य विषयक अनेक अज्ञात तत्त्व प्रकाश में आयेंगे जिनसे अनुसंधित्सुओं को इस क्षेत्र में अग्रसर होने के लिए नयी प्रेरणा प्राप्त होगी।

झाँझू दास

ये श्री कृष्णदास पयहारी के प्रशिष्य तथा हेमानंद जी के शिष्य थे। जयपुर और उसके आस पास पयहारी जी द्वारा स्थापित रामभक्ति परंपरा के प्रसारक रूप में इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। इनका आविर्भाव जयपुर राज्य के उमाडा नामक ग्राम में एक खाडल ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता का नाम पंडित चोखाराम था। बालकाल से ही इनकी प्रवृत्ति अध्यात्मोन्मुख थी। इसलिए इनके समय का अधिकांश पूजापाठ में बीतता था। आरंभ में घर पर ही पिता ने अध्ययन की व्यवस्था की किन्तु उसमें इनका मन नहीं लगा। दैवयोग से किशोरावस्था में ही इन्हें पयहारी जी के शिष्य स्वामी हेमानंद का सान्निध्य प्राप्त हो गया और इन्होंने उनसे मंत्रदीक्षा ले ली। इसके बाद गृहस्थी के जंजाल से मुक्त होकर

१ कल्याण वर्ष ३२ अंक ७ पृ० १०८८।

ये जयपुर की पश्चिम दिशा मे स्थित जगली प्रदेश मे जाकर एक सरोवर के पास आश्रम बनाकर भजन करने लगे।

कुछ ही दिनो की साधना से इनके मन म आराध्य के दशन की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हो गई। ये उसी समय अन्त प्रेरणा से भगवान राम की लीलाभूमि अयोध्या की ओर चल पडे। वहाँ पहुँचकर कुछ दिना तक सरयू तटस्थ रामघाट पर भजन करते रहे। कहा जाता है कि एक दिन जब ये इष्टदेव के दशन के लिए अत्यन्त व्याकुल थे, तो आराध्य ने सीता तथा लक्ष्मण सहित इन्हे दशन दिया। उनका चरण वन्दन करते हुए झाझूदास ने दशन तथा नित्य सेवा का अवसर प्रदान करने की प्रार्थना की। भगवान बोले 'कलियुग मे मेरा साक्षात्कार प्राप्त करना अत्यत कठिन है । किन्तु तुम्हें नित्य सेवा के लिए हमारा विग्रह सरयू मे प्राप्त होगा। उसे ले जाकर अपने पुण्यस्थल पर स्थापित करना, उसकी पहचान यह है कि जहा विग्रह भार प्रतीत हो, वही उसे पधरा देना। उसके उपलक्ष्य मे विजयादशमी के दिन एक महोत्सव करना। उस समय तुम्हे मेरा दशन नीलकठ के रूप मे होगा। झाझूदास को उसी दिन सरयू मे स्नान करते समय तीन विग्रह प्राप्त हुए। उन तीनो का लेकर उन्होंने राजस्थान के लिए प्रस्थान किया। अयोध्या जाते समय अपने आश्रम मे झाँझूदास ने बरगद की एक डाल यह कहकर रोपी थी कि अगर मेरे लौटने तक यह डाल हरीभरी हो गई तो इस स्थान पर एक गाँव बसाऊँगा। इष्टप्राप्ति क पश्चात् जब अयोध्या से राजस्थान लौटते हुए वे उस स्थान पर पहुँचे तो उन्हे मूर्ति का भार बढा हुआ प्रतीत हुआ। यह डाल भी हरे-भरे वृक्ष के रूप मे परिणत हो गई थी। अत उन्होंने वही मदिर बनाकर तीनो विग्रह पधरा दिये और दशहरा आने पर 'रावणवध लीला' का विशाल उत्सव आयोजित किया।[1] भगवान के कथनानुसार उस अवसर पर उन्हे नीलकठ के दशन हुए। यह उत्सव आज तक जयपुर से ३२ मील की दूरी

---

१ श्री रामानुजदास 'रूपसरस' ने 'गुरुपरपरा' नामक अपनी रचना में इस घटना का विवरण देते हुए लिखा है—

पयहारी के शिष्य लखो सुचि हेमानन्दसु।
हेमानन्द के झाझूदास शिष्य जानु अह्लादसु ॥
भक्तमाल में प्रगट नाम जिनको लख लीज।
अब सुन जिनकी कथा मोद भरि हिये परीज ॥
धाम बरस गये अवध में स्नान करत मूरति मिली।
श्री सीता रघुवर लखन की कज कोस वसु दल खिली ॥१॥

पर स्थित हरसोली ग्राम में बड़े धूमधाम के साथ दशहरा को मनाया जाता है, जहाँ हजारों की संख्या में भक्तलोग नीलकंठ के दर्शनार्थ इकट्ठे होते हैं। इनकी निव्यधाम यात्रा सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार सं० १५४२ में हुई। इन्हीं की परंपरा में आगे चलकर रसाचार्य महात्मा सियासखी का आविर्भाव हुआ था।

श्री सरयू तट रामघाट जहं दरसन दीन्हें।
श्री सीता रघुनाथ लखन जुत निज जन चीन्हें॥
लखत पर्‌यो झुकि चरन लकुट इव तन सुधि भूल्यो।
मगनभयो हुष अपार देह तन रव फूल्यो॥
कर जोरे छवि निरखते नेह भयी चख वारि दर।
विनय करत सिय राम सों गद्गद ह्वै रहे कंठ स्वर॥२॥
विनवत पद महाराज मोहि नित जान सगते।
किंकरता में करों दिवस निसि अति उमग ते॥
तव माया अति प्रबल बिनासै नाहो कबहूं।
सुमिरेहू चित्त रहो नाम गुण धामोच्छव हूं॥
सखि किसोर वय भक्त कहे दया सिंधु आसा दिये।
श्री रघुनाथ कृपायतन एवमस्तु बोलत भये॥ ३॥
सुनु साँभू। अति दुलभो मोर मिलन कलि माहि।
तेरो दृढ़ता विवस किय यामें संसय नाहि॥
नित सेवन हित प्राप्त होइहौं सरजू अंतर।
ताहि काजि एकांत माँहि सुचि भूमि सुतंतर॥
सुद्ध धरा किमि जानऊं? प्रभु बोले ह्यांते अटत।
जहाँ भार मो में लखै तहाँ जानु अघ भ्रम घटत॥ ४॥
तह लीला तुम रचो विजय दसमी दिन मेरो।
रावण वध दुख हानि लानि सुख भक्ति सु फेरो॥
दस अवतार उधार देखिबे जे जन आवहि।
षट ऋतु रहिहैं तहाँ नित्य रति माया पावहि॥
लीला मेरी इमि करहु मोर नाम ते जाय।
धाम रूप गुण हिय धरहु तहाँ न माया धाय॥ ५॥
तिहि उत्सव के माँहि सदा मैं दरसन देहूँ।
कलिहित प्रगट नाहि भेष इक ओट जो लेहूँ॥

झाँझूदास के भक्ति सम्बन्धी कुछ फुटकर छंद मिलते हैं। एक पद नीचे दिया जाता है—

मगल रूप लाडली लाल।
जननी जगावत कुँवर कोशल्या उठि पहिरो मुक्तामनि माल।
अँगुरी गह अगना पाव टेको आरति अधिक उतारू चलि चाल॥
जाय सुरताया धेनु सकल के आज्ञा धो मेटहु तिहुँ काल।
झाँझूदास प्रभु रघुकुल मडन अवधपुरी विहरत भूपाल॥

नील गास को बरस ताहि दिन अति सुखदाई।
चित्र लिखावत फिरत तिनहि दुलभ कवि गाई॥
सो तनु धरि मैं आयहूँ उत्सव रति प्रति हेत।
रचक भेद न दीजियो यह तब मम सकेत॥ ६॥
अस कहि अतरध्यान भये सीता रघुनायक।
झाझू मूरति देव धारि छवि निधि निर्मायक॥
बचन प्रभू के मनन करत गये सरजू जल मे।
"हात लखे त्रयमूर्ति कही जिमि पकज दल मे॥
हाटक सिहासन सुघट कजपद कर गहि लयउ।
भई हृदय दृढ़ता अमित वाक्य सतगुनी सुख छयउ॥ ७॥
चले मूर्ति सिर धारि जथा आज्ञा पहिले भई।
पश्चिम दिसि त्रयकोस पर अचल होइ सो तहँ ठई॥
इच्छा लखि तहँ थान कियो सुचि ग्राम बसायो।
म्लेच्छ बौद्ध औ हीन नरन ते रहित सुहायो॥
स्थापित कर उत्सव कियो आयो प्रभु सोइ धारि तन।
विदित चरित कलिकाल में हरसोली लखिये नयन॥ ८॥
रधासा अरु गालवासरम बिच हरसोली।
झाँझूदास को थान तहाँ महिमा सु अतोली॥
झाँझूदास के सिस्य भए द्वै गुन निधि जानू।
रामदत्त जू बडे सु लघु नरहरि दासानू॥
गान माहिं नरहरि जये तानसेन आदिक गुनी।
अकबर सुधता मानि भज वय किसोर इमि गति सुनी॥
—श्री सियाशरण जी (जयपुर) के सौजन्य से प्राप्त।

रूपसरस जी की उक्त रचना की अन्तिम पंक्तियों से यह पता चलता है कि झाँझूदास के शिष्य नरहरिदास उनके गुरु हेमानन्द जी की भाँति ही संगीत शास्त्र के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने अकबरी दरबार के तानसेन आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञों को गानविद्या में पराजित किया था और उनके प्रभाव से अकबर के हृदय में दैन्य का उद्रेक और युगलकिशोर श्रीसीता राम के चरणों में आसक्ति का प्रादुर्भाव हुआ था। इनके स्थितिकाल को देखते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार की संभावना में कोई कालदोष नहीं दिखाई देता। अकबर द्वारा प्रचारित 'रामसीय' भाँति की मुद्राओं में अंकित सीता राम के चित्र में भी उक्त उल्लास की सार्थकता प्रमाणित होती है।

सिया सखी

महात्मा गोपालदास 'सियासखी' का राजस्थान के रसिक रामभक्तों में विशिष्ट स्थान है। जयपुर से ३२ मील पश्चिम में स्थित हरमोली नामक गाँव में इनका जन्म हुआ था। ये महात्मा झाँझूदास की परम्परा में ११वीं पीढ़ी में आते हैं। इनके पिता महात्मा लक्ष्मणदास बुडाडरा गोत्र के माहल ब्राह्मण थे। श्री रूपसरस द्वारा रचित गुरु परम्परा के अनुसार इनका साकेतवास फाल्गुन कृष्ण ६, सं० १८६७ में हुआ—

> मुनि योगीश्वर तथा वसु शशि संवत गनिए।
> मास फाल्गुन कृष्ण पक्ष षष्ठी तिथि ठनिए॥
> सीताराम समीप गये, नित सेवन हित स्वामि।

भक्ति तथा गान विद्या दोनों इन्हें अपने पिता महात्मा लक्ष्मणदास से रिक्थ रूप में प्राप्त हुई थी। ये हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में भी काव्य रचना करते थे। रामजन्म तथा विवाहोत्सव सम्बन्धी इनके ५०० के लगभग पद प्राप्त हैं।

---

१ विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—'रामभक्ति में रसिकसम्प्रदाय' पृ० ४१३। उक्त ग्रंथ में इन्हें गौड़ ब्राह्मण लिखा गया है, जो बाद की खोजों से निराधार प्रमाणित हुआ। इसी प्रकार उनका जन्म स्थान खड़ागाँव बताया गया था, वह भी ठीक नहीं था। वहाँ इनके गुरु का नाम झाँझूदास दिया गया था, वह भी भ्रांत था। इधर इनके जीवन सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं। उपर्युक्त परिचय उन्हीं पर आधारित है।

चन्द्रअली

श्री बलदेवदास 'चन्द्रअली' सियासखी जी के छोटे भाई थे। ये उनके चित्रकूट चले जाने पर जयपुर मे चादपोल वाली गद्दी के महन्त हुए थे। इधर इनकी एक रचना 'नवरस रहस्य प्रकाश' प्राप्त हुई है। रसिक परम्परा म ये यूथेश्वरी चन्द्रकला जी के अशावतार माने जाते हैं। इन्होने अपनी शृगारी भावना के अनुसार ३२ कुजो का निर्माण कराया था। रूपसरस जी ने आराध्य की अष्टयाम लीला पर इनके द्वारा रचे गये चार हजार छदो की प्राप्ति का उल्लेख किया है—

चन्द्रअली अवतार अज्ञतम नासक भानु।
अष्टयाम लीला ललित चतुसहस्र प्रमानु॥

'रामविवाह' विषयक इनका एक छन्द नीचे दिया जाता है—

जुगुल माधुरी रस बरसै री।
घन घमड दूलह शृगार पर भूषण दमक तडित दरसै री॥
नव सुषमा झर लग्यो महल में गान गर्ज कृत ललि सरसै री।
अद्भुत रससिंधु पूरित घिर भइ निमग्न सखि लगि चरसै री॥
लगी लगन अनुराग भरे सब परिजन मज्जन अँग परसै री।
'चन्द्रअली' लखि छवि विवाह की रोम रोम अति मनहरसै री॥

अपनी रचना 'नवरस रहस्य प्रकाश' के अत म इन्होंने 'युगल मजरी' नाम के एक रसिक सन्त का उल्लेख बडी श्रद्धा के साथ किया है। उससे पता चलता है कि भाव साधना म इन्होंने उनसे प्रेरणा प्राप्त की थी।[1]

सूर किशोर

रसिक प्रकाश भक्तमाल म इन्हे पयहारी जी के ज्येष्ठ शिष्य कील्हस्वामी का प्रशिष्य कहा गया है। ये भी जयपुर क निवासी थे। तत्कालीन जयपुर नरेश रामसिंह के व्यवहार से क्षुब्ध होकर जब मधुराचार्य गलता छोडकर चित्रकूट चले गय तो इन्होने भी वह स्थान त्यागकर लोहागल सीकर को अपनी साधना भूमि बना ली। जानकीजी के प्रति इनका पिता का भाव था। ये इस वात्सल्य निष्ठा का निर्वाह अपने दैनिक जीवन मे भी करते थे। पुत्री को सदैव गोदी में लिए रहते थे और उसके मनोविनोद के लिए नाना प्रकार के उपाय करते रहते थे। अयोध्या आने पर इन्हे किस प्रकार दिव्यदम्पति का दर्शन प्राप्त हुआ, इसकी

१ विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—रा० र० सम्प्रदाय, पृ० ४२७।

कथा लोकप्रसिद्ध है।[1] माधा प्रयागदास इन्ही के शिष्य थे। इनकी सर्वविदित रचना 'मिथिला विलास' है। इसके अतिरिक्त इनके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं। नीचे 'पदमुक्तावली' मे प्राप्त इनकी तीन रचनाए दी जाती हैं। इनमे प्रथम का प्रतिपाद्य 'अगद रावण-सवाद' है। इससे विन्ति होता है कि सूर किशोर जी ने भावपूण पदो के अतिरिक्त कुछ चरितात्मक रचनाए भी की थी। इस प्रकार की इनकी कोई रचना अब तक प्रकाश मे नही आई थी। दूसरे छन्द म जानकी चरणो मे अनन्य निष्ठा व्यक्त की गई है और तीसरे छद मे धनुपयन का वणन है—

आव रघुवीर की सरन अङ्गद कहै मानि मत मूढ बर बचन मेरो।
जाहु रे जाहु जब कोपि लकेश कह्यो भुजनि मेरी बसै काल तेरो॥ टेक॥
सुर असुर नाग नर बली इते जगत मे इन्द्र ब्रह्मादि सबही नवाए।
यह अद्भुत बडी बात पीछै रही रीछ कपि लक गढ लैन आए॥२॥
बाम कर की अलप अगुरी अक भरि लक छिनकमाँही ढहाँऊ।
कहा करौं नैंक मोहि सक रघुबीर को रक तुहि मारि अब ही उडाऊ॥३॥
हौंहि ऐसौ बली मुगध कपि काहि नैं बालि स बाप को बैर लीनो।
तात के भ्रात की पतनि माता करी शत्रु की सरन जाय मूड दीनौ॥४॥
हेतु ममतात मैं रावरे स लछित धर्म की मैंड जिहि फोरि डारी।
परि है अब धूरि सुनि रावरेहू वदन राम अवतार बल डड धारो॥५॥
सुनत ही वचन जानो फनिग को फन चप्यो सिंघ की पूंछ सोवत मरोर् यो।
परजरी आगि उर बीस लोचन बिकल पटकि भुज उठत मित्रन निहोर् यौ॥
जोलों यहै ऐंड अभिमान मद की मरनि ग्रीव मैं बकि है ढ्रीष्ट धीठी॥
सरस रन बाँकुरी भुजा रघुवीर की जोलौं मति मूर्ते नाहि दीठी॥६॥
चपल बनचरन की जाति चर बोर अति कहा राजान सौ बोलि जाने।
छत्र की छाह इद्रादि सर धर करै बक्त नहिं-धीठ जहाँ सक आनै॥७॥
करहुँ जिय सक जो अधिक ताकौं गनौ जौ कछू अपनपौ घटि बिचारो।
भुजन सौं लपटि द्रढ-पाल सब दलमलौं धरनि नभ पत्र ज्यौं फारि डारौं॥८॥
अवर भटभेर समसेर अघसेर तू आपनौ बल हीये नहिं बिचारै।
कहत परधान महाराज रावन बलौ मुग्ध क्ति आप सौं बाघ मारै॥९॥
पर् यो बलि द्वार प्रतिहारि बावन गन्ना किंकरो कौर दै दै जिवायो।
तात मम पालणै आनि बाध्यौ तवै रहपटन मारिकै उबर ल्यायो॥१०॥
मह मरम कै वचन सुनि पेद उर मैं भये चटपटी जीयें भृकुटी चढावे।
है कोई सूर सावत मेरी सभा मारिल्यो मुगध नहिं जान पावे॥११॥

एक रहपट दीये मुकट उडि जाँहिगे सभा सब चरन सो चापि डारौं ।
बालि को पूत यह सोचि जीय मैं कहै सिव ह्वोय मीडकनि कहा मारौं ।।१२।।
किहै अपराध उतपात छोटेन कौं बडन को क्षमा भूपन कहावै ।
जान द्यो दूत अवलों न मारे कहूँ पसुन सौं लरत जिय लाज आवै ।।१३।।
कहै सूरकिसोर हँसि बालिनदन कह्यो कौन अब सीस तो सौं चपावै ।
नैक धरि धीर रणधीर रघुबीर भट देषि तरवारि कैसी बजावै ।।[1]

राग भैरु

जानकी पद रेनि की मोहि जनमि जनमि आसा ।
अरथ धरम काम मोछि सब वन तैऊ दासा ।। टेक ।।
मदगयद अगद हनुमान सरन जासा ।
सिव को ध्यान निगम गान मुनिन कौं निवासा ।।१।।
सुरग भूतल जोग भोग ब्रह्म लोक वासा ।
सूर किसोर सब सुप पट विजन को निवासा ।।२।।

राग पचम

हुठये सिम्भु को चाप लिय सुभट सब,
पचि रहे तनकहूँ नाहि काहू उठायो ।
कह्यो सिर धुनि निप जनक येह,
जगत मैं नाहिं ऐसो वीर कोउ जननी जायो । टेक ।
सुनि बचन लषन म्रगराज मनु, ऊछल्यो
अगि ऊफणो चली सुभट ताई ।
कह्यो कोदड कर षडि डारू असै,
बक अवलोकि भौंहैं चढाई ।।१।।
अनुज कौं राषि प्रभु बाँधि कटि, पीत पट,
नाय गुर सीस अनुसीस पाईं ।
उदित भयो भाल सोभा अषिल भवन की,
अमित बल तेज गभीरताई ।।२।।

---

१ पदमुक्तावली छद सख्या १६, ३६ अ, ब, ४० अ
२ पदमुक्तावली, छद सख्या ८८

मच परभात के भान स जगमगे,
ऊमगिइ गुरज नहि रह या छानू ।
जनक महाराजि मुपचद कहु दुरि गयो,
ओर निप देपि ऊग्गन मिलानू ।।३।।
उतरि छिवि सो चले अतिहि लागत भले,
कुरप ले दरस ते जरे जाही ।।
ऐक ही बार दुप भाजि गयो सबन का,
रह गयो तनक सो मनु तहाँ ही ।।४।।
अवनि पग धारते मदन मन मारते,
भाट चहुँ ओर ते बिरद बोले ।
जिना बानेत रघुवस के बाँकुरें
जनक दुपपाट ओर कौन पोलें ।।५।।
फबी हैं अलक बह ललित मुप कमल परि,
माधुरी हँसनि मुप सबन दीहैं ।
मत गजराज भुज सुढि फेरन जटकि,
चरन लौं सलकि चित चोरि लीहैं ।।६।।
सावर कुँवर सिव चाप भजन चल्यो,
बात बहु जाय पुर मैं चलाई ।
पलन क ललन छाडे ललना सकल
कल न परि तनकहू पल न लाई ।।७।।
रमती झमती अट अटनि मैं बहो,
घटिन मैं मानु छटा चिमक्के ।
हुलसती बगिसती निकसती देत छवि,
उडत अचल चपल अँग दमक्के ।।८।।
हे सपी ! हो सपी हो ननद आवरी
सास किवु भ्रात भगनी बुलावे ।
है बडो चावरी दमकि चलि आवरी
साँवरे धनस कैसे उठावें ।।९।।
मानु आनद को मेह बरस्यो नगरि
तरजि भामनि चली गलिन माँही ।।
प्रेम जल तीर तुब हो तुरत आतुर,
चली अगि भुपन मुकर झलमलाई ।।१०।।

अरवरति परत उरझत पद चीर लगि
अग सुधि भुलि भूपन वनाईं ॥
हार कहूँ कनक भूपन कहूँ कठ मनि
कुल वधू वदन सबही दीपाई ॥११॥
लोक अर वेद की लाज कुलकानि तजि
छुटि गई एक ही वार जैसे ।
जैसे ससार भुप सवनि वैराग भरि
फिर चले भवनि आवै न तैस ॥१२॥
लाल के अग सो ललकि लपटी चहैं',
भीर गुरजनन की अरवराई ।
उरझि केउ अलक सुभाल के उ तीलक
सुपाघ अनुराग न्धिनि अघाई ॥१३॥
केउ उर माल केउ चाल देपि छकि रही
केउ मुप देपि साभा लुभानी ।
नैन केउ नासिका करन कुडल निरपि
उरनि केउ आपि मुरयो न पाई ॥१४॥
देपि रणवास दरवार कवतगि लग्यो
जन मैं सीये मात सीय अग्न राई ।
अलप जल मीन ज्यो कसमसै मनहिमन
कठिन वोदड उठवै कै नाही ॥१५॥
द्रगन की कोर का वोर न्पि रसमस
लसे कछु आपयो करि अधीनू ।
कलप सो पलक मैं जान जायो न प्रभु
प्रगटि कीयो प्रेम फिरि चली नवीनू ॥१६॥
देपि रहे चाहि नर नारि अबर सकल
पुर जा पुर मैं कहु ना समावै ।
भीर मैं चीर फटि टूटि भूपन परत
गिरत पग धरत कोउ नावु नावै ॥१७॥
घूरि उडि भूरि परि सोर अधार मयो,
दरसरे जातिन्न रह लव लाई ।
मनुह वरपा समै उमगि वहो वरल को,
प्रेम जय वन वादर चलाई ॥१८॥

सुरवधू ठोर ही ठोर सब जाँनि चढ़ि
प्रेम बेहबल भइ अति सुहाई ॥
हरपती बरषती फूल रघुवीर परि
निरषिती बदन लेती बलाई ॥१६॥
रूप की रासि सीरमोर राजान के
देषि सीये मान हीवरो सीराणू ।
ऐह कुवर लाडिलो होय जु कुवरि को
सुफल करि जनम बड भाग मायो ॥२०॥
सीये कें सतति सकलप मेरे करनि
मात को पूत अैसो जनैगो ।
एह म्रदुल कमल सोवेंह वज्र कठिन
सोहा दई बात कैसें बनेगो ॥२१॥
होह जनि हारि कहु नारि धीर न धरे,
ज्यो ज्यो प्रभु धनसवे निकटि आवें ।
आपनु आपनु पुण्य फल दान दे
लोग सब देव देवी मनावे ॥२२॥
कोहु देषो न जायो नही कब गह्यो
राम सिव चाप असे चढायो ।
अति विक्राल महाधाल तिहु लोक को
तनक में तोरि धरनी गीरायो ॥२३॥
डीगमगे धरनि सिसि तरन हूँ थरसलै,
कमठ सिव सेसहू कलमलाये ।
सुरग पाताल द्रगपाल सागर झलकि
गाजि ब्रेह्मड सब डगमगायो ॥२४॥
नगर नभ माहि नीसान बाजन लगे
बीजै की रीति कुवरि राम लीन्ही ।
जानकी आय परि पाय करि कूवल सू
लाल कू माल पहराए दीन्ही ॥२५॥
उठि गये भूप सब बदन करि करि बुरे,
जनकपुर राम सीए व्याह ठान्या ।
व्याहि प्यारो कुँवर आय कवसल नगरि
सूर किसोर तिहुँ लोक जायो ॥२६॥

बहुरयौं श्री गुर चरन कवल कौं बेर-बेर सिर नाऊँ ।
चरित मनोहर श्री रघुवर को बाल केलि को गाऊँ ।।
छगन मगन प्यारौ राजवौ जू जनक सुता हित दाय ।
किलकि-किलकि सरपरनि सौं चलत घुटरुवन धाय ।।
छगन मगन प्यारौं ही भाई जनक सुतनि हित दाई ।
बाल विनोद चाहि सब जननी आनन्द उर न समाई ।।
रतन जटित नृप मदन अजिर मधि बिहरत बाल सुभाई ।
बाल केलि तिन की गति निरषत 'जन हरियौं' बलि जाई ।।२।।
प्यार कुवर बडराईज जू प्यारौं अति सुकमार ।
राजिवनैन सुहावने जू विहरैं नृप मन मझार ।।
दोय गोर दोय नील बनजतन राजत रूप उदारा ।
पीत झँगुली सीस चौतनी उर मोतिन कौ हारा ।।
कटि तटि किंकिनि रुत मनोहर पद नूपर झुनकारा ।
राय आँगन मैं राजकुवर मिलि प्यारो करत विहारा ।।३।।
नृप दशरथ के लाडिले जू बिहरत अवधि मझार ।
सग सषा लीये जोरि कै जू सबही ऐक उनिहार ।।
बाल केलि के ललित विभूषन फवि रही छवि असभारी ।
कटि तूनीर पीत पट सोभित करवर कोदंड धारी ।।
सुर नर मुनि जन पुरबासिन कौ विपुल सुआनन्दकारी ।
नृप दशरथ के कुवरन ऊपर जन हरियौ बलिहारी ।।४।।
रघुकुल मणि प्यारो राजई जू बिहरत सरजू तीर ।
कटि तटि माथ सवनि रहे जू सारग घरे रघुवीर ।।
सारग धरे रघुवीर विभाकर सोहैं गुण निधि गभीरा ।
जन मन करषत आनन्द बरषत विहरत सरजू तीरा ।।
इहि विधि विहरत निकर सषा लियें निगमहुँ पार न पावैं ।
निरषि केलि कला श्री रघुवर की पुरजन मनहि सिहावैं ।।५।।
दशरथ सुत प्यारो देषने जू आए रिष अवधि निकेत ।
राम लषन मन मैं बसे जू बरनत श्रुति समेत ।।
तिन की कीरति गुन गरवाई बरनत श्रुति सनिकेतू ।
दई आसिषा रिषवर नृप कौं जीव जिग सिधि हेतू ।।
बारे सुत रिषवर कौं दतें सकुचे दशरथ राई ।
प्राननहू तें अधिक पियारे तातें दीये न जाई ।।६।।

तब बोले रिषराजजू जी कीये मुनि वेद उचार ।
सुनहु बचन बड भूपती जू करि नीहचै निरधार ॥
राकस कुल कौं जीति अवधिपति ये हरि हैं भू भारा ।
सिधि करैं मम जिग कौं निहचे ऐ दोउ राजकुमारा ॥
कल कीरति रघुपति की भू पर ए करिहैं बिसतारा ।
इनमे गुण सु अपार अमल सुठि कहि कोउ लहत न पारा ॥७॥
इह सुनि कैं नृप हरषियौ जू दीयें सुत रिष कीहौ लार ।
'जन हरीयौ' तिन ऊपरैं जू वार्यौ बारबार ॥
दशरथ भूप हरषि कैं रिष कौं दीयो कुवर दोउ भाई ।
चले हैं चाप असन धरि धरिकैं सोभा बरनी न जाई ॥
पीत बसन गज तार हार उर भूषन अग छबि छाए ।
सुन्दर मुष की सोभ मनोहर रिष सग लगन सुहाय ॥८॥
रिष कैं सग मग मैं चले जू दोउ बर बीर उन्दार ।
बला अतिवला विद्या निपुन्य जू कीये दोउ राजकुमार ॥
ताही अवसरि नाम ताडिका आई बन करत बिहारा ।
श्री रघुवर अस लषी राकसी कीनौं धनुप टकारा ॥
ऐंचि बान उर वेध्यौ रघुवर मुष चली रुधिर की धारा ।
निकसे प्रान छिनक मैं ताके लागे मरम सुमारा ॥६॥
देषि पराक्रम राम को जू रिष हरषे बारबार ।
माधुरी मूरति वड हरष सौं जू ताये उर प्रान अधार ॥
अतुल प्रताप देषि रघुबीर कौ हरषे रिषबर राई ।
मम जिग्य कौ ये पुरन करिहै निहचै मन मैं आई ॥
जगत ईस तिनकै सग लागे धन्य रिष भाग निकाई ।
कौसलेस के कुँवरन ऊपर 'जन हरीयौ' बलि जाई ॥१०॥
चलि आश्रम रिष कैं गये जू सुन्दर वीर उन्दार ।
रिष आरम्भ जिग्य कौ कीयौ जू आये और रिष अपार ॥
जिग्य मधि बैठे सब रिषवर कीना वेद उचारा ।
ताही दिन मिलि कैं दोउ राकस आए दुपहरी बारा ॥
श्री रघुकुल मणि लेष निसाचर कीनौ कोदड कर धारा ।
दोय बान लै साधे रघुवर बेधे भरम सुमारा ॥११॥
एक बाँन लग्यो मारीच कै जू डार्यौ सिंधु मझारि ।
दूजो लग्यो हैं सुबाहु कै जू मरत न लाई बार ॥

सप्त दूधीस कीनी जग्य रछ्या बीरासन सउदारा।
सात बरस के दशरथ नन्दन हरे राक्स मु मारा ॥
पौहोप वृष्टि वृन्दारक कीनी बाजे दुदुंभि बाजा।
हरषे सुर मुनिवर बनवासी सर्‌यो रिपवर को काजा ॥१२॥

हरषे हैं रिपवरराम जू जी भए मन भाँवतो मोद।
मौ चतुराननं ना लहै जू सो रिप लीने गो ॥
लीने गोदहि रिपवर जू नै नेह लागि दोउ भाई।
कौसलेस के कुवर सुन्दरवर पूजे रिपवर राई ॥
मिथलापुर मिथुलेसुर जिग की हिन सौं कथा सुनाई ॥१३॥

जनक सुयम्वर ठानियो जू सीताजू को ब्याह।
कुँवरि विवाहन कारने जू कीयो नृप बहुत उछाह ॥
सुर जुरे रसातल भूतल के नर सूर बीर अधिकाए।
धनुष जग्य सुनि जनक राज को देषन कौं चलि आए ॥
देस देस के भूपति मिथुला आये जग्यउमाहे।
भवधनु धारि ऐंचि कैं भजे सोई कुवरि विवाहे ॥ १४ ॥

फिरि बोले रिपराज जू जी चलो हो तो देषन जाँय।
मिथुलेसुर बहु भाँति तें जू सनमुष मिलि है आय ॥
तुम कौं लषि मिथुलेसुर भूपति पूछिहै नेह सुभाई।
भूपन मे रघुवंस राय जस बर्नि हैं अधिकाई ॥
मधुर बचन सुनि मुनिवर जू के हरषे दोयो भाई।
मिथुलापुर के जिग्य को देषन मन मे ऊपजि आई ॥ १५ ॥

मुनि के सग मिथुला चले जू श्री अवधेस क लान।
पीत बरन कटि काछनी जू हाथ सर चाप रसाल ॥
बरन कनक कली सीस चौतनी मृग मद तिलक रसाला।
नाना रग सुहावन सुन्दर उर कुसमनि की माला ॥
मुनिवर मन के मोद बढावन राजीव नैंन बिसाला।
'जन हरियौ' बलि सोभा ऊपर मानौ मग चलत मराला ॥ १६ ॥

गौतम के आश्रम गये जू श्री रघुवर पावधारि।
आश्रम देषि सुहावनो जू बोले बचन विचारि ॥
आश्रम रम्यो कौन कौ रिप जू कहिये विधि सुविचारी।
विटपनि करि अति हरित मनोहर सोहै सुमन फलभारी ॥

अति रवनीक सुहावन आश्रम सब विधि आनद दाई।
हीन रहत मृग पछी कुन विन हम कों कहौ सुनाई॥ १७ ॥
तब बोले रिप राजजू जी कुवरन के हितकारी।
आश्रम रिप गौतम कौ जू थापी अहल्या नारी॥
चरन रति वाछित है नित प्रति चलौ मु याकौं तारौ।
कीरति होय तुम्हारी भूपर उधरिहै रिप की नारी॥
सुनि वर नारी उधारी रघुवर पति के लोक सिधाई।
जन हरीया श्री राम चरन भजि अमलस आनन्द दाई॥ १८ ॥
मिथुलापुर मुनिवर गये जू वैठे रिप बाँटिक जाय।
पूजा द्रव्य विधि सौं लिये जू आये मिथुलापुर राय॥
कर्‌यो प्रणाम भूप रिपवर कौं पूजो "ह विविध सवनाई।
राम लपन दाउ दपि जनकजू पूछे रिपराज सुमाई॥
कौन भूप के कुवर छवीले अतिसै आनन्द दाई।
विनही नातै लगत सुहावन मुनिवर ए दोउ भाई॥ १६ ॥
तब बोले रिपराज जू जी मन मैं अति रुचिपाई।
सुत वड अवधिमुवाल के जू भूपति ए दोउ भाई॥
प्रथम सिधारी नाम ताडिका रघुवर बन मैं आई।
मम जिग्य कौं ईन पूरन कीनौं हति राक्स दुपन्दाई॥
श्राप मोचि रिपवर पतिनी कों आए भव पो"ड चाई।
राम लपन इन नाम जनक जू इनमे गुन गरवाई॥ २० ॥
फिरि बोले रिपराज जू जी हित सौं वचन सुनाय।
वेगि सरासन सम्भु कौं ज "पिवौ इनकौ आय॥
यह सुनि के हरपे मिथुलेसुर दीये भट तुरत पठाई।
रिपवर जू सौं नेह लागि कैं बोले वचन सुनाई॥
चाप चढावैं रामचन्द्र जू जाय कोटि सौं लाई।
मम आतमजा कुवरि जानकी देहु इनकौं सवमा माई॥ २१ ॥
तब हरपे रिपराजजू जी कुवर सनेह सुमाई।
हँसि कें परम उछाह सौं जू रिप चितये दोउ भाई॥
मुनिवर हरपे आनन्द बरपे मन म अति सुप पायौ।
जो कहूँ रघुवर चाप चन्ढावैं होय मनोरथ मायौ॥
जनक भूप वहु भाँति विनय करि पूजि पाहुन पाये।
रिपवर सहित कुँवर दशरथ क जिग्य भूमि पधराये॥ २२ ॥

रघुकुल दीपा जिय मैं जू बैठे वड मत्र विघाय।
रिषवर जू की गोद मैं जू लागत परम सुहाय॥
कोमल तन दोउ राजकुंवर वर सोभा बरनी न जाई।
सहस किरन कौं संग लै सोभित मानो रवि जगे आई॥
तिहि अवसरि दोउ कुंवरन निरख रहे नर नारि लुभाई।
हरपि हरपि दोउ कुंवरन ऊपर जन हरीयो बलि जाई॥ २३ ॥
दस देस के भूपत जू होते जिग्य मझारि।
महा सुभट सस्त्र धरैं जू आय साजि सिंगारि॥
करहिं रोप अति देपि चाप कौं धारैं भुजा पसारी।
चाप चलत नहिं नैंक अवनि तें पल पचि पचि हारी॥
केते गये बिसारि दाप कौं भूप लजय मुखाई।
महा निलज त लाज बिहूने रहे अभिमान धराइ॥ २४ ॥
पंच दस सहस्र भट लागि कैं जू ल्याये चाप चलाय।
बहु घटनि भूषित कीयो जू धर्‌यो है सभा म आय॥
दससिर आदि सहस्र भुज से भट कोउ न सक्यौ उठाई।
भव धड दाप ताप तें सकित केते गये पलाई।
भूप देखि ता महा चाप कौं केते भूप पलाए॥
जन हरीया त पुनि पुनि सोचत जैस वित्त गमाए॥ २५ ॥
सोचे हैं जनक भुवाल जी लीनैं नृप भाट बुलाय।
सुमति बिमति दोउ सुनत ही जू आय बेग चलाय॥
तिहिं अवसरि दोउ भाट सभा मधि लानी भुजा उचाई।
सुरगुर रसातल भूपालन सो बोले बचन सुनाई॥
सुनौं सभा के सबै भूप मिलि मिथुलेसुर पन सोई।
चाप चढावैं गिरजापति कौं सो कन्या बर होई॥ २६ ॥
सुभट नहीं कोउ तुम मही जू सक्यौं नहीं चाप चढाय।
काहे कौं तुम आईयेजू जैहौ लाज गमाय॥
सुनत ही बचन भाट कौ लजि कै भूप गय मुरमाई।
तिहि अवसर रघुकुल के मडन हरपे दोऊ भाई॥
रिषवर महत कुंवर दोउ हरपे भूप सबै बिलपानैं।
हंस उदेलैं मौर भये मानौं सारग फीक फिकानै॥ २७ ॥
भाट बचन सुनि राप क जू बोले हैं लपन रिसाय।
रघुवसनि कौं सुनत ही जू ऐसैं कोउ कहत न काय॥

मो कों आग्या दीजे रघुवर लैहों तुरत चढाई ।
छत्र क दड सम न जों सरासन तो हो वीर कहाई ॥
तुम आग्या भगवान भुवनपति ढ्यों ब्रह्मांड उडाई ।
जर जर जठर मनाक सम्भु को को अम कोदड आई ॥ २८ ॥
श्री रघुवर तव लपन कौ जू बरजे हैं सहज सुभाई ।
रिपवर आज्ञा पाइ कें जू ऊठे हैं रघुवर राइ ॥
श्री रघुबर अस जानि लपन कौं वरजे हैं सैन सुभाइ ।
अग्या पाय राज रिप जू की उठे हैं रघुराई ॥
उठे हैं रघुकुल बस बिभाकर हरपे हैं सत सरोजा ।
कुमद बिमन भये अम्त अवनिपति मिटि गयौ सब की वोजा ॥ २६ ॥
कोतुग देपन राम को जू आये पुर के नर नारि ।
चढि चन्दि मन्दिर मालिया जू त्रिय डारें भूपन वारि ॥
नैंन निरपि दोउ कुवर लाडिले हरपें वारौं वारी ।
मियुलापुर की नारि नेह लगि तन की दसा बिसारी ॥
चित्र समान भये नर नारी पल सौं पल नहिं लावें ।
मियुलापुर जन भाग की महिमा ब्रह्मादिक नहिं पावें ॥ ३० ॥
छवीले कुवर दोउ देपि कें जू हरषी सब पुर नारि ।
आनन्द उर न समावई जू रघुवर रूप निहारि ॥
रूप निरपि आनद भयो जू सब के ज्यूं सफरी लह वारी ।
भामिन दोऊ कुवरन ऊपर तन मन करे सु वारी ॥
रूप निहारि कुवर रघुवर कौ जुवती ऐसे आनें ।
कुवरी को वर होहि सावरो जोर विधाता वानें ॥ ३१ ॥
नारी मनावें देवता जू हरिहर गणपति राय ।
चाप चलावै राम जू जी कीज्यौं सबही सहाय ॥
आजि लगें पूजे नाना विधि हम जो हेत लगाई ।
चाप चढ़ावें श्री रघुवर जू कीज्यो बेग सहाई ॥
नारि सवे मिलि देव मनावें वेर वेर सिर नांवें ।
हौय मनोरथ पूरन हमरो रघुवर चाप चढावें ॥३२॥
सोचत पतनी जनक की जू सपीयन सहज सुभाई ।
नेम कठिन भूपति लीयौ जू जो कोउ वरजै जाई ॥
कठिन नेम लीनों बड भूपति जो कोउ वरजै आई ।
लली जोग वर कुवर सांवरो सब भूपन कौ राई ॥

ऐसें पिय़नाय जनक की रानी रघुबर रूप निहारी।
गैरघ धनुष कुंवर अति कोमल बनी कठिन अति भारी ॥३३॥
चतुर सखी बोली नेह सौ जू सुनौ रानी बचन सुहाय।
कहाँ वारिनिधि बडो अगम अति कहाँ अगस्त मुनिराय।
कहाँ वारिनिध अति बडो जू कहाँ अगस्त मुनिराय।
सकति प्रताप सबल सरितापति अँचें गये सहज सुभाय॥
सप्त दीप कित महा मेदनी कित रवि मंडल सोई।
व्यापित चराचर तेज दसौं दिसि अमल प्रकासक होई ॥३४॥
योंही रघुवर धनुष कौं जू तोरि हैं लेहैं तुरत चढाई।
ससय मन में जिन करो जू होयहैं जू यह सति माई॥
सखी वचन सुनि अति सुख पायौ उपज्यौ आनंदभारी।
हरषी नारि जनक की मन मैं हरषी जनक कुमारी॥
इहि विधि करत विचार जनक तिय रघुवर छबिहि निहारैं।
निज कुलदेव मनावत रानी तन मन धन सब वारैं ॥३५॥
कुंवरी झाँके गोखरे जू कर बर माला धारि।
रघुवर रूप निहारि कै जू रही मन सोच विचारि॥
सब सखीयन सौं कह्यौ कुंवरि यो कोमल बचन उचारी।
बरिहैं कुंवर साँवरो सुदर चाप चढावो कोउ धारी॥
इहि विधि कुंवरि कह्यो जो तिन सौं अस जो भूप दिखावा।
राजकुंवरि वर्‌यौ सांवरौ कोउ दुदुभी बाजे हरषे हैं जनक भुवाला ॥३८॥
तब मैथुलपुरराजजू जी कहौ रिखवर सो जाय।
अवधेसुर भूपाल कौं लीजे वेगि बुलाय॥
मुनिवर कह्यो जनक सौं इहि विधि कीजै वगि उपाई।
नृप रिषवर की आग्या पाई पाती लिषी है बनाई॥
स्वस्ति स्वस्ति रघुकुल क मडन श्री कोसलपुर राई।
दोउ कुंवरन कौं सगि ले भूपति आवौ जान बनाई ॥३६॥
पत्री लिषी है सनेह की जू दीयौ नृप दूत पठाय।
चाल्यौ दूत उतावलौ जू अवधि पहुँचौ आय॥
पत्री आय भूप दशरथ कौं दीनी सीस नवाई।
बाची हरषि नेह लगि हित सौं श्री अवधेसुर राई।
कौसल्यादि मात सुन हरषी पत्री जनक पठाई।
हरषे फिरत सकल पुरवासी राम लषन सुषि आई ॥४०॥

बाजत अवधि बधावनी जू भूपति दशरथ द्वार ।
हाटक मनि गण दूत को जू रानिन दीनें हार ।।
पुर के तरुन जठर नर-नारी मन अनमोद न मावै ।
मंगलचारू ब्याह को ग्रह ग्रह बाजत अवध बधावै ।।
सजी बड जान सुहावै अवधिपति सोभा बरनी न जाई ।
हय पय गय रथ विविधि भांति के चतुरंग सेन बनाई ।।४१।।
बड गैंवर रथ राजई जू सजी नृप जान सुहाई ।
हय दल पय दल धुमराजू लागत परम सुहाई ।
धुजा पताका फरहरै छवि सौं परत निसाना घाई ।
इहि विधि रघुकुल मंडन नृपति मिथुला पहुँचे आई ।।
हरखे निरत जनकपुर वासी सजहिं समगत साजा ।
बड मंगल सौं मिथुलापुर मैं बाजे मंगल बाजा ।।४२।।
सोहेलो अवधेश जू आय मैथुलपुर राय ।
गज गिधू रथ राजई जू बहु विधि साज बनाय ।।
पुरजन संगि गुरजन मिलि आय दरसन हेत गुसाई ।
बाजै विविधि बजावहिं गायक नचत अस नृतत चाई ।।
सोहेले अवधेसुरजी कै श्री मिथिलापुर आय ।
परम उछाह सम्न सोभा कुत कहा विधि सौं पथराय ।।४३।।
रिषवर को अवधेस जू मिले हैं अति हित भाय ।
रिषवर दोई राजई जू मध भूप दशरथ पाय ।।
पदवद मुनिवर क भूपति बर बर गिर पाय ।
राम लखन दोउ साहित लीनो उर सौं लाय ।।
दोउ कर जोरि भूप रिषवर की कीनी बहुत बड़ाई ।
नेह सगाई जनकराज की तुम किरपा सौं पाई ।।४४।।
मिथिलापुर मगन भए जू हरष सब नर नारी ।
सोभो नगर चौहटा जू राचे है सघन सुपारी ।।
चामीकर लय मिन सदना चौक पूरे मुक्ता वारी ।
रचरचा गुर बंदि कोकिला चित्र हि निरख सँवारी ।।
भूपति भवन जनमयें अति सोभा बनी सम भारी ।
सोभा सम्पन्न अति कनक क राचे है चातुर चारी ।।४५।।
सोरम भए है रमार्दभ जू रघुवर रामकुमार ।
रतन खचित सिर सेहरा जू हीरा मानी मुक्ता ज्यार ।।

पहरें कुवर वसारया जामा उर मोतीयन के हारा ।
अस्व आरोहन दसरथ नन्न जान बनी इकसारा ॥
मगल कलस सीस धरि भामनि नीराजने आई ।
तिहि औसर रघुकुल मंडन पर जाहरीयो वलि जाई ॥४६॥
कुवरन को करें आरत्यो जू जौती जन बारौबार ।
भामिनि चढि चढि मानिया जू गावें मगलाचार ॥
जलसुत कुवरन उपरें जू सुदरि मनु वरपे जल धारा ।
वृन्दारक पे निरपि हरपकें बरपत कुसम अपारा ॥
तोरन बाँधि विपुल सोभा सौं फिरि जनवासें आये ।
जनकराय बड सोधि महूरत चार्‌यो कुवर बुलाये ॥४७॥
चौरी चढ़े हसि लाडिल जू बैठे मडप तर जाय ।
वसिष्ठ मुनि बिस्वामित्रजू जी सतानद वैठे हैं आय ।
अवधेसुर मिथलेसुर दोऊ लीने भूप बुलाई ।
कुवरन बावें बोर वेद विध लाइ कुँवरि पधराई ॥
अतुलत छवि धरि कुवर लाडिले बैठे मडप आई ।
दूलह दुलहिन सोभा ऊपरि जनहरीयो बलि जाई ॥४८॥
जनकराज बड हरप जू धोये रघुवर पाय ।
सो जल लें निज सीस में जू धार्‌यो नेह सुभाय ॥
फिर बोले मिथलेसुर भूपति कोमल बचन सुनाई ।
मैं तुम को मम कुवरि जानकी दीनी है रघुवर राई ॥
जनकराज बड अमल हरप जुत कीना बहुत बडाई ।
प्यारी कुँवरि प्यारी कुवरन को दीनी मथुलराई ॥४६॥
सीता अरपी राम को जु उरमिला अरपी सेप ।
श्रुतिकीरति सत्रुघन कौं जू माडवी भरथ बसप ॥
इहि विधि भूप कुवर को करगहि कुँवरी पाणि गहायो ।
भव चतुरानन दुलभ दरसन सा बर चौरी आयो ॥
वरनो कहा सो औसर को सुख भारती बरन न जाई ।
कै जानें तिहि समय निकट जन कै दोउ भूपति राई ॥५०॥
बसिष्ट कहें देपो जनक को जू धनि बड भाग विप्यात ।
सीता सी निज पुत्रिका जू रघुवर से जामात ॥
भव चतुरानन ध्यान न आवें निगमहु अगम बतायो ।
अकल अपार अनीह अगोचर सो बर चौरी आयो ॥

नीरस ज्ञानी लहै न सुपनै तपसी तप करि हारे ।
जनकराज निज कर पद धोये तोय सुसीतल धारे ॥५१॥
बसन गाठि रिषराजजू जी दीनी है विधि सोबनाय ।
पाणिग्रहण कीने परसपरजू लागत परम सुहाय ॥
कनक कलस बिचि राप्यौ विधि सौ मुनीयन चौक पुराई ।
सात्लिसमिध मगाय तिहूँ मुनि कीनौं ह्वौ मखु आई ॥
वेद रीति करि मुनिवर हित सौं पाणिग्रहण करवायौ ।
जातवेद कीयौ जुगत मत्र करि फेरा कु कुवर उठाये ॥५२॥
दुलहिन सग लेत भावरि जू दूलह राजकुवार ।
बहु विप्रन कौ सग लीये जू करै मुनि वेद उचार ॥
अटनि झरोषा नवल भामिनी गावैं मगलचारा ।
हास्य करै नवछावरि मणिगण मुक्ता बारौवारा ॥
वेद रीति करि दई भावरी फिरि आसन बैठाए ।
भई हथलेवौ छोडन बिरिया मुनिवर जनक बुलाए ॥५३॥
हथलेवौ बहु विधि दियौ जू श्री मैथुलपुर राय ।
जनक कनक नग बहु दीय जू बरनि साकासौं जाय ॥
भूपति निरषि कुवर कुवरी कौं आनद उर न समाई ।
रानी हरप न मावै मन मैं वर वर बलि जाई ॥
जनकराज गड वेदरीति करि हथलेवा सछुडाय ।
परनी कुवरि मिथिलेसुर जू की अमर पहुप कर पाये ॥५४॥
भूपति बोले जीव नैं जू श्री मैथुलपुर राय ।
घन मोला अति सोहना जू आसन दीये हैं विछाय ॥
चौकी जटित रतन मणि मुक्ता धरी सब आगैं आय ।
झारी भरी है नीर सातल सौं सोबरन थाल सुहाय ॥
च्यारौ कुवर सहत अवधेसुर सोभित जान सुहाई ।
मिथलसुर माढे याहि विधि जीमन बैठे आई ॥५५॥
निकर नृपन कौ सग लीय जू परोसै निरोहितराय ।
बहु पक्वान ससालना जू गिनीय सोकापै जाय ॥
भक्ष भोजि अर लेह जि चोषि सुरचि बहु भाँति बनाई ।
वड पहुँनो तिरोहित पति की का अस बरनि सुनाई ॥
कनक जीराई भोगकोर कल्यौ हीरजाति सुपन्तासा ।
झिनवा दौंन प्रसाद कमोदा सगरौ परम सुवासा ॥

दही चगरया जर्यों सरम अति चिवरा सकर मिलाई ॥५६॥
मुगोरी मन भावता जू पापर चनक पतार।
दहिय वटक अरु बिन दही जू सालन अगिनत और ॥
नीबू आब अरु कैर अथाभो बहु बिधि धर्यो बनाई।
अदरष रुचिर अमरकद अरइ बेसन भटा सुहाई ॥
किसमिस दाष वेलि फल पारिख विविधि भाति धरे आई।
अमृत फल सहतूत सब फल कमरष अति रुचिदाई ॥
जनक रतन जटि बिजना ढोरैं नेह न वर्या जाई।
जनक राय कैं नवल नेह सौं जीमत रघुकुल राई ॥५७॥
दूलह रामलला तोहि गारी कहा कहै दीजे हो।
दूलह राम लला तुमरो रूप निरपि कैं जीजे हो ॥५८॥
दूलह राम लला तुम जबतैं इहि पुर आये हो।
दूलह राम लला हम धाम काम बिसराय हो ॥५६॥
दूलह राम लला ये तौं धनि पितु मात तुमारे हो।
दूलह राम लला सो तो समधी भये हैं हमारे हो ॥६०॥
दूलह राम लला तुम तपस्या करी सभारी हो।
दूलह राम लला तैं चोरी चढे हमारी हो ॥६१॥
दूलह राम लला तुमरे मात पिता दोउ गोरे हो।
दूलह राम लला तुम सावरे रूप किसोरे हो ॥६२॥
दूलह राम लला एक अचरिज देखत भारी हो।
दूलह राम लला तुमरे वीर और उनिहारी हो ॥६३॥
दूलह राम लला रानी कहा षाय तुम जाये हो।
दूलह राम लला भूपन के भूप कहाये हो ॥६४॥
दूलह राम लला कुमकुम कुल देव मनाये हो।
दूलह राम लला सब देखत चाप चढाये हो ॥६५॥
दूलह राम लला जाकौ सकल भूप पचि हारे हो।
दूलह राम लला तुम पड पड करि डार हो ॥६६॥
दूलह राम लला तुम सु तु सनधानें गारी हो।
दूलह राम लला सो ता सत जनन क प्यारे हो ॥६७॥
दूलह रामलला गारी गावैं जनक पुर नारी हो।
दूलह राम लला तहां जनहरीयो बलिहारी हो ॥६८॥

जीमत रघुकुल राय जू जी त्रिया गावैं गारि सुहाय ।
सारद विधि सगिरे जू जी सो सुष बरनि न जाय ।।
जीमत रघुकुल राय जू जी त्रिया गावैं गारि सुहाय ।
सारद विधि सगिरे जू जी सो सुष बरनि न जाय ।।

समधानैं जीमत रघुकुलमणि भामनि गावत गारी ।
सुष कुवर सुनि अति सुष पायौ उपजत आनन्द भारी ।।
जीवत राम जनक कै मडहै भारि गारि दै गावैं ।
दस सत बदन निगम चतुरानन सोउ पार न पावैं ।।

भई सबउ ज्योंनार सपूरण अचवन जनक करायौ ।
पनवारो श्री रामलषन कौ जनहरीये तहाँ पायौ ।।६६।।
दूधा भाती पेलही जू जनक सुसदन मझारि ।
अति मीठी मन भावता जू गावै नृतमनारि ।।
पेलें कुवरी कुवर सुदर वर वाने सुष सुष वारी ।
निरषत भामिन मन मैं बर वेर बलिहारी ।।
जूवा पिलावैं सुदरि बहु विधि मगलचार सुगावैं ।
दूलह दुलहनि सोभा निरषत जुवती हरष न मावै ।।७०।।

दूलह दशरथ लाल्हि जू बैठ नृप भुवन मझारि ।
नवल नवल मिलि वा गरी जू भई अति भीर समारि ।।
डोर छुरावै भामनि हित सौं गावैं रस भरि गारी ।
छोटै डोरि दुलहनी दूलह पुनि पुनि हरषै नारी ।।
भामिनि कहै हासि करि इहि निधि लेहुस डोर छुटाइ ।
सीय डारन चित चोरन रघुवर तुम पै छारिन जाइ ।।७१।।
छोडा हो रघुकुल के राय छोडो हो सी जन सुपदाय छोडा जी दूलह डोरनु ।
जो नही छूटै डोरनु अपनी सब भात बुलाय अपनु ।
लाला तात बुलाय छोडो कुवर बर डोरनु ।।७२।।
जो नही छुटै डोरनो अपनी सब गोत बुलाय ।
अपरु कुल देव मनाई छोडा कुवर वर डोरनु ।।७३।।
जो नही छूटै डोरना अपनी भुवा भैन बुलाय ।
दूलह हो लागो दूलहनि पाय छोडो रसिकव डारनु।।७४।।
नारि सबै मिलि हरष नु जू गावत रस भरि गारि ।
उर आनद सनेह सो जू वारि वारि पीवत वारि ।।

मिथुलापुर की नारि सबै मिलि गावत रस भरि गारी ।
प्रेम बचन सुनि त्रिभवन नायक ईस्वरता जु बिसारी ॥
बोले अल बल नवल भामिनी कोमल बचन उचारी ।
जो नही छूटै डोर लाडिले तो बोलो महतारी ॥७५॥
छोडो डोरमु, लाडिले जु कर कछु बल उपजाय ।
डोरन चित को चोरनों जू तुम पैं छोडयो न जाय ॥
पहन होय सारग लाल जू ताहि तुम लेहु चढाई ।
कै बोलो जननी कौसल्या कै बोलो दशरथ राई ॥
इहि विधि हासि करे जुवती जन गावत गारि सुहाई ।
डोरो हसि कैं दुलहनि कर सौं छोड्यो है रघुवर राई ॥७६॥
अरस परस छोडे डारनो जू रघुवर जनक कुवारि ।
आनद उर न समाई जू हरषी जनक की नारि ॥
रघुवर बदन निहारें रानी भागि सुफल करि पायो ।
निकर नारि मिलिन बिल नेह सों कौंकन डोर छुडायो ॥
राम लछन अरु भरथ सत्रुघन परले-प्यारों भाई ।
नृप दसरथ के कुवरन ऊपर जनहरीयो बलि जाई ॥७७॥

रघुवसी दूलह लाडिले जू दुलह प्यारी बलिहारि ।
हरषि हरषि लीय वारना हो मिथुलापुर की नारि ॥७८॥
रघुवसी दुलह लाडिले हो सोभा पारा धन उनहारि ॥
मजुल मूरति माधुरी हो धनि इन नैन निहारि ॥७९॥

रघुवसी दूलह लाडिले हो दूलह थोरा धनि परवार ।
धनि दशरथ धनि कौसल्या हो जाये तुम राजकुमार ॥८०॥

धनि रिपि बाँधनि जमइ जू हो आये तुम उनकै हो भाय ॥८१॥

मिथुलापुर की नारि सबै मिलि सभरि बचन उचारें ।
अपनौ भाग सराहत भामनि रघुवर बदन निहारें ॥
नेह बिबस ह्वै उझकि झरोपनि प्रेम मगन भई नारी ।
जनहरीया दूलह रघुवर छवि पर बेरि बेरि बलहारी ॥८३॥

बोले है दसरथ माडहै जू थी मैथुलपुर राय ।
प्यारि पिलग नग मणि जरे जू दीने मधि बिछाय ॥
प्यारा कुवर दुलहनी प्यारौं बैठे हैं छवि सौ आई ।
रतन जटित सिर सेहरा सोहैं मातियन लूव सुहाई ॥

वे॰ उक्त विधि जनक राय जू रचि बड़ रीति बनाई ।
रानी सग ले करि गठजोरो भावरि दीनी आई ॥८४॥
भूपति नेनो आवजो जू सोभा बरनी न जाय ।
कोटि एक दासी दाईजे जू दीये रथ अनेक सजाय ॥
अयुत अयुत सजि दीये तुरग बड गैंवर अयुत सजाई ।
कोटि एक दाये दास जनक जू सेवा करन सुभाई ॥
रिप अरु जान सहन मिथुलेसुर अवधेसर पहराये ।
करी बहुत मनुहारि परसपर वेर वेर सिर नाये ॥८५॥
कँवरी गवनी सासरे जू नयन चलत हित बारि ।
बाल वैस की सषियन तैं जू मिलत हैं बाँह पसारि ॥
वेतकर्‍यौ वै सग मिलि पेलन तात भुवन सुषकारी ।
बालकेलि सुधि आवत मन मैं सो नहि जात विसारी ॥
कोटिक सुष ह्वै जो सुसरारि मैं रहै सपत्ति लपेटी ।
तात भुवन की बाल केलि कौं विसरत नाहिन बेटी ॥८६॥
सीता सौ मिलि नेह सौ जू नैना नीर बहाय ।
जननी सरक सनेह की जू मो पै बरनि न जाय ॥
माता बचन सुनाय कुवरी को समझावत बहु भाई ।
ससुरा सास की सेवा कुवरी सिपयो नेह सुभाई ॥
भयौ उछाह जनकपुर अनिसै को अस बरनि सुनाई ।
इहि बिध भूपति विपल मोद सौं आये अवधि चलाई ॥
हरप फिरत अवधिपुर वासी मन अनुमोद न मावे ।
नवल नारि मिलि मगल गावे मगल कलस बधावें ॥८७॥
निकरि नारि चढ़ि अटनि पर जू हरपें बारौबार ।
जल सुत कुवरन ऊपरे जू मानौं बरपे जलधार ॥
अटनि झरोपन चढ़ि भामिनी बरषत कुसम अपारा ।
विबुधत्रिया तजि मनहुँ व्योम को आई करन बिहारा ॥
वाथी बगर चौहटां भामनि मगलचार सु गावैं ।
भूषन बसन साजि सब सुन्दरि भूप भवन कौं आवे ॥८८॥
भीतर भवन सिधाईएजू च्यारो राजकुमार ।
कौशल्या करे आरत्यो जू मोत्यां भरि कचन थार ॥
बधुन सहित लषि माता सबै ही हरपें वारौ बारा ।
रानी हरष न मावे मन मैं बाढ़्यो हरष अपारा ।

हरपि हरपि अतहपुर रानी दुलहनि बदन निहारै ।
हाटक हीरा मणिगण मोती वधू सुतन परि वारैं ॥८९॥
रिपवर कौं अवधेस जू जी पूजे हैं बिधि सब नाय ॥
रानी रिपवर राज कें जू पुनि पुनि लागैं पाय ॥
श्री कौसल्या रिपवर जू सौं कहति है बचन सुनाई ।
विद्यानिपुन कीये कुवर दोउ ल्याय दुलहनि ब्याही ॥
पद बदे मुनिवर के रानी वर वेर भिर नाई ।
हीरा मोती कनक थाल भरि पूजेहैं रिपवर राई ॥९०॥
काकनडोर डुलावही जू श्री रग मंदिर जाय ।
ब्यारौ कुवरिन रगराज जू बदे हैं सिर नाय ॥
छोडो डोर कुवर ब्यारा ही श्री रगमदिर जाय ।
मोतीयन चौक पुरावै रानी पुनि पुनि मगल गाय ॥
काकन डोरि छोडि रगमदिर भीतर भवन सिधाये ।
हरष्यौ फिरत तहाँ जनहरीया बाजत अवधि वधाये ॥९१॥
बाजत अवधि बधावना जू भूपति दसरथ द्वारि ।
घर घर मगल बधावना जू मगल गावैं नारि ॥
मागध सूत भाट वदीजन वोलत करि कै बारी ।
दान मान दीय भूप सबन कौं दीनें कचन भारी ॥
मगलवर ब्याह रघुवर कौ सत जनन सुपदाई ।
मति अनुसार कथ्यौ जनहरीयो श्री गुर कौ सिरनाई ॥९२॥

॥ इति पोथे रामायणे महा मुक्ति मारगे सीताराम
विवाह सम्पूण ॥[1]

(३) राग ललित

राजत अवधेस लाल कज बन्न तिलक भाल ।
अरुणाबुज अछि विसाल अदभुत छवि छाई ॥ टेक ॥
नासा नग बनि सुदेस सोभित सिरि कुटलकेस ।
जलज निकट निकर मधुप अवली मनु आई ॥१॥

---

१ पदमुक्तावली छद सख्या ६२

नव घन तन दुति विसाल मुक्ता उर लसत माल।
सुत्री कटि तटि रसाल रुण झुण चलि जाई ।।२।।
देषत जब भूप नारि तन मन धन दत वारि।
अनिसै मिसु केलि राम सुपन वरणा जाई ।।३।।[1]

(४) राग सूहो

मानकुल दीपग छबीले रगीले रघुनन्दन।
ध्यान धरि निम न्विस असो कटै भव दुष फदन ।।१।।
चरननप अंगुरिन मिलियो दुहुन की सोभा बनी।
मानु प्रफुलित कवल परि उगैहैं दस रजनी घनी ।।२।।
पीन जांन सुचार अनुपम लसत अन्भुत धोवती।
कटिसूत्र कटिपट पीत कटि किंकनी मन को मोहती ।।३।।
बाजुबन्ध जराय के पहोंचें रतन पोंची भली।
अस्ट दोय अंगुरिन अंगूठी यों भान की दुति दलमली ।।४।।
मणिहार मुक्ताहार सुदर स्याम अंग परि राजई।
मानु नवधन मैं सरस तारन की पाति सम्राजई ।।५।।
कबु कंठर अरुन अधर सुनासिका अषीयाँ बडी।
मनमत्थ मन मथ षो करत माहैं कसी भ्रकुटी चढ़ी ।।६।।
श्रवनन मैं कुडल लषि ललित छवि मैन की मुकची जीए।
अलिकन की हलकनि ग्रीव बलनि सुपो वारि कमरि को कीए ।।७।।
सिरि मुकट अग सुधाम राजत जनकी की सुन्दर लली।
मानु हरीव बैन्य कटि बैठी कवन की अन्भुत कली ।।८।।
चलि सुपथ तजि के विषै भजि एस रामगुपाल कों।
मन वच क्रम करि प्रीतिरिन्ति हरीया मखी प्रतपाल कों ।।६।।[2]

(३) चरणदास

य अग्रदास जी क शिष्य विनोदी जी अथवा विनोद स्वामी के पौत्र शिष्य थे। अब तक इनका कोई छन्द प्रकाश म नहीं आया था। 'पदमुक्तावली' म पहली बार इनका एक पद देखने में आया है जिसम प्रात समय की उत्थापन आरती का वणन है—

---

१ वही, छद सख्या ६३

२ पदमुक्तावली : छद सख्या ६६।

राग भैरू

जागीए श्री राम नृपति चुडामनी,
रवि कीयौ आगम निसि विहानी ।।टेक।।
सुत मागघ बन्दीजन ऐ करैं आसिषा ।
नीति अविचल रहौ राजध्यानी ।।टेक।।
केऊ सपी कर कनक झारी लाए सुगध,
कोऊ वासीद लीए सरजु पानी ।
केऊ सपी विवध्य वै देत सोय लीए,
कोऊ अद्रस्र लीए खरी सयानी ।।१।।
जुग सपी छात्र लाये, कोऊ सपी चवर लीए,
कोउ मिलि जुगल क बसन आनी ।
केउ सपी मधुर सुर राग पचम करैं,
सपत सुतानि लीऐ सुलप बैनी ।।२।।
श्री जनक नदनी जी कैं श्रवननि धुनि परी,
जागि परि पिलग तैं द्रग पुलानी ।।
मानु एह कवल मुदित भए रैनि वै
मित्र की बात सुनि फूल पुलानी ।।३।।
अवधिवासी सवै दरस की तरस करे,
दुवारि ठाढे कहे गुन कहानी ।
जागीए श्री धीर रघुवीर करनामई,
दास दासी परे चरन आनी ।।४।।

(४) बाल अली

इनका व्यावहारिक नाम बालकृष्ण नायक था—बालअली इनके साधन देह की सज्ञा थी । ये अग्रदास जी की पाँचवी पीढी म आते हैं । 'ध्यान मजरी' की रचना स० १७२६ मे हुई । अत यही उनका उपस्थितिकाल माना जा सकता है । इनकी ८ रचनाओ का पता लगा है । उनम नेह प्रकाश' तथा 'सिद्धान्त तत्व दीपिका' विशेष महत्व की हैं । 'पदमुक्तावली मे इनके दो पद सकलित हैं । एक में आराध्ययुगल की प्रात कालीन शोभा का वणन है और दूसरे मे प्रिया प्रियतम की परस्पर आसक्ति का चित्रण है—

१ पदमुक्तावली, छद सख्या ६५ ।
२ वही, छद सख्या ८६ ।

(१) प्रात समैं रघुनन्दन की छवि दपि सखी अपने भरि नैन ।
आलस भरे जो भाँनि ऊनीद बोलत हैं कछु अटपटे बैन ।।टेक।।
बामें अग श्री जनक नन्दनी बसन मरगजे भरे छवि अैन ।
नह भरे मुसकात परसपरि बालअली हीए अति मुप दैन ।।
(२) भौरे ही रँग भरे दोऊ जाग ।
रग महल मैं श्री जनकनन्दनी रघुवर अति अनुरागे ।। टेक।।
आलस भरे जु भाति उनीदे अरन नैन रस पागे ।
बालअली प्रभु रस बसि कीहें जैसे कनक सुहागे ।[1]

इन प्रसिद्ध रामभक्तों के अतिरिक्त उक्त सग्रह म अय साधको के भी पद सकलित हैं । ये हैं—कवलानन्द (२ २५), बीठलदास (३०, ५५), गोकुलदास (५४), ब्रजपुरी (७४), बिजेराम (७६), (७६), लघुकेसव (६८) और लाल गुलाम (६७, ६८)।

नीचे इनका सक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

(१) कवलानन्द

भक्तमाल तथा अय भक्त चरितो म इस नाम के किसी रामभक्त कवि का उल्लेख नही मिलता। साम्प्रदायिक परम्पराओ म स्वामी रामानन्द के शिष्य सुरसुरानन्द के एक शिष्य केवलानन्द का नाम आता है ।[2] ये बालानन्द जी की गद्दी (जयपुर) के पूर्वाचार्यों म हैं । निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि पदमुक्तावली म प्राप्त पद इन्हीं का है या कवलानन्द नामधारी किसी अन्य सत का । ये रामभक्त थे यह निम्नांकित दोनो पदो के आधार पर निर्भ्रान्त रूप से माना जा सकता है—

(१)

राग आसावरी

नौंमी कै दिन नौबति बाजै सुत कौसल्या जायौ री ।
सात घडी दिन बीति गयौ सब सखियन मगल गायौरी ।।टेक।।
सबै बुलाय सोधना कीनी अपै भडार लुटायो री ।
घडीक सोचि निगम यौं भाष्यौ रामचन्द्र ग्रह आये री ।।टेक।।

---

१ पदमुक्तावली छद सख्या ६० ।
२ रामभक्ति में रसिक सप्रदाय पृ० ३३५ ।

कंचन के बहो कलस बधाये मोतिन चौक पुराये री।
दसरथ मन आनन्द भयौ कोइ रघुनमी ग्रह आये री ॥ २ ॥
घर घर की सब बधू बुलाई मंगल गावति आई री।
राइ आँगन त्रिधि डारि दुलीचो आदर करि बैठाई री ॥ ३ ॥
कंप्यौ सिंधु कागरा पडिया आगम अगम जनायौ री।
सोच पड्यौ सग्रही लंका कोई राज विग्रहै आयौ री ॥ ४ ॥
दसरथ उठि भंडार पधारे साडी सुरंग मंगाई री।
जो जावै मन हुती कामना सो ताकौ पहराई री ॥ ५ ॥
पाट पटंबरपा साहूंना प्रिय जावे मन भावै री।
कवलानन्द कहाँ लौं बरनौं तीन लोक जस गावें री ॥ ६ ॥[1]

(२)

राग बिलावल

करौ कलेउ प्रात ही मिलि च्यारौं भईया ॥ टेक ॥
दधि मेवा लाड़ू मोन सौं ले आई गईया।
ये पीवौ प्रभु कल्याण के मथि लीनौ घईया ॥ १ ॥
बान घनियाँ कित धरी दे दै री मईया।
तरी सौं अगना पेलि हैं हम च्यारौं भइया ॥ टेक ॥
कालि दूर ताने गये सब सषा बुलईया।
दोय बान षोए हुन सरजू तटि पईया ॥ १ ॥
रुचिर बाग बैसक बनी चगे फल बिछईया।
नाना विधि के पछी बौलिहै स्वनीक सुहईया ॥ २ ॥
नीर निकट नाहिन गये दाउ की सो हौ री।
कवलानन भरथ बुलाय कै जो हौं झूठ कहौं री ॥ ३ ॥

(२) बीठलदास

जाति के रैदास (चमार) होते हुए भी इनकी गणना श्री सम्प्रदाय के विशिष्ट रामभक्तों में की जाती है। ये बड़े ही विरक्त एवं स्वाभिमानी महात्मा थे। सत्संग एवं इनका सतसेवा व्रत था। उसके लिए धन की आवश्यकता पड़ती थी किन्तु

१ पदमुक्तावली, छंद संख्या २।
२ वही, छंद संख्या २५।

ान की कृपा से उसमे कभी बाधा नही पडी । सासारिक वैभव इन्हे कभी
ष्ट नही कर सका । प्रसिद्ध है कि एक बार किसी घमडी सेठ को इन्होंने
ार दिया था । पहले वह नियमित रूप से इनकी सहायता करता था किन्तु
घटना के बाद होने वाले वार्षिक महोत्सव मे उसने हाथ खीच लिया । कहा
ा है कि उत्सव के निकट आने पर स्वय भगवान ने एक वैश्य के रूप मे आकर
सौ अशर्फियाँ उक्त कार्य के लिए समर्पित की । सेठ ने जब इस घटना की
ां सुनी तो पानी पानी हो गया । उसने आकर क्षमायाचना की । नाभादास
नुसार वीठलदास जी ने अपना शरीरत्याग आराध्य की लीला विषयक पद
हुए किया था ।[1] इससे उनका कवि होना स्वत सिद्ध है । इस नाम के
ी अन्य रामभक्त का अब तक पता नही चला है, अत नीचे लिखे पद को
की रचना मानने मे कोई बाधा उपस्थित नही होगी—

भाजन करो सीताराम ।
भावग्राही भावग्राही प्रीतिग्राही राम ॥ टेक ॥
देखि निसि आनन्द करि सोहैं जनक सुता अभिराम ।
पवन सुत सनमुख विराजत रटत नित सो नाम ॥१॥
च्यार विधि के मच्छ भोजन लेत रुचि सुचि स्याम ।
मेलि मिश्री पहुप छीवरि मेर दाप विस्राम ॥२॥
भक्ति हेत आरोगजे प्रभु सकल पूरन काम ।
दास बीठल दरस पावैं करन परमनिधाम ॥३॥[2]

३) गोकुलदास

इनके स्थितिकाल तथा जीवन के सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नही है । राम-
तों की परम्पराओ मे भी इस नाम के किसी कवि का उल्लेख नही

[1] आदि अंत निर्वाह भक्त पद रज व्रत धारी ।
रहतो जगत सो ऐंड तुच्छ जाने ससारी ॥
प्रभुता पति की पधति प्रगट कुल दीप प्रकासी ।
महत सभा में मान जगत जान रदासी ।
पद पढ़त भई परलोक गति गुरु गोविंदु जुग फल दिया ।
बीठलदास हरिभक्ति के दुहूँ हाथ लाडू लिया ।
—श्रीभक्तमाल, छप्पय स० १७७, पृ० ८६४
[2] पदमुक्तावली, पद सख्या ३०

मिलता। प्रस्तुत हस्तलेख में इनका एक पद संगृहीत है जिसमें रामचन्द्र को ब्यारू अथवा भोजन कराने का वर्णन है—

।। राग बिहागड़ो ।।

रघुबर गुणनिधि करत बियारी ।
मधु मेवा पकवान अन्न रस प्रेम सहित पुरवत महतारी ।। टेक ।।
दूध भात उज्ज्वल पैनी पुरी पुनपुनी पूवा सुहारी ।
घेवर पापर सब व्यंजन मिश्री खीरा भरन गवारी ।।
सूरन आम करोंदा सौवन आचो नीबू अति रुचिकारी ।
औन्धो थरयो ले आगें धोबो करे मान जननी जाय वारी ।। २ ।।
अति सुगंध मरत्तू वस नीरज गंगाजल भरि ल्याई झारी ।
भोजन पाय करी प्यारे अचवन तम्बोल लेन दैन बलिहारी ।। ३ ।।
सोवी रघु सीयाजू सब मनो लिये कनुरन सीस सुधारी ।
रामचरण आज रस हाथा थापें कुरि रहा बना वारी ।। ४ ।।[1]

(४) ब्रजपुरी

नेह कौं आनि जुरा जकरी लकरी पकरी तोहू राम न जायो ।
बालपनों पोयो ष्याल ही ष्याल में जोबन जार तिया रति मायो ॥
स्याही गई मिर आये हैं सेत अचेत भयो गुर ग्यान न आयो ।
बूडत है भवसागर माझ कहै 'बिजैराम' धनी न पिछायो ॥४॥[1]

(६) लघुकेसव

केशव नामधारी पाँच भक्तो का भक्तमालकार ने उल्लेख किया है—केशव-भट्ट कशव, केसो, कशव जो लटरा और केशव जी दहोनी । इनम से प्रथम तथा अन्तिम कृष्ण भक्त थे द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ रामभक्त । दूसरे कशव राम-चन्द्रिका के रचयिता थे, तीसर कशव (सभवत) रामभक्ति शाखा के स्थानधारी सत थे, और चौथे केशव रामानन्द जी के शिष्य सुरसुरानद की परपरा के थे । हस्तलेख मे 'लघु श' प्रसिद्ध (बडे) केशवदास से प्रस्तुत पद के रचयिता की विभिन्नता दिखाने के लिए प्रयुक्त हुआ है । मेरा अनुमान है कि हस्तलेख म उद्धृत पद इनम से तीसरे या चौथे का हो सकता है । इसम निरूपित तथ्य रचयिता की शृगारी रामभक्ति के द्योतक हैं—

श्रवना न सुन्यो रसना न गुयो, नही ध्यान धरो न नच्यो हरि आगे ।
अरचा न करी चरचा न करी, सुमरौ नही राम हिरदै अनुरागे ॥
तन मन अरपि न दास भया हरि भक्ति के हेति जग्यो नही जागे ।
लघु केसो कहै जम दोस कहा, नवधा मधि एक गही न अभागे ॥[2]

(७) लाल गुलाम

रामभक्तो के चरितसग्रहो तथा साम्प्रदायिक परम्पराओ म यह नाम अपरिचित हैं । हस्तलेख मे सकलित पद से मात्र इतना पता चलता है कि उसका रचयिता रामोपासको की माधुर्य धारा से सम्बद्ध है—

राग पचम

आय राजरपि सयि सपी कुवर मनभावतो,
आवते देषि हिवरो सिरानौ ।
मेरे मनि आनि सपी बात अैसी ठनी,
य हा वर सीया क विधि ही वानौ ॥ टेक ॥

१ पद मुक्तावली, छद सख्या ७६
२ वही, छद सख्या ६८

विविध भूषन कीये मुकति माला हीये,
तिलक की क्रान्ति बरनी न जाई।
बांम कर धनक कटि माथ सोभो दीये,
दाहिनैं कर सर सोभा सुहाई ॥ १ ॥
ताडिका मारि सुबाहु बल जीति कै,
असुर संघारि जग पूर कीन्हौं।
चरन की रैनिका अहल्या उधारि,
क्षीवर कूल त्यारि पुर गवन कीन्हौं ॥ २ ॥
राय समझाय अब ही कहौ जाय कै,
धनक पन छाडि सीया बरही आए।
आगिलै जनमि एह पुनि सीवर कीयौ,
ताहि परताप असे कुंवर पाए ॥ ३ ॥
सबन के मन ही की जानि सारंगधर,
तनक ही तानि धनु तोरि डारौ।
बडे बडे भूप सायत अति महाबली,
सिंघ ललकारि भग मान मारौ ॥ ४ ॥
निम कुल जुवति नर नारि आनद मैं,
सुनत एह बात मगल उचारै।
लाल गुलाम अब सत की सरन गहि,
चरन की रति लहै प्रान वारै ॥ ५ ॥

देषि री देषि कुंवर सुन्दर दोऊ,
नृप के जिग मैं आनि ठाढे।
कोटि कंद्रप की हीन दुति करत ही,
अतिहि छवि रूप गुनवत गाढे ॥ टेक ॥
पीत पट दामनी दमक लज्या करत,
जरकसी पाघ सिरि अति सुहाई।
अटनि चढि भामनी नैन मधुपान करि,
सांवरे - गवर हिरदै बसाई ॥ १ ॥
एहु कुवर लाडिलो होय जो कुवरि को,
सब करैं गवरि स्यौं विनय भारो।

जब ही मनि आनिहै सुफन व्रति जानिहै,
होय वर एह आनन्दकारी ॥ २ ॥
नग्र की नारि मन माँहि कलपन करें,
एह कर सम ही धनक भारी ।
कुवर महाराज सब अस हरि नृपन को
मुनि गहै रहै अति बलाकारी ॥ ३ ॥
जनक नृप देषि रघुवीर कू मन ही मैं,
कहा बपरीत मन मैं ज कीन्हौं ।
मनही कौं ब्याहिहौं सुजस जुग पायहौं,
अवनिपति यौं कहैं पलट कीन्हौं ॥ ४ ॥
राय सब नृप्पन सु बोलि एह बात कह
धनक कोऊ तोरो एह आत दीन्हौ ।
मनही लग जाय कैं अवनि सिर नायकै,
अजुली के वारि ज्यौं गवन कीन्हौ ॥ ५ ॥
निमकुलवस की अवनि के नृपन की,
धनक सब लाज ले ग्रस्व धारो ।
साँवरो कुवर सिर नाय रिपराज कौं,
गहे चरन चापि धनु तोरि डारौ ॥ ६ ॥
पुसप बरषन लगे देव दुदमी वजे,
मगला सब ही मिलि गीत गावै ।
लाल गुलाम अब सत की सरन गहि,
दास धरि अवधिपुर सुजस गावै ॥ ७ ॥[1]

---

१ पदमुक्तावली, छद सख्या ६७

स्वामी अग्रदास और उनकी अप्रकाशित पदावली

रसिक रामभक्तो के आद्याचार्य अग्रदास[1] का आविर्भाव स्वामी रामानद की चौथी पीढ़ी म हुआ था। ये राजस्थान में वैष्णवो क प्रथम पीठ, गलता के सस्थापक श्रीकृष्णदास पयहारी के शिष्य थे। इनक आरभिक जीवन क विषय मे कोई सूचना उपलब्ध नही है। साप्रदायिक मान्यता के अनुसार इनका जन्म जयपुर राज्य के किसी गाँव मे १६वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे हुआ था। पयहारी जी के सपर्क मे ये बाल्यकाल म ही आ गए थे। बडे गुरुभाई कील्हदास के साथ गलता म बहुत दिनो तक निवास करके गुरु के परलोकवास के अनतर ये अपने प्रिय शिष्य नाभादास के साथ रैवासा चले गए और वहीं अपनी गद्दी स्थापित की।[2]

---

१ रसबोध बिपुल आनदघन अग्रस्वामि बानी बिसद।
अक्षर पद अनुप्रास मधुरता बाल्मीकि सम।
आसय गूढ़ उपाय प्राप्ति रसिकन को सगम।
रवासे आनकीवल्लभो रहसि उपासी।
ललितरसाश्रय रगमहल कलकुज सवासी।
आचारज रसरास पथ रसिकध्वज रसिकन सुखद।
रसबोध बिपुल आनदघन अग्रस्वामि बानी बिसद॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५।

२ कोई देसकाल जानि कील जू की आज्ञा मानि
सिष्यन समेत श्री रवासे स्वामी आए हैं।
तहा रमनीय जल भूमि द्रुम लता देखि,
मदिर बनाय लली लाल पधराए हैं।
बिनय बिवेक सुभ सील दया नेह गेह,
नाभा जो को देखि सत सेवा में लगाए हैं।

नाभादास ने गुरुसेवा करते हुए अपना सारा जीवन यहीं व्यतीत किया। इसी स्थान पर आचार्यचरणों से प्रेरणा प्राप्त कर उन्होंने अपने लोकप्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्त-माल' की रचना की थी।

नाभादास ने अन्य संतों की भाँति अपने गुरु अग्रदास के भी लौकिक जीवन पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। 'भक्तमाल' से इतना ही विदित होता है कि वे एक उच्चकोटि के आचारनिष्ठ संत थे और अहर्निश इष्टदेव सीताराम की आराधना में लीन रहते थे। वाटिका से उन्हें बड़ा प्रेम था। अपने रैवासा स्थित आश्रम से संलग्न भूमि में उन्होंने 'प्रसिद्ध बाग' नाम की एक फुलवारी लगा रखी थी, जिसका सारा कार्य वे अपने ही हाथों से करते थे। वाटिका में काम करते समय भी उनका नाम-जाप अखंड रूप से चलता रहता था। आचार्य श्रीकृष्णदास पयहारी की कृपा से उन्हें अविरल रामभक्ति का वरदान मिला था। इस प्रकार अपने जीवन का एक भी क्षण अग्रदास जी ने आराध्य युगल के ध्यान तथा उपासना बिना नष्ट नहीं होने दिया।[1]

प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका में अग्रदास के जीवन से संबद्ध कुछ नए तथ्य प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने आमेरनरेश मानसिंह के स्वामी जी के दर्शनार्थ रैवासा जाने की चर्चा करते हुए लिखा है कि जिस समय महाराज उस आश्रम पर पहुँचे स्वामी जी वाटिका में थे। यह समाचार पाकर मानसिंह अपने सेवकों तथा साथियों को बाहर ठहरने की आज्ञा देकर स्वयं बाग के भीतर चले गए। इसके थोड़ी ही देर बाद स्वामी जी वाटिका में पड़े हुए सूखे पत्तों को फेंकने के लिये बाहर निकले। द्वार पर अपरिचित लोगों की भीड़ देखकर वे वहीं एक आम के पेड़ के नीचे बैठ गए। उधर वाटिका में बहुत देर तक अग्रदास जी के लौटने की प्रतीक्षा करने के बाद मानसिंह भी बाहर चले आए। द्वार पर आचार्यचरणों का साक्षात्कार कर वे कृतकृत्य हो गए।[2] रीवाँनरेश रघुराजसिंह ने अग्रदास और मानसिंह में गुरुशिष्य का संबंध बताया है और मानसिंह की गणना अग्रदास के अत्यंत प्रिय शिष्यों में की है।[3] संभवतः यह सूचना उन्हें जयपुर दरबार से

आपु सो कियो उपाय काल वृथा न बिताय,
अष्टयाम सेवा को रहस्य मन लाए हैं॥ —वही, पृ० १६।

१ भक्तमाल (टी० रूपकला), पृ० ३२८।

२ श्री भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ३२०।

३ मानसिंह जपुर को राजा। सो अपनो लै सकल समाजा।
अग्रदास गुरु आज्ञाकारी। रहै समीप धरनरज धारी॥

अपने निजी स्रोतो द्वारा प्राप्त हुई होगी। इसके अतिरिक्त अग्रदास के सासारिक जीवन के सबध मे कोई वृत्त उपलब्ध नही है।

साम्प्रदायिक साहित्य मे इनके द्वारा प्रवर्तित रसिकसाधना का विशद विवरण मिलता है।[1] नाभादास ने अपनी शृगारी रामभक्ति को इन्ही का प्रसाद माना है[2] और सखीभावना मे इनकी लोकोत्तर तन्मयता की मुक्तकठ से प्रशसा की है।[3] इसी भावसिद्धि के कारण परवर्ती रसिक रामभक्तिसाहित्य मे इन्हे चद्रकला सखी का अवतार होने की प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। रसिक प्रकाश भक्तमाल के रचयिता युगलप्रिया जी ने 'मानस' के पुष्पवाटिकाप्रसग मे निर्दिष्ट सीता जी की पथप्रदर्शिका सखी से इनका तादात्म्य स्थापित किया है।[4] अग्रदास ने स्वय अपनी कृतियो मे 'अग्र अली' तथा 'अग्रसहचरी' छाप देकर

एक समय दस सहस सवारा। मानसिंह नप ल पगु धारा।
अग्रदास बरसन के हेतू। गुरु बरसन किये मोदनिकेतू॥
दस कदली फल गुरु तेहि दीन्हो। सादर पदवदन करि लीन्हो॥
नाभा के पुनि अग्र के यहि बिधि चरित अपार।
मान महीपति के तथा, को कहि पावै पार॥
—रामरसिकावली (रघुराजसिह), पृ० ५७५ ८०।

महाराज रघुराजसिह ने स्वामी अग्रदास को गलता की गद्दी का आचार्य बताया है। किंतु साम्प्रदायिक परपरा के अनुसार गलतागद्दी पर श्रीकृष्णदासजी पहारी के बाद कील्हदास जी बठे थे। ये अग्रदास के बड़े गुरुभाई थे। अग्रदास की गद्दी जयपुर के समीप ही रवासा मे स्थापित हुई थी।

१ आचारज रसरासिपय, रसिकध्वज रसिकन सुखद।
रसबोध बिपुल आनदघन, अग्रस्वामि बानी बिसद॥
—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५।

२ श्री अग्रदेव करुना करी, सियपद नेह बढ़ाया।
नाभा' मन आनद भो, महल टहल नित पाय॥
—अष्टकालचरित (नाभादास, पत्र ४२)।

३ श्री कृष्णदास गुरुकृपा ते नित नव नेह नवीन।
अग्र सुमति सियसहचरी युगल रूप रस लीन॥ वही।

४ अग्रस्वामि श्री अग्रसहचरी जनकलली की।
पुष्पवाटिका मिलन हेतु प्रिय भाँति भली की॥

प्रकारातर से इस तथ्य की पुष्टि की है कि वे सीताराम की माधुर्यलीलाओ के उपासक थे और व्यावहारिक रूप मे राम के प्रति दास्यनिष्ठा रखते हुए भी उनकी अतरग साधना शृगारी भाव की थी। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'ध्यानमजरी' शताब्दियो से रसिकसाधको की गीता मानी जाती है।

अग्रदास जैसे उच्चकोटि के साधक थे वैसे ही असाधारण प्रतिभासपन्न सांप्रदायिक सगठनकर्ता भी। उत्तरी भारत मे रामोपासको की अधिकाश गद्दियाँ उन्ही के शिष्य-प्रशिष्यो द्वारा स्थापित की गई हैं। अयोध्या, चित्रकूट और मिथिला के अनेक प्रमुख पीठ इन्ही की परपरा से सबद्ध हैं। इनके सतपरिवार के विस्तार का अनुमान इसी मे लगाया जा सकता है कि वैष्णवो के ५२ द्वारा मे ११ द्वारे अकेले इन्हीं के हैं। इनकी शाखा नाभादास, बाल अली, देवमुरारि, पूर्ण वैराठी, दिवाकर, हनुमान हठीले, भगवन्नारायण, प्रयागदास जगी, बिंदुकाचार्य रामप्रसाद, रसिकाचार्य रामचरणदास, रसिक अली तथा रघुनाथदास जैसे तपस्वी एव लोकसग्रही महात्माआ से विभूषित है।[1]

अग्रदास की महत्ता का सबसे बडा कारण है रामोपासना म शृगारिता को प्रश्रय देते हुए भी आदि से अत तक सदाचारनिष्ठा के सम्यक निर्वाह की व्यवस्था करना। क्रियाप्रधान बहिरग पूजा की अपेक्षा ध्यानप्रधान अतरग अथवा मानसी सेवा को अधिक महत्त्व देकर उन्हाने उसे कालातर में दूषित प्रवृत्तिया का शिकार होने से बचा लिया। शृगारी रामभक्ति के लोकप्रचार का निषेध तथा विशिष्ट भावसपन्न सात्विक साधको को ही उसका अधिकारी घोषित करते समय उनके मन म कदाचित् यही भावना काम कर रही थी—

रस शृगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहिं।
तुलन को कोउ नाहिं सोई अधिकारी जग में।
कचन कामिनि देखि हलाहल लागत तन में॥
जावत जग के भोग राग सम त्यागेउ द्वदा।
पिय प्यारी रससिंधु मगन नित रहत अनदा॥

चद्रकला प्रिय नाम स्याम सिय बस करि राखी।
प्रगटि स्वामिपद लह्यो ध्यान रस मन मन चाखी॥

रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५।

१ विशेष विवरण के लिये देखिए 'रामभक्ति में रसिकसप्रदाय' के अतगत 'रामभक्ति मे रसिकसाधना का विकास तथा 'परपरा और तिलक' शीर्षक अध्याय।

नहीं 'अग्र' अस संत के सरि लायक जग माहिं।
रस सिंगार अनूप है तुलने को कोउ नाहिं॥

अब तक खोज में इनके द्वारा विरचित केवल चार ग्रंथ उपलब्ध हो सके हैं—ध्यानमंजरी अथवा रामध्यानमंजरी, कुंडलिया अथवा हितोपदेश उपपाण-बावनी, रामाष्टयाम और रामज्योनार। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक ग्रन्थों में अग्रदास की दो अन्य कृतियों का भी उल्लेख मिलता है। ये हैं—अग्रसागर अथवा शृंगार सागर तथा पदावली। इनमें से प्रथम तो अब केवल नामशेष रह गई है। बहुत खोज करने पर भी उसकी किसी प्रति का पता नहीं लग सका। किंतु दूसरी रचना का एक हस्तलेख इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ है।

तुलसी के पूर्ववर्ती राममक्तिसाहित्य में अग्रदास की इस पदावली का विशेष महत्त्व है। इसमें कुल ५१ पद संकलित हैं जिनमें एक (पद सं० १०) नाभादास का है।[1] इसके अतिरिक्त लेखक के निजी संग्रह में अग्रदासविरचित सात पद अन्य स्रोतों से संगृहीत हैं। उन्हें लेकर अग्रदास के पदों की सम्पूर्ण संख्या ५७ हो जाती है। ये सभी 'अग्र' छाप से युक्त हैं। यह दूसरी बात है कि अपनी भावनानुसार उन्होंने किसी में दास्यनिष्ठापरक 'अग्रस्वामि' अथवा 'अग्रदास' छाप रखी है और किसी में माधुर्यनिष्ठाव्यंजक 'अग्र अली' 'अग्रसहचरी'। यह उल्लेखनीय है कि 'अग्रदास' छाप 'अग्रअली' की भाँति दास्य तथा शृंगारी दोनों भावों की रचनाओं में पाई जाती है। इससे अग्रदास और अग्र अली की अभिन्नता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

शृंगारी रामोपासकों की परम्परागत आस्था के अनुकूल इन पदों में केवल आराध्य युगल की कैशोर लीलाओं का ही वर्णन हुआ है। कवि की वृत्ति दम्पत्ति की माधुर्यक्रीड़ा तथा शृंगारी चेष्टाओं के अंकन में ही विशेष रमी है। ये प्रसंग हैं—धनुषभंग के पूर्व सीता की उद्विग्नता, सीता का अलौकिक रूपमाधुर्य, सीता सौभाग्य, मिथिला में प्रियाप्रियतम की हिंडोललीला, अयोध्या में होलीलीला, प्रमोदवनविहार, सरयू में दम्पत्ति का जलविहार, राम का एक पत्नीव्रत एवं प्रियापराधीनता, सुरतांत वर्णन, चन्द्रकला, विमलादि सखियों द्वारा युगलविहार-दर्शन, सत्संग एवं रामभजन महिमा, अनन्यशरणागति का महत्त्व आदि। रचयिता

---

१ 'पदावली' में संकलित नाभादास के इस पद से यह विदित होता है कि अग्रदास की परम्परा के किसी संत ने उसको वर्तमान रूप रचयिता के दिवंगत होने के बाद दिया। सम्भवतः आचार्यनिष्ठा से ही उसने उनके पट्टशिष्य नाभादास की रचना को भी उसमें स्थान दे दिया।

ने दो-तीन को छोड कर शेष सभी पदो के साथ रागो का स्पष्ट निर्देश कर दिया है। पदावली म उल्लिखित इन रागा की सख्या १३ है मारू, कान्हरा, टोडी, केदारा, जैतिश्री, ललित, देवगधार, बिलावल, धनाश्री, कल्यान, सारग, मलार, और वसत। इनके अतिरिक्त 'सगीतरागकल्पद्रुम' मे सगृहीत अग्रदास के पदा म क्याल[1], विभास , विहाग[3], सिंधु तथा होली —पाच अन्य रागा का भी प्रयोग हुआ है। ये रचनाए पदावली म नही मिलती। इससे यह विदित होता है कि अग्रदास के पदो का बहुत पहले स सगीतना के बीच व्यापक प्रचार था। कृष्णानद रामसागर ने सभवत इसी लोकप्रियता के आकृष्ट होकर उन्हे 'सगीतकल्पद्रुम मे स्थान दिया था। हो सकता है ये पद सगीतनो के माध्यम से ही सकलित किए गए हो।

अथ श्री अग्रस्वामीकृत पदावली प्रारम्भ

राग मारू

अरी हो रामा रग रची।
तात हमारे पन कियो तारन धनुष कठोर।
कोमल करतल सावरो सखो मूरति मधुर किसोर॥
राज सभा अैसी भई ज्यो उडगन मे चद्र।
विधिना विधि सो निर्मियो अली माहनमनको फद॥
लोक बेद की लाज सखी री जद्यपि दुस्तर आहि।
रूपनिधान दखि रघुनदन धीरज धीरज नाहि॥
अैसी मो जिय ऊपजी चाप चढावो कोइ॥
'अग्रस्वामि के हाथ बिकानी होनो हाइ सा होइ॥ १॥

सखी मोहि राम भावै।
नरपतिनिकर निरस सब लागे कोऊ दिष्टि न आवै॥
उडगन उदय होत ज्यो आली चकोरी चैन न पावै।
एकै है अमृत को श्रावक चदा तपनि वुझावै॥

---

१ सगीतरागकल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० ६४।
२ वही, पृ० २३८।
३ वही, पृ० ५३१।
४ वही, द्वितीय भाग, १४४।
५ वही, पृ० २३६।

राजा बनराजी से लागत पौरुष नहिं दरसावै ।
रघुनंदन चन्दन द्रुम मानो अन्तर जरनि जुडावै ॥
भावै नही पिताप्रन सजनी सारंगपानि सोहावै ।
'अग्रस्वामि मोहनी मंत्र लिये चितवन चितहि चोरावै ॥ २ ॥

राग काहरा

तात प्रन काहे को कियौ ।
कठिन पिनाक राम कर कोमल धीर न धरत हियो ॥
मधुर मुरति आनंदकंद सम नाहिन और बियो ।
बक्र चितवनी साँवरे सखी चित ज़ित चोरि लियो ॥
रघुपति तजि जे रति करैं धृग धृग जिवनहि जियो ।
'अग्रस्वामि रस बस भई मैं मन मोह लियो ॥ ३ ॥

राग टोडी

देखु री नीके रघुनन्दन ।
सीता कहति सखी अपनी सो रसिकराय सिरमौर स्याम तन ॥
चितवत दृष्टि चलत नहिं इत उत रूपरासि मो मो मन फन्द ।
अग्रस्वामि सो मोह बढ्यो अति ज्यो चकोर चंदहि अभिनंदन ॥ ४ ॥
दहरी धसत जब जे हरी देखि मन गहि गयो उठे उर लाई ।
अति आदर सों भरि अंकवारी प्राननाथ पलका पधराई ॥
आगत स्वागत वारि बारि तन बीरी सुहाय बनाइ खवाई ।
बार बार आलिंगन चुंबन मनहुँ रंक निधि पारस पाई ॥
बचनामृत सा सींचि बिबिध भाँति जनककुवरि रघुनाथ लडाई ।
जालरंध्र कै निरखि 'अग्र अति कामकेलि सुख बरन्यो न जाई ॥ ५ ॥

राग केदारा

लाल भयो रोमांच प्रिय कौ आगम जान्यो ।
अनग रौर गए दौरि अजिर म अति आतुर ह्वै अग राम पहिचान्यौ ॥
मघागम ज्यां नृत्य कपाली नूपुरधुनि मन मान्यो ।
सुख समाज सो मिली 'अग्र प्रभु तन मन एकता सान्यौ ॥ ६ ॥

सुख सज पौढ्य राम सीतारवन ।
राग रग रुचिर सौरभ सौंज बीन्का चित्र चंन्वा बिबिध सुन्दर भवन ॥
रूपलावन्य गुन कोकविद्या कुसल बचन रचना बिदुप पिया पारस गवन ।
जानकीजी राजावनयनको मैनछवि 'अग्रसहचरी सुगम और जाने कवन ॥७॥

राग जयतिश्री

सुरतान प्रिया पति दोऊ अतिसय करि निद्रा अधीना ।
जस्न कदम चबुकी मियाउर नाम भवर भयो यश लीना ॥
वासलुत्य को सब्द श्रवन सुनि सभ्रम राम विलोकत बाम ।
रही पुष्प अवसम हृदय मो साखि कसदि मारि गयो काम ॥
प्रेमविवश परतीति न मानत वैदेही हित पावत सेद ।
'अग्रस्वामि' आधीन तिया के मिथ्या दुख आयो तन सेद ॥ ८ ॥

राग ललित

रजनी अल्प राम उठि बैठे सोय गई सीता आयो भोर ।
बार बार त्रिभुवदन विलोकत मानो पीवत सुधा चकोर ॥
हरे हरे चुवन चमकन उर कर सा चिबुक चारु टकटोर ।
जागि परी जानकी तहि छन आलसपगे नयन की कोर ॥
बहुरि अक आरोपि पिया को गोर स्याम सोभित एक ओर ।
'अग्र अली ऐसी छवि छांडे धिग जाको आवै उर ओर ॥ ६ ॥

रघु निरख न मुख कुवरि की
नकबेसरि अटकी लट श्रोकर आप सवारी ।
सुन्दर सुहागनिधि जस पूरि रह्यो विस्वमध्य
स्ववम किये रामचद्र नहिं त्रिभुवन ऐसी नारी ॥
गोर स्याम मनभिराम वारि फेरि काटि काम
जीवनफल देखि देखि 'नाभो' बलिहारी ॥१०॥[१]

राजकुवरि पूजति मजारी ।
कहा न कीजे अपने काज गूढ भाव एक बात बिचारी ॥
निसा घटत सुख हानि होत है वाल बैर कीनो तमचारी ।
याही गोप बिलारी पाली पय प्यावत राघव के प्यारी ॥
जो चुप किये रहे वह कुक्कुट तौ कत भोर होय हिय हारी ।
निद्रा भग समर रस सीमित 'अग्र' अदूषित जनकदुलारी ॥११॥

राग देवगधार

रजनी जागे भामिनी आवत सग मधुर उचरत जय गान ।
डगमगात पग धरत धरनि पर राम अधररस कीनो पान ॥
आलस परे अेंडात जानकी मुन्ति मगन राखो पिय मान ।
अस अग ऊंघाहि देत सब सरबसु अर्पि लिये रतिदान ॥

१ पदावली में सकलित यह पद अग्रदास का न होकर उनके शिष्य 'नाभादास' का है, यह 'नाभो' छाप से ही स्पष्ट है ।

मुवस किये सुदर वर रघुपति त्रिभुवन जुवती नहिन समान ।
सहचरि सबै बिलोकि बिवस भइ 'अग्र अली' बलि वारति प्रान ।।१२।।

राग विलावल

जीति आई कामकली रागरग राती ।
जागी निसि चारि याम बार बार जभाती ।।
पलटे पग धरनि धरत अधर सुधा माती ।
मडल भुज जोरि मोरि अग अग अँगराती ।।
टूटेउ उरहार चिकुर कचुकी उलटाती ।
अधरनि छवि कल कपोल बनी पीक पाँती ।।
नख सिख हरपात गात बानी तुतराती ।
सीताछबि निरखि सखी 'अग्र अली' जुडाती ।।१३।।

कीर निसा की कहति केलि ।
गुरजन सुनत सकुचित सीता भूषन चापि चून दई मेलि ।।
हारधा व्याज बीज कह्यो मुर्यो तौ बदि जानो ज्यो स्वाद ।
सुक सभ्रम मै परयो बिमापनि भूलि गयो पूरब अनुवाद ।।
नागरि उक्ति यह उपजी सखी रीझि रही बदन निहारि ।
'अग्र अली' कहे अचरज नाही वैदेही राजा कुमारि ।।१४।।

राग विलावल

एक नारि व्रत न्याय धरयो ।
अखिल भुवन अद्भुत नहि हरि को निरलै यह रघुनाथ करयो ।।
वनिता रतन सिरोमनि सीता सील सुजस सबही प्रचरयो ।
ता तन मगन भये तन मयना पैसि राम नहि निकरयो ।।
कहा भयो जो कोटिक पत्नी सुख स्वारथ एकौ न सरयो ।
रूप उदार विनय लावण्य गुन 'अग्रस्वामि मन रह्यो भरयो ।।१५।।
जुवती गुन जानकी पतिव्रत भाग सुहाग सुभगता सागर ।
सत्य सील जित क्रोध दया जुन कीरति विसद लाज मृदु आगर ।।
एक नारी व्रत पाइ अमित गुन रिझय राम नयना वर नागर ।
त्रिया तिलक त्रिदूषन भूषन 'अग्र स्वामिनी जगत उजागर ।।१६।।

राग धनाश्री

रामरवनि गजगवनि अवनिजा चपकवरनि मीन मृग नयनी ।
वदन इदु अरविंदु कुद द्विज अधर बिब विद्रुम पिकवैनी ।।

सीता के सौंदज सील धृत उपमा सकल सकुचि भई गैनी।
बनिता वर त्रैलोक उजागर 'अग्रस्वामि' आनँद दैनी ॥१७॥

राग टोडी

राम सो राम सीता सो सीता।
सिव बिरंचि सारदा सेस सुक पटतर खोजत कलप बितीता ॥
सुंदर सील सुहाग अमित गुन अखिल लोक नर नारी जीता।
श्री 'अग्रस्वामि' स्वामिनी उजागर नेति नेति श्रुति गावत गीता ॥१८॥

राग काहरा

सिया असनान उबटि नाते आज कीन्ही कतिक उत्तम नारी।
तेई सील सुंदर सौभागिन बहुत गुनन के भारी ॥
जानकी अंग तीरथ मे न्हाई बाम भई जग उजियारी।
वनिता श्री रघुबीरबल्लभा 'अग्र' स्वामिनी नहि कोउ सारी ॥१९॥
जगत जपत रघुनाथ नाम सब राम करत सीता को सुमिरन।
रामचंद्र को ध्यान धरत मुनि बसति जानकी रामचंद्र मन ॥
सिव बिरंचि के धनुपधरन धन रघुबर कै मैथिली महाधन।
परमहंस कुल राम भजन भर 'अग्रस्वामि' एक पत्नी को पन ॥२०॥
साचों सोहाग जानकी तेरो रघुपति रसबस कीन्हा री।
तोसी नारी नहि त्रिभुवन म पिया प्रेमरस भीनो री ॥
'अग्रस्वामि' मन बचन कर्म तोको रीय आलिंगन दीन्हो री ॥२१॥
मेरी स्वामिनी सुहाग भाग अद्वितीय पटरानी।
रघुपति का और नारि सपने नही माहानी ॥
जाकी लावन्य गुन रूप सील सबही लीक तानी।
'अग्रस्वामि सीताराम बिन्ति जग कहानी ॥२२॥
मेरी रानी को अविचल सुहाग।
जाके परसि और नहि परसी रघुपति दिन दिन बाढ्यो राग।
सीता सी सिरजी न सुपतनी केलि अकटक लग्यो न दाग।
'अग्रस्वामि स्वामिनी अहनिस सुख बिलसत दोउ भूरि भाग ॥२३॥
सर्वोपरि मेरी स्वामिनी राघौ की प्यारी।
जाको परसि और नहि परसी व्रतलीना एक नारी ॥
स्ववस किय दसरथ नृपनंदन नाहिन काऊ सारी।
बैदेही से बन्त कमर पर श्री 'अग्र अली बलिहारी ॥२४॥

राग कल्यान

वदनारबिंद पर बलि बलि कियो प्यारी ।
इंदु कुन्द विद्रुम जपा बिंब मिलि मीन मृग लीन खंजन छबि हारी ।।
नासिका कीर तिल पुष्प दाडिम दसन हसनि बिगसनि कमल कहा करै सारी ।
भाल दीपति मुकुर भौंह राजी भवर भृकुटी सरचाप मनमथ सत हारी ।।
चिबुक त्रिभुवन चारु सुभग सुकपोल तर आनंद कंद विधिना सँवारी ।
राम सुखदैन मधुबैन स्वामिनी 'अग्र' जानकी नारी वर नृप दुलारी ।।२५।।

राग सारंग

बलिहारी सीतावदन की ।
उज्जल अरुन परस्पर दीपति अधर बिंबफल रदन की ।।
बेसरि मुकुता चपल होत अति सोभा बीरी अन्न की ।।
लोचन चारु चितै मधु बरसत राम काम दुख कदन की ।।
सचीसहित सोभा त्रिभुवन की वारौं माननी मदन की ।
अग्र स्वामिनी बिसद चंद्रमुख सोभग हृद सुखसदन की ।।२६।।

सब की सोभा सिमिटि लई ।
बैदेही को बदन बिलोक्त अंतरभूत भई ।।
सीताराम गजगति हंस जघ कदली कटि केहरि दसन अनार ।
कुच नारंगी कांत कलधौतहिं मुख विधु अंबुज चारु ।।
ग्रीवा कंबु कपोत अधर बिद्रुम द्युति नासा कीर ।
नैनन मीन मृग वेनी अहि कोकिल गिरा गंभीर ।।
श्रीहत भए मकुचि सब जित तित पर्वत जाय लियो ।
कोई अरण्य अकास अगिन जल कोउ पाताल दियो ।।
बलि अरु वरुन वन्हि वासव मिलि वदत भये यह बात ।
सीतासरन गहो सब तजि कै श्री 'अग्र अली बलि जात ।।२७।।

राग धनाश्री

भूषन मनिमय नाहिन भावत ।
सीता भीत पीय अंग परसत ऋषिपतनी की सुधि जब आवत ।।
जम्बू नद गुहि असित पाट सो नाना भाँति बनावत ।
कुसुम कटाव कंचुकी सारी कुमकुम कुचन सु दोय अनावत ।।
पदपानि पद चित्र महावर पाँति तबोल कज्जल छबि पावत ।
सहज सुभग बैदेही अंग अंग 'अग्रस्वामि' येहि भाँति रिझावत ।।२८।।

राग कान्हरो

नमो जानकी जगतमनि रुपकमनी ।
वदन बिधु रुचिर रद हास ईषद सुखदाम हृद काम की ताप समनी ।
नमो सुक नासिका नैन मृग मीन छवि भाल वर भाग सौभाग दरसै ।।
प्रेमपूरित वैन अलक इक उर अैन सहज अलवेलि पिय मनहि करसै ।
नमो कठ कपोतिनी उर जडत गिरी सिंह मधि देस श्रोनि सोहै ।।
जघ कन्ली कर्म गर्व गति हरति इमु सुदुति नख चद्र उपमान को है ।।
नमो विमद सत कुम्भ सम भांति आभा वपुष मनि खचित विविध भूषनिधारी ।
ब्यालि बेनीदड अग दीपति चड सुभगता सनि रही रामप्यारी ।।
नमो भरत सगीत गन्धर्वकला कोवनिधि सुघरवरनारि सब सीस नावै ।
रुद्र ब्रह्मादि कवि और केते कहौं स्वामिनी 'अग्र' नहिं पार पावै ।।२६।।

नरवर राम प्रियावर सीता ।
या जोरी की उपमा नाही धाता निरखि रह्यो भयभीता ।।
सोच सदेह करत चतुरानन दूजे काहू सृष्टि चलाइ ।
उभय लोक परयत फिरयो पै येहि मूरति गति कहूँ न पाई ।।
वेद विचार कियो जब ब्रह्मा नेति नेति इनही को गावत ।
राम इष्ट जगतपति नियता सोई 'अग्र अली जिय भावत ।।३०।।

राग मलार (झूलन के पद)

तरुन तमाल वरन रघुबीर जानकी कचन की लता ।
सौदामिनि नव सग मानहु पुलकि प्रेमलता ।।
निरखि रेखि जबूनद जैसे दोऊ सग रता ।
श्री 'अग्र अली' सीतापति सोभा को करि सकै अता ।।३१।।

राग कान्हरो

जनकपुर लागती जु सुहाई
रंगीली अतिहि छबीली मद मिलि झूलन आई ।।
सावन मनभावन पियप्यारी अवनी सहज सुहाई ।
पावन कुज पुज सुख बरसत करषत मन वरषाई ।।
कचन खंभ जडित डाँडी नग बिविधि बिचित्र बनाई ।
रेसम डोरि कोरि बनि आई चहुँ दिसि जलज जराई ।।
लाली बाल साल रंग झीमी लालन लाल सहाई ।
झाका दत लेत सुख पिय को मद मद मुसुक्याई ।।

उमगेउ रग अनग परस्पर मैन मल्हार जमाई।
गावहिं समर रग भरि भामिनि कोकिल कठ लजाई ॥
ठाकुर हमरे राम मनमोहन अगन रूप लोनाई।
ठकुराइनि मिथिलेस लाग्लिी सील सनेह भलाई ॥
होडाहोडी मच्यो है हिंडोरा सोभा कहि न सिराई।
श्री 'अग्र अली प्रिय दपति झूलत जनकलली रघुराई ॥३२॥

राग बसत

मूंदत नैन राम सीता के चदा तन चितवन नहिं देत।
मांगो जो बल्लभा मृगन को सारगधर सकुचात यहि हेत ॥
प्रिया बचन उलधन सक नाही उत्पति हूते प्रलय ह्वै जाई।
दोऊ कठिन जानि रघुनदन हांसी मिस यहि रच्यो उपाई ॥
जांचै जानकी कदाचि इद्र कुरग बेगि देउ आनो।
अति आधीन जनावत निय के 'अग्र स्वामि' एते यह मानो ॥३३॥
रघुकुलवधू झरोखे झांकें राघो खेलें होरी।
भरत परस्पर सुधि नहि पैयत को प्रीतम को गोरी ॥
जहँ तहँ राम जानकी सनमुख लाधव कहि न जाई हो।
केसर कुमकुम कीच मची है बरसत घन पिचकाई हो ॥
नभ बिमान गन थकित रहे हैं सुरबनिता सब गावें हो।
पुष्प वृष्टि करि जय जय उचरें प्रमुदित दद मचाई हो ॥
केलि कुलाहल कौतुक देखें पुरबासी बड भागी हो।
सीताराम स्वरूप हृदय धरि 'अग्र अली अनुरागी हो ॥३४॥

राग जैतश्री

अबके बसत अधिक बनि आयो।
खेलत हुते सदैव अवधपुर यहि सुख कबहुँ न पाई हो ॥
और बेर ये सब हुत सखि मिलि मारति भरि पिचकारी हो।
अबके खेल सरोवर सनमुख कहि न जाइ छबि न्यारीहो ॥
चोवा चदन अगर अरगजा नाना रग अबीर हो।
केसर कुमकुम कीच मची मनो बरसत भादो नीर हो ॥
चग मृदग उपग मजरी मधुरे स्वर सहनाई हो।
जीतत जबहिं नायका नायक सहचरि उठति बजाई हो ॥
कोऊ सखी स्लाधि राम को कोऊ सीता गुन गावै हो।
श्री दसरथ जनक दुहु पौरी दासी गारी देहिं न्चावें हो ॥

यह छबि निरखि सुमन सुर बरसत उचरत जै रघुराई हो।
सीताराम फागुरगरात श्री 'अग्र अली' बलिहारी हो ॥३५॥

खेलत राम रघुपुरी रचि सों बहु भातिन सुखदाई हो।
इत जानकी जुवतिमंडल मे उत सोभित सग भाई हो ॥
चमर छत्र लिये ध्वजा पताका रचना रुचिर बनाई हो।
सबै खल का मौंज सजो है जैसे निघटन जाई हो ॥
बाजे बजन लगे दुहूँ दिसि ते गावति गारि सुहाई हो।
मनहुँ दुरि दुरि छुटे मदमाते भिरत परस्पर धाई हो ॥
केसरि बारि कुमकुमा भरि भरि छुटत छिछि पिचकाई हो।
प्रेरित पवन मनहुँ पावस रितु छिन बरसत इकवाई हो ॥
चोवा चंदन छलबल करि कै प्रीतम मुख लपटाई हो।
राजिवनैन लेत जब बन्लो तब प्रिय दत दुहाई हो।
हा हा किये तबहि भलि छुटिहो कै सीता सिरनाई हो।
मृगमद मलय अबीर सुख सुखो अजिरन कीच मचाई हो ॥
उमरि चल्यो अरगजा पनारनि बोथिनि नदी बहाई हो।
कृस्नागर सो भरे चहबचा धूम धूप नभ छाई हो ॥
सोधौ लहरि महोदधि मानो पुरजन प्रीति कराई हो।
भरति भरावत कुवरि कुवर रस होरी कहि किलकाई हो ॥
मनो मघवाधुनि व्यापि रही सब उठत महल मे छाई हो।
पखरोटा बीरिनि मे पछी मिसु कै हाथ दिखाई हो ॥
खान लगे उडि गई चिरौंजी हसि करताल बजाई हो।
खभ खभ प्रतिबिंब स्याम के जहं तहं देत देखाई हो ॥
कुसध्वज कुवरि भरति भ्रम सो जब तब हँसि करत खेलाई हो।
पलटे पकरे जाइ सनुधन कज्जल आँखि अचाई हो ॥
करत सबै भामिनि मन भायो बदौ तौ लेहु छुड़ाई हो।
रग रँगे खेलत अँग अगन जनकसुता रघुराई हो ॥
रीझ सुमन बरसत सुर सघट देव दुन्दुभी बजाई हो।
जालरध्र निरखत सुख जननी आनदसिंधु बढाइ हो ॥
तन धन प्रान करत न्योछावरि बाजत बहुत बधाई हो।
बीच कियो कौसल्या रानी फगुवा गोद भराई हो ॥
सीताराम विनोद फाग पर 'अग्र अली' बलि जाई हो ॥३६॥

राग मारू

सीताराम की बलिहारी ।
जगभूपर निरदूषर जोरी राजत अवधविहारी ॥
सुंदर वर रघुबीर धीर अति सोभानिधि सुकुमारी ।
श्री 'अग्र अली' उरबसो अहनिस सीय सरागनधारी ॥३७॥

हिंडोरो झूलत जनकदुलारी ।
सखि इक ओर सिंगार रूपनिधि विविध भाँति तन सारी ॥
कंचन खंभ पाटि पटुली डाँडी बिद्रुमद्युति न्यारी ।
पदराग मरुवा बंला पन्ना आउ इंद्रमनि भारी ॥
धाम निकट आराम हरित द्रुम क्रीड़त तहँ सुकुमारी ।
गावति हैं मिलि हरषि हिंडोरा मनकछित उनहारी ॥
करत अँदोल लोल चंचल चल जनु दामिनि छवि हारी ।
साट लिये रजनी डरपावत नाम लेउ पिय प्यारो ॥
नाम लियो स्वरूप सुचि वर देगी ईषु धनुधारी ।
श्रम स्वेदबिंदु निरखि बदन पर श्री 'अग्र अली' बलिहारी ॥३८॥

देखो झूलत रावो डोल ।
जनकसुता लीने संग सोभित गौर स्याम तन लोल ॥
हीरा पन्ना लाल पिरोजा रतनखचित बेमाल ।
क्रीडत राम जानकी दोऊ बजै दुंदुभी ढोल ॥
हसत परसपर प्रीतम प्यारी आनद बढ़्यो सचोल ।
श्री 'अग्र अली' सुनि सुनि गुन पावति बोलहि मीठे बोल ॥३९॥

झूलत सिया राजिवनैन ।
रतनजड़ित हिंडोलना सखि राम सुख के अैन ॥
स्याम अंग पर गौर झलकत दामिनी घन गैन ।
मैथिली रघुबीर सोभा निरखि लज्जित मैन ॥
नाम पिय को लेहु नागरि जो सखिन मन चैन ।
जानकी नहिं लेत मुख सो देत लोचन सैन ॥
परस्पर झूलत झुलावत बदत मधुरे बैन ।
अवधपुर नित केलि दंपति 'अग्र' आनँद दैन ॥४०॥

राग जैतश्री

झूलत राम राजिवनैन ।
जनकजा सनमुख बिराजति तड़ित ज्यो घन गैन ॥

अतिहि झूलत मनहिं फूलत रसहिं तोषन मैन।
लाल के उर लागि सोभा सुख को रेखै ऐन ।।
परस्पर अनुराग दोऊ बन्त मधुर बैन।
जालरध्र सो निरखि बनिता 'अग्र' उर सुख दैन ।।४१।।

जलबिहार बिहरत सीता संग सुंदर बर रघुराई हो।
ग्रीषम काल सुसार सरद सुख सरजू सुभग सुहाई हो ।।
न्यारी न्यारी नाव सबनि की सीतल सौंज भराई हो।
लेहज चोहज बिबिध भाँति फल सुगध बरयो नहिं जाई हो ।।
एकै कोट कुंवरि रचो भई राम लक्ष्मन भरत भाई।
भरत परस्पर कर अंजुली जल मनो सीकर बरखाई हो ।।
बिमला कमला चकटिका मेलता लाधव लेत बचाई हो।
लोचन लाल भए पयपूरित बसन अंग लपटाई हो ।।
निरखत नीरकेलि नर नारी, 'अग्र अली' मनभाई हो ।।४२।।

उठे दोउ अलसाने परभात।
दसरथसुत श्री जनकनंदनी सौंधे भीने गात ।।
बिमलादिक सखि चवर ढुरावहिं हरषि निरखि मृदु गात।
श्री 'अग्र कली' को श्रीरज दीजै सकल भुवन के तात ।।४३।।

चहियत कृपा लली सीता की।
नवधा भक्ति ज्ञान का करनो मिटि गई सक वेद गीता की ।।
पटमत वेद पुरान पुकारत करत बाद नर बपु बीता की।
झगरौ करैं अरुझै सुरझै ना मिटी न एक द्वैत भीता की ।।
जाकी ओर तनक हसि हेरति करत सहाय राम जू ताकी।
श्री 'अग्र अली' भजु जनकनंदनी पापभंडार ताप रीता की ।।४४।।

जै जै श्री बनप्रमोद रसिकन सुखदाई।
सरजू तीर दिव्य भूमि बेलि लता रही झूमि
फूलन प्रति भँवरा अति गुंजत मनभाई ।।
कुंज कुंज प्रति अनूप बिलसत तहाँ जुगलरूप
जनकलली रघुनंदन मधुर मधुरताई।
चंद्रकला बिमलादिक नागरि नवीनी अति
मधुर जत्र लीन्हे कोइ सप्त स्वर जमाई ।।
गावहिं सब दिव्य तान सुनहिं लाल अति सुजान
रामरस भीजि मंद मंद मुसक्याई।

श्री 'अग्र अली' बिपिन राज यहि सुख तहँ नित समाज
जानत कोउ रसिक भेद जिन यह रस पाई ।।४५।।
आगे सखि पाछे सखि सखिन के मध्य आवें
अचरानि ओट राजें राजदुलारी ।
अकनि अकनि पग धरत धरनि पर होत ललित नूपुर झनकारी ।।
करत प्रबेस महल म सजनी अरसपरस सुख उपजत भारी ।
दपनि छबि मोपे कहि न परतु है श्री 'अग्र अली' तापर बलिहारी ।।४६।।

अथ भोजन पद

छबीले दोऊ आवत भोजनसाल ।
झूमत झुकत चलत मतवारे रसिक रगीले लाल ।।
करत कटाक्ष परस्पर लपटत दीहे गलभुज माल ।
हसत हसावत रस उपजावत सग सहचरी जाल ।।
प्रानप्रिया कछु कहत नवेली हरषित होत निहाल ।
श्री अग्र अली बैठे दोउ प्यारे निरखत भोग बिसाल ।।४७।।
जेंवत श्री रघुबीर बने सखि सग लिय मिथिलेस लली ।
भुज अस दिये बहियाँ जु लसैं बिहसैं मृदु मजु अनग रली ।।
करि कौर सिया मुख देत पिया कहि स्वाद सराहत भांति भली ।
रस के निधि दपति रग भरे निरखें चहुँ ओर किसार अली ।।
मनिमदिर म झलकें प्रतिबिंब मनोज में मानो बिहारथली ।
अवधपुर नित्य बिहार करें लखि 'अग्र अली जी की आस फली ।।४८।।
भले रूठो जी राम गोसाई ।
पायो राज पाट दसरथ के गहि लीन्हा ठकुराई ।।
जाय कहौं मिथिलेस लली से निसरि जाइ गुमराई ।
श्री 'अग्र अली के सिर पर चहिये सीरध्वज को बाई ।।४९।।
यह मोहि दीजै राघव राम ।
दासनिदास दास के अनुचर कथा श्रवन मुख नाम ।।
मोग्न आनि दै चारि पदारथ मेरो कछु नहि काम ।
चरनरेनु साधुन की सिर पर कृपा करो सुखधाम ।।
सतन सो अनुराग निरतर यहि बिधि बीते जाम ।
श्री 'अग्रदास' चाहत हरि चरचा सुधासिंधु बिश्राम ।।५०।।
हम चाकर रघुनाथ कुमर के ।
द्वादस तिलक मनोहर बाना कठा कठ दखि जम टरके ।।

तुमहिं जांचि जांचौ नहिं औरहिं नाहि भरासो कहू नारी नर के ।
द्वालीवद सदा प्रभु तेरो भयो गुलाम रावरे घर के ।
'अग्रदास' यह पटा लिखायो दसखत दसरतसुत निज करके ॥५१॥

इनके अतिरिक्त अग्रदास जी के कुछ और पद मुझे इधर खोज मे प्राप्त हुए हैं । उनमे से १४ पद राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर मे सुरक्षित 'पद मुक्तावली' नामक काव्यसग्रह (ग्रथाक १८८२) के हैं । भाषाशैली तथा वर्ण्य-विषय के विचार से इनके अग्रदास विरचित होने म कोई सदेह नही है । शेष पद रसिक रामभक्तो द्वारा सकलित पूर्वाचार्यों के पदसग्रहो में मिले हैं । भाषा तथा वणनपद्धति दोना दृष्टिया से इनमे से अनेक की प्रामाणिकता सदिग्ध प्रतीत होती है । विभिन्न स्रोतो से सकलित इन पदो म यत्र तत्र सामान्य पाठ भेद के साथ कुछ एक दूसरे स बिल्कुल मिल जाते हैं—

(५२)

॥राग आसावरी॥

रामजनम आनद बधाई ।
सुरतर कामधेन चितामनि अवधिपुरी मानौं ग्रह ग्रह आई ॥टेक॥
अतरीछ जन फिरत अवनि पर मिलन परसपर हूव बधाई ॥१॥
प्रफुलित ह्रिदौ नगरवासिन कौ बाल वृद्ध सब बात सुहाई ।
भई भीर नाचत नर नारी वहौ विधि गिने न जाई ॥२॥
मगल कलस चौक मोतिन के द्वारन बदनवारि बधाई ॥३॥
सुत कौ बन्न निहारि नारि सब वारत भूपन लेत बलाई ।
नारी नर कौसल्या रानी धन्नि भाग की करत वडाई ॥४॥
दसरथ राय न्हाय भए ठाढे कनक बसन अन धेंन मगाई ।
परम पुनीत विप्रपद बदित दान मान ज्यौं घन बरपाई ॥५॥
मागध सूत भाट बदीजन अष्टसिद्ध मन वाछित पाई ।
दसरथ सुत हौं नित प्रति देषौं अग्रदास कै यहै मन भाई ॥६॥

(५३)

॥ राग गौरी ॥

आजि बधावौ दसरथ राय जाए ह राजीव नैंन
आए हैं सुप के अैन ॥टेक॥
चैत मास नौमी उजियारी सब सजोग अनूप ।
लगन महूरत नषत्र उच्चग्रह चरनचिह्न बन भूप ॥१॥

बसिष्ट आदि तपोधन धारी कीनौ यह निरधार ।
दुष्ट दलन सुपद सतन कौ भूमि उतारन भार ॥२॥
घर घर तोरन धुजा पताका मुकता बन्दनवारि ।
दूध पूत भरी नारि सुहागनि सथिया रचत दुवारि ॥३॥
चदन चौक रचत आगन मैं दधि अरु दौब बधावें ।
कनक थार सीपज भरि आछित मिलि सब मगल गावैं ॥४॥
निरत गीत बाजित्र वेद धुनि ठोर ठोर यौं भनियै ।
लेहु लेहु प्रापति भई बानी बोल श्रवन नहि सुनियै ॥५॥
पढ़ें निसान मृदग सप धुनि जै जै सबद उचारैं ।
करत कौतूहल कौसलवासी आनद बन्यौ अपारैं ॥६॥
मागध सूत भाट बदीजन दान मान बहु पावैं ।
वरणाश्रम जतन अति धारी फूले अग न मावैं ॥७॥
भू देवन कौं भूमि बाज गज धेनु रतन अन दैहै ।
पाय लागत सतोप सुवासिनि मुदित आसिषा लैहैं ॥८॥
सुरतरु कामधेन चिंतामनि कौशल्या सुत जायौ ।
अग्रदास रघुपति कै आगम मन वछित फल पायौ ॥९॥

(५४)

॥ राग कनडो ॥

जाहि भयौ परसाद राम पदरज कौ ।
त्रिलोकी लागत ताहि फीकी आसन इन्द्र बैठिवौ गज कौ ॥
अष्टसिद्धि नवनिधि तीन पदारथ अद्भ पतिता अज कौ ।
मुक्त चतुर धाम निहिन मानत घटयौ सुभाव कामना कज कौ ॥
दीयौ हूँ नहिं लेत हरी कौ उपज्यौ राग सहज कौ ।
चरन धूरि फल मूलि अगर प्रभु अकुस कुलिस कवल जव धुज कौ ॥

(५५)

॥ राग मलार ॥

तीज हिंडोरैं झूलत रानी ।
सुरतिकीरति उरमला माडवी रूप सील गुन पानी ॥टेक॥
मच्यौ हिंडोरौ नाम लिवावत चतुर सपी मुसकानी ।
सीयाजू सकुचि रही नहिं बोलति अग्र अली मन मांनी ॥१॥

(५६)

॥ राग मलार ॥

सावन आयौ है रग हली ॥
सावन तीज सबै सजि पेलैं आवौ मिलौ सहली ॥टेक॥
सजल घटा उमगी चिहुँ दिस तैं प्रफुलित है द्रुमबेली ।
हरी हरी भूमि बूंद अति बरषैं रतिपति गति सब पेली ॥१॥
बरन बरन भूषन पट पहरैं उत्तम नारि नवेली ।
सुरति कीरति उरमला माडवी च्यारौं लाड गहेली ॥२॥
अपनें अपनें ग्रह तैं निकसी आनि जुरी इक सैली ।
अग्र स्वामिनी की छवि निरषत तन मन वारदि वली ॥३॥

(५७)

॥ राग मलार ॥

हिंडोरै झूलत जनक दुलारी ।
सपी इक प्यार किसोर रूपनिधि बिबिध भाति तन सारी ॥टेक॥
कचन पभ पाट पाटली डाडी विद्रुम दुति न्यारी ।
पदम राग मरवा वेलनि पुनि आड इद्रमनि भारी ॥१॥
धाम निकट आराम हरित द्रुम क्रीडत तहा सुकुमारी ।
गावत हैं मिलि हरषि हिन्डारैं कल कोकिल उनहारी ॥२॥
करत अडोल लोल चचल चल घन दामिनि छबिहारी ।
साटली पैं सजनी डरपावति नाम लेहु पिय प्यारी ॥३॥
नाम लीयौ स्वरूप सोचि करि इप दए धनुधारी ।
श्रम सेत बूंद निरषि वदन पर अग्र अली बलिहारी ॥४॥

(५८)

॥ राग मारु ॥

रघुपति वेग विलव कीजै ।
सीता सोध भये पीछे वै इहा न पानी पीजै ॥टेक॥
आनन्दादि योग तिथिउत्तम लगन बिचार ।
सूरज सोम नमित्र ग्रह नीके रिपगण कीयौ निरधार ॥१॥
दिसासूल योगिनी पीठ पुनि त्रिय पूठि के गामी ।
सम सूचिक सभ सुगुण होत हैं सब सुख के अभिरामी ॥२॥
अनुज सेष अनुचर व्रतवानर राम सहायक राजा ।
कहा सायर कहा लकन्सानन केतो एक है यह काजा ॥३॥

अग्रस्वामि सुग्रीव विनति प्रभु चलिये एही काल ।
सीता लाभ सुणे वदि छूटे सत्रु जाय पयमाल ॥४॥

(५६)

॥ राग भेरी ॥

आजि रामजानकी कृपाल सुद सोहे ।
निरपत सुर नर मुनिजन शिव बिरचि मोहे ॥टेक॥
श्री रामजी कै क्रीट मुकट रतन जटित धारें ।
सीयाजू के सीस फूल कोटि चद्र वारे ॥२॥
श्री राम जी के कुडल छबि कोटि भान मोभा ।
सीयाजू कै करनफूल श्री राम कौ मन लोभा ॥३॥
श्री रामजी कौ सोहत उर मोतिन की माला ।
चार हार रुचिर पहरें जनक कुवरि बाला ॥४॥
श्री रामजी कटि किंकनी रुण झुण रुण झुण बाजै ।
सीयाजू कै छुद्र घटि काटि मदन लाजै ॥५॥
श्री रामजी कर धनुपबान पीताबर राजै ।
सीयाजू कर कमल सुरग चूनरी बिराजै ॥६॥
श्री रामजी घनस्याम अग छबि के अभिरामा ।
सीयाजू कचन गौर अग लजित सपत कामा ॥७॥
यह ही ध्यान हिरदै सौ टरत नही टारे ।
अग्र स्यामि चरन उपर कोटि काम वारे ॥८॥

(६०)

॥ आरती ॥

आरती बारन रघुपति राया । सुरनर मुनि जन कौतिक आया ॥टेक॥
घटा निसान घन झालरि बाजै । जगमग जोति अवधपुर राजै ॥१॥
वदीजन जस द्वारे गावैं । सूरज बस प्रताप बन्वावैं ॥२॥
मात कौसल्या श्री रामहि देपै । जीवनि जनम सुफल करि लेपै ।
क्रीट मुकट कर धनुप बिराजै । तीन लोक जाकी शोभा राजै ।
मोतीयन थाल भरि मईया वारै । अग्रदास जन आरती उचारैं ॥१॥

(६१)

॥ राग कनडो ॥

येही सुभाव परी मरी वानी ।
अहो निसा गाऊ गुन पावन रावीराय जानकी रानी ॥टेक॥

जागत सोवत सीतापति पद आन कथा हिरदै नहिं आनी ।
जहाँ तहाँ रट परी रसन जस मानौं मनि काहू की कानी ॥१॥
असुद अलाप पाप करि जानौ रमा रवनि उचरू सुपानी ।
बैदेहीवल्लभ की कीरति अग्र मोज पावै मन मानी ॥२॥

(६२)

॥ राग कनडो ॥

रामचन्द्र पद भजिवे लायक ।
अभै करन भव तिरन पोत दिढ जुग जुग साषि वेद के वायक ॥टेक॥
चितत चरन सकल सुख करतल व्यापत नहीं सूल कौं मायक ।
सतन की रच्छा के कारण निस दिन लीयें रहत कर सायक ॥१॥
गौतम घरनि गिरा जल तारे सरन भभीषन कपि ज्यौं सहायक ।
सेवा अलप मेर सम मानत करनासिधु अजोध्या नायक ॥२॥
सिव बिरच सनकादि वेणुधर सारद सेस विमल जस गायक ।
जानकी रवन अग्र सिर सेहरौ अग्रदास उर आनद दायक ॥३॥

(६३)

॥ राग कनडो ॥

निबहौ नेह जानकीवर सौ ।
येही मनोरथ मन वच मेरे सनमुष रहूँ निति सारगधर सौं ॥टेक॥
उसकौं नहीं द्वारि काहूँ कें नेम परौ दृढ दसरथ घर सौं ।
अष्टसिद्धि नवनिध सीतापति पद काम नहीं मोहि च्यारौं फल सौं ॥१॥
प्रीत न बैर असुर सुर नर सौं निधरक रहौं डरौं नहिं डर सौ ।
रावन अनुज बालि कौ बधू दुसह आपन्न टारी पर सौं ॥२॥
मोह घटौ ससार सकल सौं अनुराग बढौ निति करुनाकर सौ ।
अग्रदास की यही बीनती राम राय छाडौ जिन कर सौं ॥३॥

(६४)

॥ राग सोरठ ॥

मेरे राघवै कठिन धनुष कैसैं तोर्‌यौ ।
बडे बडे भूप सपत दीपन के तिनहूँ नैंक न चहोर्‌यौ ॥टेक॥
पिता पुन्य पय पीयो तुम्हारौ बिस्वामित्र सहाई ।
यह ही सजोग बनो मरी जननी तातैं लीयो उठाई ॥१॥
चांपत चूंबनि गोद बैठारि कें बाटत बहुत बधाई ।
अग्रदास कौसल्या सुत पर बारि फेरि बलि जाई ॥२॥

(६५)

॥ राग सोरठ ॥

लेत बलैया रानी रीय के लेन बलैया रानी ।
जाकी कृपा सदै फल पायो अद्भुत दुलही आली ॥टेक॥
सूरजवश हुती बहो वनिता ऐसी सुनी न देखी ।
रूपसील सागर गुन सीता सवहीं वधू बसेपी ॥१॥
जाकी कृपा जनक से समधी अलभ लाभ मैं पायो ।
कर पद जोरि कहै कवसल्या कीयो मनोरथ भायो ॥२॥
विप्रन पुत्रि कीये सुत मेरे मोपै बरनी न जाई ।
गाधिसुवन परि तन मन कर सोई अग्रदास निधि पाई ॥३॥

(६६)

॥ राग ललित ॥

गावति श्रीप्रसाद सिय प्यारी छबि छकि मतवारी ।
वीण बजावनि मधुरे स्वर सो मधुर ताल सुठिकारी ॥
सुनि जागे पिय प्यारी प्रीतम आलस भरे घुमारी ।
बिनदुकूल बैठे पलगा पर काहू सुधि न सम्हारी ।
प्यारी लट छुटि सोह उरज पर जनु नागिन दुतिकारी ॥
अग्रअली निरखति यह छबि को तन मन धन बलिहारी ॥

(६७)

॥ राग ललित ॥

भरि अनुराग परस्पर दोऊ अधरामृत रस पियत विलारी ।
दत नखोक्षत दोउ अग झलकत मनु युग द्विरद बैठि लडि भारी ॥
कबहुँ प्रेम भरि लपटि झपटि दोउ करि विपरीत क्रिया रसकारी ।
प्रीतम प्यारी को कहु प्यारे प्यारी प्रीतम को कहि प्यारी ॥
चारुशिला रुख पाय अग्रअलि यह सुख झाकति झाझरि द्वारी ॥
जाहि न यह सुख निरख्यो नैनन जप तप योग व्यर्थ श्रमकारी ॥

(६८)

॥ राग ललित ॥

भोर भये नव रग महल मे राजत जनक लडैतो लाल ॥
स्याम गौर अशन भुज दी हे कछु आलसयुत नयन बिशाल ॥
प्रेम मगन दोउ उरजि रहे हैं कनकलता जनु डार तमाल ॥
अग्रसहचरी तन मन वारत उझकि झरोखे झाँकति बाल ॥

(६९)

उठे दोउ अलसाने परभात ।
दसरथ सुत श्रीजनकनन्दिनी सोधे भीने गात ।
बिमलादिक सखि चँवर दुरावति हरषि निरषि मृदुगात ।
अग्रअली को श्रीरज दीजै मकल भुवन के तात ॥

(७०)

॥ राग देवगंधार ॥

जीति आइ कामकेलि रामरंग राती ।
जागी निसि चारियाम बार-बार जम्हाती ॥
पल दे पद धरति धरनि अधर सुधा माती ।
मडल भुज जोरि मोरि अंग अंग अगुडाती ॥
टूटे उर हार चिकुर कचुकि उलटाती ।
अधरनि छत कल कपोल बनी पीक पाती ॥
नख सिख हरखात गात बानी तुतराती ।
सीता छबि निरखि-निरखि अग्रअलि जुडाती ॥

(७१)

दतुवन करत सिया रघुराई ।
सुदर सुखद रसीली दतुवन रदन धरत छवि छाई ॥
जीभी कर जल परसत दोऊ मुख प्रछाल अगुछाइ ॥
अग्रअली उरझी चितवनि में मन्द मन्द मुसुकाई ॥

(७२)

॥ मगल ॥

मगल करि शृंगार सुतन मगल मई ।
मगल थार सजाई द्रव्य मगल मई ॥
मगल कर लिये सौज चली मगल मई ।
पहुँची हेमनिवास जहा मगल मई ॥
निज-निज सखि लिये वाद्य बजावत रस मई ।
गावन लगि बहु नारि राग मगल मई ॥
आलस युत सिय प्यार जगे मगल मई ।
सखि सब झाँझरि माह विलोकति सुख मई ॥
देखत युग विपरीत रहस मगल मई ।
बिन दुकूल झलकात गात सब रस मई ॥

लखि सखि सब सुखसिंधु मगन मगल मई ।
बैठे दिय गलबाँहि रूप मंगल मई ।।
सखि सब रूप निहारि वारि तन मन दई ।
पुनि दोउ को बैठाइ चौकि रतनन मई ।।
मगल द्रव्य दिखाई प्यारी प्रीतम नई ।
पुनि दोउ के शृगार करी मगल मई ।
मगल भोग लगाइ शेष सखियन लई ।।
आरति करि पट वारि वारि मगल मई ।
अग अग छवि अवलोकि सखिन बलि बलि गई ।।
मगलमय यह ध्यान अग्र ज गावई ।
पिय प्यारी रस महल टहल सुख पावई ।।

(७३)

।। सुगन्धा छन्द ।।

मगल आरति करि सखि राम रिझाइ कै ।
भूषण कछुक उतारहिं प्रभु मन पाइ कै ।।
कोइ सखि पट पहिरावहिं दूसर छोरि कै ।
अष्ट कमल दल मणि चौकी दुइ जोरिकै ।।
द्वौ चौकी वसु वसु सखी टहल चतुरि बडी ।
अष्ट कोण दल दल पर आयसु लखो खडी ।।
वागीशा, माधवी, प्रियाहरि, मनजीवा ।
नित्या, विद्या, सविद्या, कूटरूपा—सीवा ।।
आठो मुख्य ढिगन द्वौ खडी सोरह सखी ।
अवरनि ते लै देहिं आठ कहँ मन लखी ।।
सिय चौकी पर मुख्य आठ सोरह सखी ।
जस रघुवर सेवा महँ तस सिय के लखी ।।
विमला उतकर्षणी, क्रिया, योगा, प्रवी ।
ईशाना ज्ञाना सत्या, सेवा कवी ।।
आठ आठ जे मुख करहिं मन की लखी ।
समय समय सब निहे अपर कोटिन सखी ।
परम मुख्य सखि पाच सुशीला, लच्छमना ।
हेमा, अतिशीला सुचारुशीला मना ।।

पाँचहूँ की आशा सुसर्व सेवा सुधी।
अर्घ देति सखि अग्र राग सिय की रुची ॥

(७४)

॥ कवित्त ॥

श्री प्रमाद प्यारी औ प्यारे और धाम्शीला
अगन सुगन्धमय उबटनो लगावती।
दोउन के खुलेगात अगन छवि झलमलात
मानो शशिकोटि सुधा किरण को लजावती ॥
निरखि निरखि सुभग गात आनन्द उर मे समात
कोटिन रति काम आली दोउन पै वारती।
कोमल कर मे सुधार उबटनो लै बार-बार
दोउन सखि हाथ अग्र देति रस भावती ॥

(७५)

॥ उबटन ॥

सिय प्यारे को (सखिया) लगावति उबटन।
पद्मराग मणि की चौकी पर दुग्ध फेन सम बिछे बिछावन ॥
तापर स्यामा स्याम विराजे कोटि मदन रति द्युतिन लजावन।
अति सुगन्धमय तैल नरायन तामे और मिलाय सुगन्धन ॥
सिरष कुसुम हूँ ते अति कोमल अग अग सुकुमार निरखि तन।
लै उबटन कर चहत लगावन करन कठोर समुझि हिय धरकन ॥
अति भयभीत सहमि सखि लगवनि लखि अद्भुत छवि वारति तन धन।
कोइ सखि प्रीतम अग लगावति अग्र लगावति प्यारि सुभगनन ॥

(७६)

उबटन करत रगीली अलियाँ।
युगल अली दोउ चरन लगावति अग निलोकति छलियाँ ॥
युगल युगल सखि दोउ भुज मीडत उर पीठन युग अलियाँ ॥
अग्रअली दोउ रसिक परस्पर मुख मीजत छलि बलियाँ ॥

(७७)

उबटन करत सिया रघुराई।
सरस सुगन्धन बयो उबटनो लेकर उर सरसाई ॥
जोई जोई अग लगावत प्यारो सोइ प्यारी मन भाई ॥
अग्रअली के जीवन दोऊ निरखत दृग न अघाई ॥

(७८)

॥ कवित्त ॥

सिया अस्नान उबटयाते आज कीन्ही वेतिय उत्तम नारी ।
तेई सील सुन्दर सौभागिनि बहुत गुनन के भारी भारी ॥
जानकि अंग तीरथ म न्हाय बाम भई जग म उजियारी ।
वनिता श्री रघुबीर वल्लभा अग्रस्वामिनी नहीं कोउ सारी ॥

(७६)

मज्जन करत रसिक मनहारी ।
सुभग सरोवर तामें दोऊ करिणी सग करि रिव पिय प्यारी ।
सखिन सहित विहरत जलमाही बहुविधि करत केलि रसकारी ॥
अजलि भरि जल लेत परस्पर अँखियन में मारत पिचकारी ।
वस्त्र झीन अंगन सन झलकत लखि लखि दोऊ रम मतवारी ।
करि मज्जन दोउ तट पर आये अग्र समय सम बसन सुधारी ॥

(८०)

यज्ञ (सु) करत रसिक सिय प्यारो ।
सुरतरु तर मनिमय वेदी दाहिन सिय पिय वाम निहारो।
दाहिन इक अलि थार लिये कर पायस लै सिय पिय करधारो ।
द्वादश आहुति युगल मत्रसो जातवद तिपित किय भारो ।
हवन कुड परिकरमा कीन्हें अग्र अली के प्रान अधारो ॥

(८१)

॥ कवित्त ॥

दिव्य मडप महा यज्ञ किय साजयुत नारदिय श्रुति सखी रूप आई ॥
बिप्र तनया कह्यो सीय रघुवर लही हरदि दधि अक्षत लैं छिड़ाई ॥
धेनु भूपनवसन रत्न बासन असन अन्न वाहन अमित दीन जाई ॥
पानिध्वै अग श्रृगार दूसर किये पूजि पियप्यारी सब सखि सुहाई ॥

(८२)

॥ श्रृगार कवित्त ॥

प्यारी कटि सारी जरतारी सुधारी झीनी प्यारे कटि धोती सुपीली झलकारी है ॥
प्यारी वक्षोज पर कचुकी सुधारी झीनी प्यारे उर कचुक सुमोतिन की धारी है ॥
प्यारी गले चन्द्रहार प्यारे गले मुतमाल अगद ओ पहुँची समुद्री नग जारी है ॥
चन्द्रिका सिपेच पाग कानन मे कनफूल कुडल अलि अग्र हाथ आपने सुधारी है ॥

(८३)

करत कलेऊ मिलि दोउ प्यारे जनकनन्दनी अवध दुलारे ॥
बरफी मोदक तपत जलेबी खाझा घेवर अति रुचीकारे ॥
बीज पाक रसगुल्ला खुरमा मोहनभोग पूप रसदारे ॥
पूरी कचौरी मठरी पापरि गुझिया गोझा मिसरी डारे ॥
और अनेक भाँति के व्यजन कनक कटोरन अग्र सुधारे ॥

(८४)

॥ राग मगल ॥

अग-अग करि शृगार सखिय सब साथ मे ।
पूजन चलि सिय सासु प्रेम रस राग मे ॥
पूजन के सब सौंज साजि लिये थाल मे ।
गावति नृत्यत चली सखिय उमगात मे ॥
पहुँची सासु निवास अग छवि को कहै ।
कोटिन रमा प्रकाश सिया द्युति अग लहै ॥
देखि सासु अति प्रेम बातसल रस भरे ।
भरि अकवार उठाय लइ निज हिय धरे ॥
मस्तक को करिघ्रान बलैया लइ वे ।
इक टक मुख छवि निरखि अपनपो भूलिवे ॥
सासु गोद ते उतरि सीय पूजन करी ।
षोडष भाँति विधान प्रेमरस मे भरी ॥
सासुन दई असीस वधू अनुदिन बढे ।
प्रीतमसग अनुराग कबहुँ छिन ना घटे ॥
गग जमुन नहि रहै जगत या ना रहै ।
अचल रहै अहिबात सिया पिया साथ है ॥
पूजन करि सिय सासु आइ निज महल मैं ।
प्रीतम करि आलिंग अग्र सिय टहल मैं ॥

(८५)

रघुवर मातु महल को जात ।
भरत लखन रिपुदवन साथ लिये और सखन के व्रात ॥
कठ सुभग गजमुक्ता माला सिर पगिया झलकात ॥
नखशिख साज शृगार मनोहर सखन सग बतरात ॥

धनुष बान कर में सुठि सोहन अंग लखि मदन लजात।
मातु महल के पौरी पहुँचे तुरग उतरि चहुँ भ्रात॥
मातु समीप बैठि अनुजन युत करि प्रनाम नमि गात।
गोद बिठाइ लइ कौशिल्या मुख चूमत हरषात॥
बालक वत करि करि के चेष्टा मातु गोद हलरात।
जननी देखि देखि मुख फूलें आनन्द उर न अमात॥
बहुत भाँति पकवान मिठाई निज कर कमल खिलात।
करि कलेउ अम्बा प्रनाम करि संग सखन सब भ्रात॥
अग्रस्वामि निज महल पधारे प्यारि लपटि भरि गात।

(८६)

॥ राग ललित ॥

मुकुट उद्योत होत, दिन निशिनें, ब्रह्म काल नहिं पावत ब्रह्म चित।
आतुर अमर अगमनें धावत, रामचरन बन्दत निद्रागत॥
उठि आवत जो जहाँ तहाँ ते भोर भये हेलें परसन कौ।
भ्रामक भोर भुलो ऋषि सध्या निव वासी आये दर्शन कौ॥
निबसत निकर असुर सुर नर मुनि कोट घोप जय घोप अपार।
अग्रदास बलि पादपीठ पर बंदी वेद करत कै बार॥

(८७)

चचल भारि तुम्हारी कीरति दशोदिशा को धावत।
सुर नर असुर लोक लोकन मे रघुपति तुव यश गावत॥
घर घर बार फिरति कुलटा ज्यो निकट नाहिं सुचि पावत॥
विसद विसाल जसहि विस्तारत यह अचरज मोहि आवत।
पतिव्रत प्रण छोडे है जद्यपि सबही याहि सुहावत॥
सतन जीवन मूरि सदाही अग्रनाम जिय भावत॥

(८८)

अकरन न्याय कियो यहि धाता।
अति ही चतुर सृष्टि रचना को अस सोच समुझन अति घाता॥
फणिपति रघुपति को जस सुनि कै जोपै मूड डुलावत।
फूट जाय ब्रह्माण्ड खण्ड सब बहुरि करत दुख पावत॥
याते उरग श्रवण बिन सिरजे जगन भग डर आवै॥
बिसद श्रुत श्री अग्र स्वामि क कौन न ग्रीव डुलावै॥

(८९)

चौसर खेलत रसिया लाला, प्यारी सग सुख आल ।
सारी फल जरिदार मखमली स्याम पीत सित लाल ॥
पासा हीरा के अति सुंदर युग दल सखि कर चाल ।
श्री प्रसाद प्यारी दिसि चातुरि चारुशिला उत बाल ॥
दम्पति टोल हूनें गहि गोटी कौतुक कर सिय लाल ।
चतुराई चित चोरत खेलत दोऊ नैन विसाल ॥
प्यारी हँसि प्रीतम को हेरत कर से न पासा चाल ।
देखि लाल ठगवग से रहि गये कुच बिच इन्द्र सुजाल ॥
भूलि गये चतुराई आपनि जीत लई सिय बाल ।
हारि लाल सिय अधर चूमि लई अग्र घूत बडे लाल ॥

(९०)

कीर निशा की कहत केलि ।
गुरु जन सुनत सकुच सीता के भूषण चापि चून दइ मेलि ॥
डार्यो ब्याज बीज कह्यो भुजो तो वन्हिीं जायो जा स्वाद ।
सुक सम्भ्रम म पर्यो विभाषनि भूलि गयो पूरब अनुवाद ॥
नागरि नारि उक्ति यह उपजी वैन्हीं वर राज कुमारि ।
अग्रअली कह अचरज नाही सखी रीझि रहि बदन निहारि ॥

(९१)

जगत जपत रघुनाथ नाम सब राम जपत सीता को सुमिरन ।
रामचन्द्र को ध्यान धरत मुनि बसत जानकी रामचन्द्र मन ॥
शिव विरंचि व धनुपधरन धन रघुवर के मैथिली महा धन ।
परमहंस कुल राम भजन भर अग्रस्वामि इक पत्नी को पन ॥

(९२)

॥ राग ललित ॥

यन्ताग्विल्ल पर बलि-बलि कियो प्यारी ।
कुन्द इंदु विद्रुम जु बिम्बमिलि मीन मृगलीन खजन छवि हारी ॥
नासिका कीर तिल पुहुप दाडिम दसन हसन विगसन कमल कहा करे सारी ।
भाल दीपत मुकुट भौंह राजाव वर भृकुटि सर चाप मनमथ सत हारी ॥
चिबुक त्रिभुवन चारु सुभग सुकपोल तर, आनंद कर विधिना सँवारी ॥
राम मुखचैन मधुबैन स्वामिनि अग्र जानकी नारि वर नृप दुलारी ।

(९३)

॥ राग खेटक ॥

देखु सखी मृगया खेलन को राम लला चले जात ।
भरत लखन रिपुसूदन संग मे सखन सोह बहु भ्रात ॥
चतुरंगिनी सेना संग लीन्हे दुंदुभि ध्वनि घहरात ॥
नखशिख सुंदर गात मनोहर लखि दुति काम लजात ॥
धनुष बान कर्म मुठि सुंदर कटिभाथा चमकात ॥
चपल तुरग नचावत हसि हसि सोभा बरनि न जात ॥
अग्र नयन सर नारिन बेधन लिये जात मन मात ॥

(९४)

रघुवर लागत है मोहि प्यारो ।
अवधपुरी सरयू तट विहरैं दसरथ प्रान पियारो ॥
क्रीट मुकुट मकराकृत कुंडल पीताम्बर पट वारो ॥
नयन विशाल माल मोतिन की सखि तुम नेक निहारो ।
अंग अंग रूप अनूप बन्यो है चित्त मे टरत न टारो ॥
माधुरि मूरति निरखो सजनी कोटि भानु उंजियारो ॥
जानकि नायक सब सुखदायक गुण गण रूप अपारो ॥
अग्रअली प्रभु की छवि निरखी जीवन प्राण हमारो ॥

(९५)

श्री राघो जी की आज सजी असवारी ।
दसरथ राजकुमार लाडिले सोभा न्यारी न्यारी ॥
सजे तुरग रंग राजन के भीर गजेन्द्रन भारी ॥
जगमग झूल जरी की सोहैं रतन जडाव अबारी ॥
धूम गरज सो भरत जी आय श्री रघुनाथ निहारी ।
होत कुलाहल लखन लाल के रिपु सूदन छवि न्यारी ॥
हरषे देव सुमन बहु बरषे जय जयकार उचारी ।
ब्रह्मादिक दरशन को आये मोहत बदन निहारी ॥
रवि ससि कोटि बदन की सोभा चन्द्रकला उजियारी ।
अग्रअली प्रभु की छवि निरखे चरन कमल बलिहारी ॥

(९६)

अब देखो राम जी ध्वजा फहरानी ।
झलकत ढाल फरकते नेजा गरद उडी असमानी ॥

लक्ष्मण वीर बालि सुत अंगद हनूमान अगवानी ।
कहत मन्दोदरि सुनु पिय रावण त्रिभुवनपति सै ठानी ॥
जा सागर को गर्भ करत है तापर सिला तराई ।
तिरिया जाति बुद्धि की ओछी उनकी करत बड़ाई ॥
भुव मण्डल से पकरि मंगैहौं ओ तपसी दोउ भाई ।
हनूमान से पायक उनके लक्ष्मण से बलि भाई ॥
बरत अग्नि म बूदि परत हैं कोट गने नहिं खाई ।
मघनाद से पुत्र हमारे कुम्भकरण बलि भाई ।
एक बार सन्मुख होइ लरिहैं युग-युग होत बड़ाई ॥
कहति मन्दोदरि सुनु पिय रावण तोहि मम एक न भाइ ।
राति को सपनो ऐसो भयो है सोने कि लंक लुटाई ॥
बन्दर एक लंक बिच आयो घर घर धूम मचाई ।
बाग उखारि समुद्र म डारे लंका आगि लगाई ॥
गरबी रावण गरब न कीजै गर्वहिं लंक लुटाई ।
जाय मिलो रघुनाथ कुंवर से लंक अचल हो जाई ॥
इक लख पूत सवा लख नाती मौत आपनी ठानी ।
अग्रस्वामि गढ लंका घेरे अजहूँ न चेत्यो मानी ॥

(६७)

जब कर राघो जी बान धरैंगे ।
संग रघुनाथ भीर बनचर के कपिदल कोपि चढैंगे ॥
स्याम घटा घन झुकि अंधियारी सूरज गगन छिपैंगे ।
पचरंग बाण राम लक्ष्मण के सागर तीर रुपैंगे ॥
जा सागर को गर्भ करत है तापर सेतु बधैंगे ।
जामवन्त हनुमान नील नल महाधुनि गर्ज करैंगे ॥
रात भयानक सपना दखी लंका कोट लुटैंगे ।
नाम विभीषण बन्धु तुम्हारे रघुपति जाय मिलैंगे ॥
मघनाद स पुत्र तुम्हारे वे नहिं धीर धरैंगे ।
कुम्भकरण बल बन्धु तुम्हारे रण म जूझ मरैंगे ॥
महिरावण से जोधा मरिहैं लंका नास करैंगे ।
सहस्र योगिनी मंगल गावैं खप्पर वारि भरैंगे ॥
दशशिर और बीस भुज तुम्हरे एकहिं बाण हरैंगे ।
जो नारद मुनि सुखद भाषी भारत राम करैंगे ॥

कहत मन्दोदरि सुनु पिय रावण रघुवर नाहिं फिरेंगे ।।
अग्र स्वामि को लै मिलो जानकि किहु विधि बिघ्न टरेंगे ।।

(९८)

हे ! यान चढ़ें रघुनन्दन आये हनुमत चवर दुरायोरी ।
जामवन्त सुग्रीव बिभीषण अरु अंगद मन भायोरी ।।
करत पुनीत देव सब हरषे दण्डक बन प्रभु आयोरी ।
देखि सिया दण्डक बन शोभा ऋषि बिचरें भय त्यागोरी ।।
चरित पुनीत किये रघुनन्दन अवध निकट हरि आयोरी ।
उतरे पुष्पक निकट सरयू के रघुपति आज्ञा पायोरी ।।
चलत तृषित अति गये सकुच मानो मरुत जलद जल लायोरी ।
व्याकुल अध अवध जेहि कारण उदित अरुण होइ आयोरी ।।
होत अवध आनन्द बधाई सखियन मंगल गायोरी ।
सुख अवलोकि कोक जिहिं लाजे रघुपति पुरी सुहायोरी ।।
चर अरु अचर हर्षवंत जहं तहं रघुपति कीरति गायोरी ।
द्विजन सहित आय नृप द्वारे अग्रदास गुण गायोरी ।।

(९९)

सीताराम अवधपुर बासी नित दरसन उठि पावें जी ।
रघुवर लक्ष्मण भरत सत्रुहन शोभा बरणि न जावे जी ।।
संग सखा सरयू तट बिहरें राम लखन दोउ भाई जी ।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन उर बनमाल सुहाई जी ।।
अवधपुरी नर नारी निहार निरखि परम सुख पाई जी ।
मातु कौसिला करत आरती अग्रदास बलिजाई जी ।।

(१००)

(आवत) रघुनाथ अनुज संग लीन्हे, खेल किय चौगाने ।
अस्व सुगज रथपागे, बन बिचित्रै वागे,
अरुण पीत सित चवर छत्र वर वाने ।। खेल० ।।
राज कुमारी अति सुकुमारी झरोखन झाकति बिविध—
मनोरथ ठानति, करत नयन मधु पाने ।। खेल० ।।
कोउ वारत तन, कोउ वारत मन, कोउ बारत धन
निरखि नयन छवि, पुष्पांजलि बरषाने ।। खेल० ।।
मंगल भाजन लै नीराजन, सब सुखसाजन प्राण
मिले जनु, जननि निरखि मन माने ।। खेल० ।।

कियो प्रवेस सदन सीता के कलपबेलि तरु रंग
सीता के, अनग केलि रस रहस अग्र गुण गावै ।। खेल० ।।

(१०१)

करि सिकार आये रघुनन्दन संग सखन सब भ्रात ।
पितु समीप मे जाय जुहारे सुत लखि अति हुलसात ।।
निज कर कमल उठाय गोद धरि चूमत लखि भय गात ।
अति दुलार से पूछत पुनि पुनि खेटक के कुसलात ।।
कहि सुनाय खेटक की बातैं सुनि सुनि पितु पुलकात ।
पितु प्रणाम करि निज बैठक मे आय गये रसरात ।।
रतन जडे चौकी पर बैठे बैठक मे सब साथ ।
श्रम सीकर मुख पर राजत जनु कमल कोष हिम पात ।।
चहु दिसि सखासौज सब लीन्हें सब सुन्दर सुठि गात ।
कोउ मुख ऊपर मधुर पवन करि निरखि-निरखि बलि जात ।।
बहु मेवा पकवान मिठाई सुरभी जल सितलात ।
भरि भरि थारन मे सजि सजि के अन्न भेजि बहुभाति ।।
भ्रात सखन युत पावन लागे हसि हसि बहु बतरात ।
एक एक सखन से बूझत प्यारे घर घर के सब बात ।।
करि भोजन अचवन को करि कै पानखात मुसुकात ।
गान वाद्य होवन लागे पुनि आनन्द कहि नहिं जात ।।
पुनि प्यारी सुमरन हो आई मिलन हिये उमडात ।
गान वाद्य को करि समाप्त पिय शीघ्र चले अकुलात ।।
अग्र स्वामिनी स मिल के हिय अति कीन्ही सितलात ।।

(१०२)

रघुनन्दन प्रभु आवैं ।
उपवन बाग शिकार खेलि के चढे तुरग नचावैं ।।
भ्राट मुकुट मकराकृत कुंडल उर मणिमाल सुहावे ।
कटि पर लट पट पीत बिराजै कर गहि बाजि उडावै ।।
चतुरंगी सेना संग सोहति पचरंगधुज फहरावै ।
बजत निसान भेरि सहनाई गदरा गगन महँ जावे ।।
बन्दीजन गंधर्व गुण गावत भावत प्रभुहिं रिझावै ।
सुरनर मुनि ब्रह्मादि देवता इन्द्र पुहुप झरि लावै ।।

अवधपुरी कि बधूटी अटा चढ़ि निरखि परम सुख पावै ।
मातु कौसिला करत आरती अग्र अली बलि जावै ॥

(१०३)

॥ राग—टोडी ॥

देखुरी नीके रघुनन्दन ।
सीता कहति सखी अपनी सो रसिक राय सिर मौर स्याम तन ॥
दृष्टि चलत नहिं इत उत सजना रुप रासि सो मोमन फन्दन ।
अग्र स्वामि मो मोह बढ़यो अति ज्यों चकोर चन्दहि अभिनन्दन ॥

(१०४)

प्रीतम मग जोहनि सिय प्यारी ।
कनक महल के खिरकी पर ह्वै सखियन युत निरखति सुकुमारी ॥
रहि न जात प्रीतम बिनु देखे गुणन सुमिरि पिय बिरह निवारी ।
छिन छिन बिरह वे उठत कुमारी विकल प्राण मनु मीन बिचारी ॥
कोइ सखि कहि पिय आवत हैं यह आतुर ह्वै तिहि ओर निहारी ।
तेहि छिन प्रीतम आय अग्रअलि भरि अंकवार मिली सिय प्यारी ॥

(१०५)

जेंवत कुंवर रसिक रघुनन्दन रस आगरि नागरि सिय प्यारी ।
छप्पन चार छऊ रस उपरस भोग सौंज सुखकारी ॥
चिंतामणि चौकिन पर कोमल दुग्ध फेन सम सारी ।
तिन ऊपर रुचि जानि युगल की रचना न्यारी न्यारी ॥
पल्लव फल (रसमय) अंकुर कन्दावलि मेवा मधुर सुधारी ।
चटनी निकर अचार मुरब्बा अमित भाँति तरकारी ॥
परसति परम किसोर नागरी जानि युगल रिझवारी ॥
सुरभिवन्त सीतल सरयू जल मंत्रित मगन झारी ।
रस भीनी बतियन रिझावति प्यावति निजकर बारी ॥
अचल बिजन कमल कर सारनि अति मृदु मंजु बयारी ।
दम्पति एक थार निज मंदिर जेंवत मोद करत मृदुभारी ॥
अग्रअली के जीवन दोऊ तृण तोरति बलिहारी ॥

(१०६)

रसिक दोउ सयन कुंज को जात ।
भोजन करि सुचि पान सुचर्चित मंद मंद मुसुकात ॥
आगे पाछे सब सहचरि राजैं सुभग मनोहर गात ।

पहुँचे सयन महल के भीतर सोभा बरनि न जात ।
अति सुगन्ध चहुँदिसि मह महकत भवर झुड मडरात ।
बैठे पलका पर दोउ प्यारे करत व्याग रस बात ।
कोइ सखि मधुरे बीन बजावत गान करत स्वरसात ।
पुनि दोउ मिलि अलसान लगे सखि परदा करि चहुँ कात ।।
पौढि गये जब दोउ पलका पर अग्र चरण सुहरात ।।

(१०७)

देहरी धसत जब जेहरी देखि मन डगि गयो उठी उरलाई ।
अति आदर सो भरि अकवारी प्राणनाथ पलका पधराई ।।
आगत स्वागत बारि बारि तन बीरि सुहाथ बनाइ खवाइ ।
बार बार आलिंगन चुम्बन मनहु रक निधि पारस पाई ।।
वचनामृत सो सीचि विविध बिधि जनक कुवरि रघुराइ लडाई ।
जालरन्ध्र या निरखि अग्र अति कामकेलि सुख बरनि न जाई ।।

(१०८)

दिवस मधि सोइ उठे सिय प्यारे ।
उथापन के समय समुझि सखि चहुँ दिसि ते जुरि सारे ।।
मधुर स्वरन गावत सुरसावत मधुर यन्त्र करधारे ।
अलसाने उठि वैठि लटपटे असभुजा दोउ धारे ।।
अग बसन सजि सेज तरे पग पाँवडि मखमल धारे ।
मुखमज्जति पटपौछि शृगारति अलक सुछवि घुघवारे ।।
असन बसन भूषन मनिवारे आरति पलग सुधार ।
न्यौछावरि तृण तारि आरती करत सुगान उचारे ।।
करि आरती प्रणाम अग्र दोउ दम्पति जैति उचार ।
उतरि पलग ते बाहर बैठे दिव्य सिंहासन प्यारे ।।

(१०९)

दिवस उठि सेज रह अलसाय ।
आरति करि पुनि उतरि पलँगन दिव्य सिंहासन आय ।।
मनिझारी अँचवाय सखी सब निज अचल अगुछाय ।
रतन कटोरन मेवा मादक निज कर प्रियन पवाय ।।
मिश्रित कन्द अधावट पय सुरभित सखिझारि पिवाय ।
अचवावति हसि हेरि कटाछन सुछबि निरखि बलि जाय ।।
अतर पान माला उर अरुझनि अग्र सुकर सुरझाय ।।

(११०)

बाग बिहार

बाग बिहार करन चले प्यारे।
श्री नृपनन्दन जनकनन्दना रूप गुणन म दोउ उजियारे ।।
सखियन करि शृगार अग-अग पुनि पिय प्यारा के शृगारे ।।
यूथ यूथ सखि चला सग मे ह्वै गज रथ ऊपर असवारे।
कोउसखि सिरपरछत्र किये हैं सभ्रचँवर कोउ लिये करधारे ।।
अपर सखी लिये बहुत सौंज कर पहुँचे जाय बाग के द्वारे।
सखियन युत गज रथते उतरे बागेश्वरि मुनि दौरि सिधारे ।।
यूथ अनेक सग सखियन लिये पूजन के सामा करधारे ।।
पट पाँवडे दै भीतर ले गई रतन वेन्दिका पै बैठारे।
धूप दीप आदिक विधि करिकै सखियन युत पूजे दोउ प्यारे।
पुनि दोउ चले बाग बिहरन कों रोसन पर दोउ फिरत खिलारे।
कहुँ दोउ पुष्प उतारि कमल कर थाक थाक धरि न्यारे न्यारे ।।
रचि रचि भूषण विविध रग के निज निज चतुराई विस्तारे।
प्यारी पहिरावति प्यारे को प्यारे प्यारी के अगधारे ।।
मोर हस सुक सारि पढावत मृगी झुण्ड रस चरित अपारे।
कुजन मधि कहुँ छूट फुहारे ग्रीषम पावस सम सुखसारे ।।
कुजेश्वरि फल ढेर दिखाई पावन प्रेम अपार।
फल रूपक हसि अग बखानत लपटी लपटि कहुँ कुजनिहारे ।।
कहुँ फूलन के गेंद उछारत कहुँ जलकलि करें मतवारे।
विविध बिहार बाग बन कुजन करि पुनि अग्र महल पग धारे ।।

(१११)

हंस महल के सुभग कुज में प्रिया प्रेम लम्पट सुकुमारे।
कबहूँ इकटक मुखछवि निरखत श्रमसीकर लखि करत बयारे ।।
कबहूँ निजकर अलक सवारत अधर चूमि अतिहोत सुखारे।
कबहूँ निजकर चरण कमल लेइ सुख निरखत तामैं हँसि प्यारे ।।
निज करतल पर राखि प्यारि पद जावक चित्रको करत बिचारे।
निजकर कमल कठोर समुझि जिय धर धर धरकत हिय मयमारे ।।
अस न होय प्यारी के पद तल दरकि जाय लगि हाथ हमारे।
चूमि चूमि निज नयन लगावत डरि डरि चित्रमहावर धारे ।।
रूप देखि निज दृष्टि लगन डर बारि बारि जल पियत दुलारे।

दृष्टिदोष अपने पर लेके बारम्बार होत बलि हारे ॥
कबहूँ पुष्पबिभूषन रचि-रचि पिय प्यारी अंग करत शृंगारे ।
प्रिया रूप में अति असक्त ह्वै हान चहत नहिं पलकहु यारे ॥
समय जानि गुरु नारिन आवन अति क्लेस युत दुरत दुवारे ।
प्रिया प्रेम परतंत्र स्वामिलखि अग्र अली तन मन धन वारे ॥

(११२)

जय जय रघुनंदन चंद रसिक राज प्यारे ।
अंग अंग छबि अनंग कोटि वारि डारे ॥
विहरत नित सरयु तीर संग सोहैं सखिन भीर,
सिया अंस भुजा मेलि अवध के दुलारे ।
कोई सखि छत्र लिये व्यजन लिये कोई,
युगल सखी चवर लिये करत प्राण वारे ॥
सुंदर सुकुमार गात पुष्पमाल सकुच जात,
परसत भयभीत होत रूप के उज्यारे ॥
नख सिख भूषण अनूप यथा योग यथा रूप,
कोटि चन्द्र कोटि भानु निरखत दुति हारे ।
मन्द मन्द मुसुकुरात प्यारी संग करत बात,
देख देखि अग्र अली तन मन धन वारे ॥

(११३)

सखिन बिच नृत्यत युगल किशोर ।
बिपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्य भूमि चमकत चहुँ ओर ॥
चक्राकार रास मण्डल रचि राग रागिणी के कलसोर ।
निमला चन्द्रकलादि रंगीली बीण मृदंग लिये करथोर ॥
चारुशिला, सुभगा हेमा लिये मुरलि मुचंग किनरी जोर ।
चन्द्रा चन्द्रवती मिलि गावति क्षेमा स्वरहि भरत रसबोर ॥
मग्न कला करताल बजावति सारंगी नंदा टकोर ।
पियसिर सुभग सुक्रीट बिराजै चन्द्रिका सीना के सिर रोर ॥
चन्द्रहार प्यारी उर चमकत पिय उर मोतिन माल उजोर ।
कोटि कोटि रति काम बिमोहन नटवर वपु श्याम अरु गोर ॥
रूप माधुरी कहि न परत हैं अंग अंग छबि के उठन हिलोर ।
कर से कर दाऊ मिलि धारे नयनन सैन चलत दुहुँ ओर ॥
कबहुँ अधर रस पियत परसपर रस मतवारे दोउ चितचोर ॥

प्यारी हात पियामन करषत पिय के भाव प्यारी निज ओर।
दोउ रससिन्धु मगन रस लम्पट अग्रअली नहिं चाहत भार॥

(११४)

प्यारी तेरे नयना मदनसर वारी।
रतनारी कारी कजरारी चन्द्र बदन पर अति छबि धारी॥
चितवनि बाकी तिरछी प्यारी ममहिय को घायल करि डारी।
मीन कमल खजनदुति हारी सब विधि प्राण अधार हमारी॥
हसनि नटनि अरु अंग मरोरनि देखि देखि म जाउ बलिहारी।
रूप उजागरि अग्र नियन मैं हौ तुम श्री मिथिलेस दुलारी॥

(११५)

प्यारे मुखचन्द विलोकहु सजनी।
क्रीट मुकुट मकराकृत कुंडल नयन कमल दल अति छवि छवनी॥
नासामणि सु अधर पर राजत मनहुँ कमल दल शुक्र उदवनी।
कल कपोल पर अलकें छूटें चन्द्र उपर मनु बसि बहु अहिनी॥
कटि कछनी काछे बने आछे पग मे नूपुर अति मन हरनी।
मुरनि दुरनि अरु हसनि नटनि मे कोटिन काम करो निबछवनी॥
रूप उजागर अग्र स्वामि मेरे मम हिय के है प्राण सुजिवनी॥

(११६)

आकरष्यो जहं तहं नर नारी।
सब सखियन मन पिय अंग धारी करो मनोरथ रुचि अनुसारी॥
सबक रुचि लखि के सिय प्रीतम धारयो बहुत रूप मनहारी।
जस जस जाहि मनोरथ रहेऊ तस तस करि सब कियो सुखारी॥
अस्थावर जंगम जो जहं लौं आनन्द मुरछा म नर नारी।
अद्भुत रास रच्यो पिय प्यारी संग सखिन लिय अग्र दुलारी॥

(११७)

रसिक दोऊ सरयू कूल चले।
रास श्रमित ह्वै संग सखिन लै दम्पति दियभुजगले॥
करन लगे जल केलि विविध विधि दोउ रसरंग रले।
प्रीतम डूबि प्रिया पद गहिके ऐंचि लेत जल तले॥
प्यारी कर कमलन ताडन करि जल पिय आखि मले।
प्रीतम के गति भूलि गये सब दोउ कर आखि मले॥
काहू के कटि बसन छोडि पिय तट पर आय चले।

यह सखि ने अति लाज श्रमित ह्वै जल से नहिं निकले।
पुनि सिय जू पिय ने पट लैके दइ सखि हाथ तले।
करि जलकेलि प्रिया प्रीतम दोउ जल ने आय गये।
करि शृंगार अग्र सखियन युत आय गये महले ॥

(११८)

श्री सरयू तट बन असोक मधि राम रच्यो श्री अवधि निहारी।
चहुँ दिसि मणिमय कोट विराजे मध्य कुंज बहु न्यारी न्यारी ॥
ताके चहुँदिसि पादप राजें श्री सम्पति युत अति रुचिकारी।
ता आगे बहु लता कुंज हैं जाति-जाति के न्यारी न्यारी ॥
ताके चहुँ दिसि कृत्रिम पादप जाति जाति मणि के छबिकारी।
ताके चहुँ दिसि मोतिन झालर मध्य मे रचना बहुत प्रकारी ॥
मध्यभूमि बहु रंग मणिन के बेली बूटी विविधि प्रकारी।
तापर जाजिम स्वेत बिछे हैं चन्द्रकिरनि के अति छबिहारी ॥
तामधि सिंहासन अतिसुन्दर स्वेत मणिनमय अति सुठिकारी।
तापर बैठे युगलबिहारी श्री नृपनन्दन जनक दुलारी ॥
गौरस्याम छवि को कवि बरणै कोटिकाम रतिदुति लखिहारी।
प्यारी के तन सुभ्र सुसारी प्यारे अंग जामा झलकारी ॥
प्यारे उर मोतिन की माला चन्द्र हार सोहत उर प्यारी।
कंठ पोत प्यारी गल राजत पिय गल गोल गोप विचित्र सवारी ॥
बाहुन में अंगद सुठि सोहैं कर मे पहुँची अति दुति कारी।
कर्णफूल प्यारी श्रुति सोभित पिय श्रुति कुण्डल मकराकारी ॥
प्यारी के शिर मणिन चन्द्रिका पिय सिर क्रीट भानुमदहारी।
विमलादिक सखि चहुँ दिसि सोहैं मध्य नटन लागे पिय प्यारी ॥
कोइ सखि बीण मृदंग काहू लिये जलतरंग तूमेरा कोइ कोइ धारी।
बहुत सखी लिये बहुत यंत्र हैं थेइ थेइ कर नाचत बहु नारी ॥
घम घम नूपुर चरनन बाजै मनुमोहनी मंत्र ध्वनि कारी।
गावति सब रागन रागिनि मे स्वर सुनि इन्द्र वधू मनहारी ॥
जब प्यारी प्रीतम मिलि नाचत तायेइ तायेइ औरन प्यारी।
स्वर्गमर्त पाताल व्यापि गयो परमानन्द बढ्यो पौनारी ॥
महारास सब दिशि में छायो आकरप्यो जड़ बहु नर नारी।
सब सखियन मन सिय अगधारी करन मनोरथ रुचि अनुसारी ॥
सब के रुचि लखि के प्रिया प्रीतम धार्यो बहुत रूप मनहारी।

जस जस जाहि मनोरथ रहेउ तस तस करि सब किये सुखारी ॥
अस्थावर जगम जो जहलों आनद मुरछा में नरनारी ।
अद्भुत रास रच्यो पिय प्यारी सग सखिन लिये अग्र दुलारी ॥

(११६)

रठो जी राम गुशाइ भले भले ।
पायो राजपाट दसरथ को गहि लीनी ठकुराई ॥
जाय कहूँ मिथिलेस ललीजु से निकस जाय गुमराई ॥
अग्रअली के सिर पर चहिये श्री सिरध्वज की बाई ॥

(१२०)

प्रभु जी हमको आज्ञा दीजे ।
यन पूर भयो पुण्य तुम्हारो नृप को दशन कीजे ॥
सुनहु आज मिथिला पुर तें इक आयो है परचारी ।
सीय स्वयबर अखिलनरेश्वर कौतुक ह्वै है भारी ॥
पगति रथ ऐहैं पुनि बहु तह ह य है बडो समाज ।
अग्र स्वामि दोउ हसत कुँवर बर सग चले ऋषि राज ॥

(१२१)

सखि मैं सपनो सुन्दर पाया ।
इन्दु बदन राजिव दल लोचन गाधि सुवन सग आयो ॥
स्याम करन तन कोटि भानु दुति सोभा सब जग छायो ।
मो भयो मिथिलापुर वासी मो मन अधिक सिरायो ॥
रघुकुल कुवर अयोध्या नायक भुजबल धनुष चढायो ।
नृप सब सभा ठगी सी ठाढी गर्वित गम नसायो ॥
पूरन भयो पिता प्रणमय सखि सब सदेह नसायो ।
अग्र स्वामि अरविंद वधु उनै मिलिहैं पनि मन भायो ।

(१२२)

मेरी मैं हूँगी अनुरागि चरण की ।
अकुश कुलिश कमल ध्वज चिह्नित, अरुण वरण अघ तिमिर हरण की ॥
जो पद परसि सरस दुरलभ गति होत भई ऋषिराज घरणि की ।
नूपुर नन्न मदन मुनि लज्जित राजत जीवन रसिक जनन की ॥
अग्र अली सोइ सुभग सरोरुह नवत कान्ति मणि माणिक बरन की ॥

(१२३)

सौमित्री कहे सुनहु श्यामघन हूँ जानत वैदेही को पन ।
राजन की यह नीनि बाम बहु दासन लिखि नहि आवै ।।
यह डर निडर जानकी रघुपति रामहि हृद बसावै ।
राजिव नैन अनुज के बैन सुनि ताको यश सब जायो ।।
यक पतनीव्रत लियो रीझि के अग्र भूमि परिपायो ।।

(१२४)

।। राग सारग ।।

जब रघुपति कर धनुष उठायो ।
पुलक्त तन रोमाच गाधिसुत पुरति प्रेम भरि आयो ।।
को वड नमित न भुग भूपति कर जानकि मन तरसायो ।
तोरयो चाप सभा म निहि गिणि संशय सबै नसायो ।।
भगन शब्द सुनि जामदग्नि मन अहकार सुवहायो ।
तोपे अमर अवनि जनु फनिपति अग्रदास मन भायो ।।

(१२५)

मगल आज जनकपुर माही ।
पाणिग्रहण सीता रघुपनि को नरनारी सब फिरत उछाही ।।
मण्डित द्वार चौहटा वीथिन दिव्य दुकूलनि धाम उद्धारें ।
अति आतुर पग लागत न अवनी कहुँ गज कहुँ रथ अश्व शृंगारें ।।
सीस सेहरो रामचन्द्र के अगवानी करि तोरन लाये ।
सम पुहुप मुक्ता ले गोखनि नवल वधू अजलि बरषाये ।।
मण्डप तर वैठाय पटा दोउ वेद विहित सत्र कम कराये ।
साखोच्चार दुहूँ कुलगुरु करि कुवरि कुँवर को हाथ गहाये ।।
उतरासन की ग्रंथि परस्पर दृढ वचननि बामें अग लीन्ही ।
आगे प्यारी पीछे प्रीतम जातवेद कल भाँवरि दीन्ही ।।
भूरि दान द तोषि सकल सुर दुलहिनि सग भीतर वैठाने ।
परदा ओट समागम पहिलो अग्रदास दासी सुख जाने ।।

(१२६)

हिम ऋतु हम गम भनि को है ।
सीमखाप मखमल गिलमन्ह पर सिय पिय परिकर सोहै ।।
लै कोउ बीण प्रवीण सहचरी राग तरग उमगो है ।
अग्र स्वामि सुखनिधि सीता पति रमि रमाय मन मोहै ।।

(१२७)

आज बसन पचमी पूजा श्रीरघुवर की बधाई ।
कनक कलस सजि भरि धरि सिर पर आम मोर जव ल्याई ॥
चोवा चन्दन और अरगजा मोतियन चौक पुराई ।
रतन जटित पिचकारी कर गहि केसरि रंग भराई ॥
तकि तकि मारत श्री रघुवर को अबिर गुलाल उड़ाई ।
श्री रघुवर सिंहासन बैठे निरखि निरखि सुखदाई ॥
छोडव छिरकव भरव परस्पर ऐसी खेल मचाई ।
नवल बसन्त नवल मोरन वन नवल नवल मन भाई ॥
अग्रदास गावहिं श्रीरघुवर फगुआ परम्पद पाई ।

(१२८)

डफ बाजी जनक दुलारी की ।
चहुँ दिसि सखी जडाउ छरी लिये पिचकारी कर अवध बिहारी की ॥
मारामार मची कुंजन में, छाइ अबिर अँधियारी की ।
यह छबि देखि मगन सुर मुनि भये अग्रअली बलिहारी की ॥

(१२९)

जानकी खेलन हारी पिय संग चली ।
अपने अपने भवन से निकली उर सोहै चम्पाकली ॥
श्रुति कीरति उर्मिला माण्डवी चारा जनक लली ।
राम लखन रिपुदवन भरत की जोरी बनि है भली ॥
सिय व्जु के छूटि गुलाल मूठि भरि राघो के पिचका चली ।
चमकि झमकि पिय के सम्मुख होइ मुख भरि रोरि मली ॥
दुहुँ दिसि ते रंग बर्षन लागे कुम्कुम छाइ गली ।
राजा दसरथ कौसल्या झरोखन दृग सुख लेत भली ॥
सीताराम विनोद फाग में बलि बलि अग्रअली ॥

(१३०)

सीताराम विनोद फाग को निरखि सखी बलिहारी ।
जग भूषण निदूषण जोडी राजत अवध बिहारी ॥
सुन्दर वर रघुवीर धीर अति शोभानिधि सुकुमारी ।
चारुशिला विमलादि अली गन मध्य सीय छबि धारी ॥
श्रुति कीरति उरमिला माण्डवी यूथ यूथ लिय प्यारी ।
अपनी अपनी टोल खडा सब रंगन साज सम्हारी ॥

प्रीतम स्याम सुजान सग लिय सखा समाज सुधारी ॥
खेलत रग उमग अग अग हार जीत चित धारी ॥
चचल चपल चहूँ दिशि सखिगन सखा स्याम दिय गारी ।
धूम मची खेलन मे सो छबि कहि वहि सारद हारी ।
अग्रअली उर बसो अहोनिसि सील सरासन धारी ॥

(१३१)

मोपै पिचकारी न धालो छयल
जो हमपर पिचकारी घालिहौ तो तुम्हैं लै मिजाउगी पहल ।
श्री जनकलली जु कि आयसु लैके आउ इतै रहौ ठाढे गयल ।
अग्र अली रघुनन्दन प्यारे लखौं मैं आज तुम्हारो फयल ॥

(१३२)

चले दोउ झूलन को हुलसान ।
पिय प्यारी के नित्य झुलन है नहि कछु काल प्रमान ॥
पाय प्रदोप काल सखियन सग गान तान झमकान ।
पहुँचे झूलन कुज सुहावन फूली विविध लतान ॥
मोरन के यूथैं बहु विचरैं नाचत पख फुनान ।
जानि जाति के पशी बोलैं भरि रह शब्द दिसान ॥
चहुन्दिसि मनिमय महल विराजैं मध्य विचित्र वितान ।
तामधि सुन्दर परयो हिंडोला मोतिन के लहरान ॥
तापर बैठे दियगल बाहीं प्यारी पिय रस दान ।
नाना यत्र लिये सखि गावति लेत सुरीलो तान ॥
दोउ दिसि ते सखि झुलवन लागी छबि लखि हिय उमडान ॥
दोउ मिलि झूलत हैं रसमात अग्र निरखि बलि जान ॥
करि झूलन रससिन्धु मगन दोउ चले ब्यारि अस्थान ॥

(१३३)

हिन्डोले झूलत सिय महरानी ।
श्रुति कीरति उर्मिला माण्डवी चारुसिला गुणखानी ।
रच्यो हिंडोरा नाम लिवावति चतुर सखी मुसुकानी ॥
सिया जू सकुचि रही नहि बोलति अग्रअली मनमानी ॥

(१३४)

झूलत सीताराम हिंडोरे ।
स्याम गौर अभिराम मनोहर रतिपति के चितचोरे ॥

नील पीत वर बसन लसत तन उठत सुगध झकोरे।
सहचरि हरषि झुलावनि गावति छबि निरखत तृण तोरे।
मन्द मन्द मुसुकात छबीलो रमकत थोरे थोरे।
अति सुकुमारि अग्र की स्वामिनि डरपि गहति पट छोर।

(१३५)

झूलत राम राजिव नैन।
जनकजा सनमुख विराजति तडित ज्यों घन गैन ॥
अतिहि झूलत मनहि फूलत रहसि तोषत मैन।
लाल के उर लागि शोभा निरखि करषन ऐन ॥
परसपर अनुराग दोऊ बढत मधुरे बैन।
जाल रघ्रनि निरखि बनिता अग्र उर सुचैन ॥

(१३६)

झूलत सिया राजिव नैन।
रतन जडित हिन्डोलना सखि राम मुख के ऐन ॥
स्याम अग पर गौर झलक्त दामिनी घन गैन।
मैथिली रघुबीर शोभा निरखि लाजत मैन ॥
नाम पिय को लेहु नागरि सब सखिन मन चैन।
जानकी नहि लेत मुख सो देति लोचन सैन ॥
परसपर झूलत झुलावत बदत मधुरे बैन।
अवधपुर नित कलि दम्पति अग्र आनन्द दैन ॥

(१३७)

हिन्डोरना मे काई झूलो राम सिया प्यारी सुकुमारी।
अगर चन्दन को बनो हिंडोरा मलयागिरि को पटा।
रेसम डोरि पवन पुरवइया वह सावन को घटा ॥
प्यारी झूलै लाल झुलावै भली बनी सजनी।
उडि उडि अचरा परत भुजनि पर डरपत शशिबदनी।
विपिन प्रमोद लता कुजन म श्री सरयु के तटा।
सिय प्यारी क झूलना वे निरखति अग्र छटा ॥

(१३८)

दसरथ सुत अरु जनकनदनी चितवनि मे चित चोरै री।
नान्हि नान्हि बुद पवन पुरवैया बरषत थोरे थोरे री।

हरि हरि भूमि घटा झुकि आई मूय लेत हिलौरे री।
उपवन बाग विहगम बोलैं दादुर मोर चकोरे री।
हयदल पयदल गजदल रथदल कोटि बने चहुँओरे री।
बाजत ताल मृदग झांझ डप सखन की धनघोरे री॥
नागरि नाम लिवावै पिय को सियजू हँसि मुख मोरे री।
अग्रदास हरि रूप निहारै चरण कमल बलिहारै री॥

(१३६)
८

चले दोउ ब्यारू कुज अली।
करि बिहार झूला क दम्पति रघुवर जनकनन्दनी॥
रतन जडित सिविका अति सुन्दर तापर लाल लली॥
चहुँ दिसि सखियन सौंज लिये हैं नाना रग रली॥
पहुँचे व्यारी कुज सुभग जहा मध्य सुरतन थली॥
करि सन्मान सखी कुजेस्वरी आनन्द भरि उछली॥
बैठाई रतनन चौकी पर पूजन करि सुभली।
नाना विजन कनकथारन मे अग्र धरी रसली॥

(१४०)

सखी सब मैन भोग लै आई।
मेवा मिश्री दूध मलाई और अनेक मिठाई॥
सुरभीयुत बिजन बहुतेरे थारन भरी सुहाई॥
पान पदारथ सुचि सुगधमय बहु औषधन मिलाई॥
पावत तुप्ट पुप्ट होइ जावै रास जनित श्रमहाई॥
चषकन में भरि धरि आगे मैं दम्पति के मन भाई॥
पावन लगे रसिक दोउ प्यारे करि-करि विजन बडाई॥
हसत हँसावत सखिन पवावति बातन मे विरमाई॥
करि भोजन अचवन पुनि करि कै पान पाइ मुसुकाई।
मैन आरती अग्र करी जब पौढे पलग सुहाई॥

(१४१)

व्यारू करत युगल रस भीने।
रचि रचि बिजन सखिया परोसै बहुत प्रकार नाम को गीने॥
हसि हसि पावत हैं पिय प्यारी रूप माधुरी सखि चित दीने।
प्यार निज कर कमल कवल लै प्यारी मुख म देत प्रवीन॥

(१४६)

सोये सेज प्रिया प्रीतम दोउ अतिसय करि निद्रा आधीन ।
मृगमद कंचुकी सिया उर तामें भँवर भयो इकलीन ।।
वास लुब्ध को शब्द श्रवण सुनि सभ्रम राम विलोकत बाम ।
रही पुष्प अवशेष हृदे में सायक सर्पनि मारि गयो काम ।।
प्रेम विकल परतीत न मानत बैदेही हित पावत खेद ।
अग्रस्वामि आधीन प्रिया के मिथ्या दुःख आयो तन स्वेद ।।

(१४७)

चलो सखि सो गये राज किशोर ।
मणिन जटित को पलंग मनोहर ताकि छवि अति जोर ।
मिलि सखियन सब चरन पलोटत रस बस पिय घनघोर ।।
चौकीवाली सजग होइ रहियो लागे न कहूँ दृग चोर ।
नूपुर दाबि चलो मोरि सजनी होय न जेहि पग सोर ।।
सुभग सेज सियराम सयन लखि ललचत है मनमोर ।
अग्रअली दम्पति दरसन हित आवहिंगी बहि भोर ।।

(१४८)

महल बिच सोर करै जनि कोइ ।
कछुक रहस बस कछु आलस बस अजहिं मैथिली सोइ ।।
नूपुर दाबि चलो मोरि सजनी तनक भनक नहिं होइ ।।
पहरेदार सजग होइ रहियो आवागमन न होइ ।
अग्रअली के जीवन धन दोउ जगे न पलको सोइ ।।

(१४९)

चली सब युग छवि हिय में धरी ।
सोय गये सखि पिय प्यारी अरु आनन्द रस में भरी ।।
लाल लली गुण कहत परस्पर आनन्द सिन्धु परी ।।
निज निज कुंज के ओर गईं सखि यूथेश्वरि सबरी ।।
गवर्स मिलि सग चारुशिलायल अग्र गईं स्वघरी ।।

(१५०)

आज राम जानकी कृपालु सुंदर सोहैं ।
निरखत सुर नर वर मुनि सिव विरंचि मोहैं ।।
राम जी के सीस मौर रत्न जटित धारो ।
सिया जी के सीस फूल कोटि चन्द्र वारो ।।

रामजी के पीताम्बर धनुषबाण राजे ।
सिया जी के कर कमल मुद्रिका बिराजे ।
रामजी के कुण्डल की काम कोटि शामा ।
सियाजी के कणफूल राम को मन लोभा ।।
रामजी के उर सोहैं मोतियन की माला ।
चारु हार रुचिर पहिरि जनक कुवरि बाला ।।
रामजिक कटि किंकिणि झुनुक झुनुक बाजे ।
सियाजी के छुद्र घटि मदन मत्र लाजे ।।
रामजि घनस्याम वण छवि के अभिरामा ।
सिया गौर कनक वण लाजत सत कामा ।।
सियाजी कि नखशिख छवि कहत नही आवै ।
कोटि शेष सारद श्रुति पारहू न पावै ।।
यही घ्यान हिय मे रहत टरत नहिं टारयो ।
अग्र युगल चरण ऊपर बारि फरि डारयो ।।

(१५१)

देखो माई नवल कुवर दशरथ को ।।
मणिमय जटित क्रीट अति सुन्दर गोरोचन को टीका ।
अम्बुज नयन नासिका सुन्दर कुण्डल झलकत नीको ।।
मणिमय जडित हार अति सुन्दर हीरा माणिक नीका ।
कलित ललित जरकसि को जामा आभूषण पुष्पन को ।
उर सोहै मोतियन की माला भृगु लच्छन छबि नीका ।।
कर ककन बाजूबध सोहै धनुष बिराजत नीको ।।
कटि तूणीर बाण बर राजे कमल फिरावत नीका ।।
अग्रदास प्रभु दसरथ नन्दन मोहत मन सबही को

(१५२)

।। राग जैति श्री ।।

यह मोहि दीजै राघव राम ।
दासनदास दास को अनुचर कथा श्रवण मुखनाम ।।
मोक्ष आदि है चार पदारथ मरो नाहिन काम ।
चरण रेणु साधुन की सिर पर कृपा करा सुख धाम ।।
सन्तनसो अनुराग निरन्तर इहि बिधि बीतो याम ।
अग्रदास चाहत हरि चरचा सुधासिन्धु विश्राम ।।

(१५३)

॥ राग बिलावल ॥

सरयू सरिता राज सबन ते पुरी सिरोमणि रामपुरी ।
वेन्न हू बहु भदन गाईं महिमा जाकी अघट घरी ॥
सिव विरचि सनकादिक नारद जपत व्यास जेहि घरी घरी ॥
नाम उचार होत अघ ग्यारे जीवन दुरमति दूर टरी ॥
जो कोउ बसत अयाध्या माही समसर ताहि न जात करी ।
सूकर कूकर सबै विष्णु पद आवत जात न अटक धरी ॥
जन्म भूमि राघो की प्यारी भुक्ति-मुक्ति जह गरी गरी ।
अग्र अहै को जो नहि बाछत बसत जहाँ सर्वदा हरी ॥

(१५४)

बसो मेरे नयनन मे सियाराम ।
कल्पवेलि श्री जनकनन्दनी रघुनन्दन धनस्याम ॥
राजत रतन जड़ित सिंहासन जुगल जोडि अभिराम ।
अग्रअली निरखत यह सोभा वारत कोटिन काम ॥

(१५५)

॥ आसावरी ॥

आजु बधावा दशरथ राय के जायो राजिव नैन ।
आय सुख के ऐन ॥
चैतमास नौमी उजियारी यह सयोग अनूप ।
लगन महूरत बार ग्रह चरन विह्न बड भूप ॥
बसिष्ठ आदि तपोधन धारी कीन्हो यह निरधार ।
दुष्टनि दलन सुखद सन्तन का भूमि उतारण भार ॥
घर घर तोरण धुजा पताका मुक्ता वन्दनबार ।
दूध पूत भरि नारि सुहागिनि साथिये लिखती द्वार ॥
चन्दन चौक रचित आँगन म दधि अरु दूब बधावे ।
कनक थार सीवज, भरि अछत मिलि सग मगल गावे ॥
भू देवन कहँ भूमि बाजि गज धेनु रतन रथ देहि ।
पाइ लाग समदान नरेश्वर मुन्ति आसिषा लेहि ॥
पणव निशान मृदग सख धुनि जै जै शब्द उचार ।
कौतूहल कोसलपुर बासी आनन्द बढ्या अपार ॥

मागध सुत भाट बंदीजन दान मान बड पावै ।
वर्णाश्रम अन्त्यज जे तन धरि फूले अंग न मावै ।।
नृत्य गान वा जन्त्र वेद धुनि ठौर ठौर यह भनिय ।
लेहु-लेहु यह कहत नगर म और श्रवन नहिं सुनिये ।
सुरतरु काम धेनु चिंतामणि कौसल्या सुत जायो ।
अग्रदास रघुपति के आनन्द मैं वांछित फल पाया ।।

(१५६)

।। राग आसावरी ।।

देखि द्वारा भूप दसरथ क सोभा कहत न आवैरी ।।
मूरतिवत मुक्ति सिधि ठाढी भीतर जात लजावैरी ।।
मनियन अजिर अनूप देखि छबि छाक लेउँ सुत छावैरी ।।
कोटि काम ससि कोटि भानु दुति अमित तेज तन धारैरी ।
घुंघरवारे केस बदन पर चचल अधिक सुहावैरी ।।
मनहु कलपतरु तेज तनक अलि मधुर सुधामद मातेरी ।
उज्जवल भाल सुचक्षण ऊपर श्याम सुभग तन सोहैरी ।।
बरणो कहा विसाल नैन अति ता उपमा कहू नाही री ।
इंदु बदन पर उडुप रहैं दोउ लोल मीन की नाईरी ।।
बगना कठ बिराजत मानहु ऊपर सुभग निकाईरी ।
दुतिया चंद अनद जानि के घन मे दत दिखाईरी ।।
अरुण पीत सित हरित कु धनुई स्याम सुभग कटि सोहरी ।
जलद घटा पर मनहुँ प्रगट भये इन्द्र धनुष मन मोहेरी ।।
कौसल्या की वृख कलप तरु रामचन्द्र फल लागेरी ।
पुण्य प्रभावते अगम अगोचर कौन सुकृत यह जागेरी ।।
सकर शेष विरंचि सारदा जिन्हि स्वरूप नहिं जानरी ।
ताके गुण अलि अग्रदास कछु मति अनुमान बखानरी ।।

(१५७)

।। आसावरी ।।

प्रगट भय दशरथ क रघुवर, महामहोत्सव मगल घर घर ।।
दखो आजु अवधपुर साभा, नरनारी आनद उरगोभा ।
सुनत सवै आतुर होइ धावै, हरित दूब दधि नृपति वधावैं ।

मोतियन चौक बधाओ गावैं नव तरुनी साथिया बनावैं।
ध्वजा पताका मंडित घर-घर, दिव्य दुकूल सुगन्ध सिंचिघर ॥
घर अम्बर बाजें बहु बाजें, मनहु महोदधि लहरी गाज।
विप्र वेद धुनि व्योमनि परसत, सुर सघट कुसुम्हनि अनि वपत।
भीर भूप घर अनिसै राजे, कोउ लेवै कोउ दवै काजे।
भूमि वाजि गज विप्रन पाये, धेनु रतन अन बसन अघाये।
याचक जन ता क्षण जो आय, दान मान वांछित फल पाये ॥
कहत सबैं घन वचन हमारे, चिरजीवो य पुत्र तुम्हारे।
अग्र बधाई यह नित पावै, ज म कर्म लीला गुन गावै।

(१५८)

॥ राग टोडी ॥

राम ज म आनद बधाई।
सुरतरूसुधाधेनुचि तामणि मिलत परस्पर दूब बधाई।
प्रफुलित हृ य नगर बासिन के बाल वृद्ध सब गात सुहाई ॥
भई भीर नाचे नर नारी बाजे बहुत गन नहि जाई।
मगल कलस चौक मोतियन के द्वारन वन्नवार बधाई ॥
सिसु को वदन निहारि नारि सब वारति भूषण लन वलाई।
रतन गभ कौशल्या रानी धय भाग की करत बडाई।
दशरथ राय हाय भये ठाढे कनक बसन अन्न धेनु मगाई।
परम पुनीत विप्र पद वदित दान मान जनु घन वपाई ॥
मागध सूत भाट बंदी जन अष्टसिधि नवनिध पाई।
दशरथ सुत नित प्रतिहौं देखा अग्रदास है यहै जिय भाई ॥

(१५६)

॥ ढाढी पद, राग परज ॥

तिहारा ढाढी आयो हो रघुवशी यजमान ॥
ज म ज म ढाढी या घर का मान सहित द दान ॥
रवि अनरण्य इक्ष्वाकु अज रघु धुधुमार युवनाश।
काकुथ सगर दिलीप भगीरथ गगा अवनि प्रकाश ॥
हरिवीरतिसम यश विशद अति मामति जाय न जान
इशा सुत शारदा शेष सुर बेद पुरान बखान ॥
सुत जायो सुनि पर्गातरथ के मोमन रगरली।
उरजो॥ अज भूप द्वार का धारी सुकृत फली ॥

लछि मन भरत सत्रुहन सुन्दर नाम सकल गुन सार।
धीर गभीर अभेकरि मति सो अतिही शील उदार ॥
मैं पाई रतति सुख ग्रन्थनि सुनहु नृपति दै कान।
जन्म न देख्यो रामचन्द्र को भूत भविष वर्तमान ॥
वंश उधार कमठ करुणा कर धरणी धर नय नैन।
हरष फरषधर, असुर विमोहन त्रिग वचन सुनि जैन ॥
ऋषि मष सन्त धम रखवारी कौसल्या सुत करिहैं।
दुष्ट दमन करि बाँधि वारि निधि विपति देव सब हरिहैं ॥
भू कन रेणु वृन्द वर्षा की उडुगण है निरधार।
गर्वित वचन सुनत ढाढी को रघुपति गुणनि अपार ॥
धम सार श्रुतिसार सिरोमनि कान्ति अधिक तन तेज।
चरण चिह्न सरवेस्वर के सब निधि मनु रच्यो बँधेज ॥
ढाढी अग्रदास दसरथ गृह याचत बारम्बार।
साधु संगति कीरति तव सुत की रचो रहो दरबार ॥

(१६०)

॥ राग टोडी मूर फागता ॥

आज दसा दसरथ नृप की अति रानी रतन खानि कुषि खूली।
सुनत सुधा वरष्यो त्रिभुवन मे मत कमल श्रेणी हृद फूली ॥
लछिमन भरत सत्रुहन सुन्दर प्रगटे राम सजीवन मूली।
सिव विरंचि सुर सेष वीषधर गुण गण गान शारदा भूली ॥
अष्ट सिद्ध नव निद्ध मुक्ति चतुर्धा अवध के द्वार द्वार अनुकूली।
अग्रदास रघुनाथ जनमते मगल अवर नही कोइ तूली ॥

(१६१)

॥ राग गौरी ॥

नृप दशरथ के पुत्र भये सुर पुर म बजत बधाई री।
घर घर मगल चार अवधपुर बन्दन वार बधाइ री ॥
चतुर सखी मिलि माथियाँ दीन्ह बिधि सो भीख भराई री।
चन्दन चौक रचित आगन म रतन जडित अगनाई री ॥
कृत कौतुक कौसलपुर बासी याचक अभर भराये री ॥
अवधपुरी आनन्द भयो भर बाँटत बहुत बधाई री।
अग्रदास रघुवर के जनमत मन बाँछित फल पाइ री ॥

(१६२)

॥ राग आसावरी ॥

फूले फिरत अयोध्या बासी ।
सुन्दर सुत जायो कौसिल्या रामचन्द्र सुख रासी ।
घर घर बन्दन माल साथिया मोतिन चौक पुराये ।
नाचत गावत देत बधाई मनु घर घर सुत जाये ॥
गली गली गज बाजि जहा तह हलका दिये तबेले ।
दीन बहुत याचक जन थोरे कापै जात सकेले ॥
दसरथ भूप भंडार मुकर किये बदी अमर भरे ।
सकट सालि ताही सा हमला ढोय ढेर घरे ॥
सत कमल सुख देन काज रबि राघव उदै कर्‌यो ।
मुदित देव दुन्दुभी बजावत निश्चर तिमिर हर्‌यो ।
देत असीस नगर नारी नर चिरजीवो रघुवीर ।
अग्रदास आनन्द अखिलपुर मिटी ताप तन पीर ॥

(१६३)

लाल इन बोलन के बलि जैहों ॥
छोटे छोटे चरण धरत अति सुन्दर ठुमकि ठुमकि हलरैहो ॥
कटि किंकिनि पग नूपुर बाजै मधुरे शब्द सुनैहों ।
सब बालक रघुवर छवि निरखत प्रेम प्राजि लपटैहों ॥
घुँघर वारे अलक बदन पर मन्द हसन सुख पैहों ।
जाको ध्यान धरत ब्रह्मादिक सारद गान करैहों ॥
गादराखि पय पान करावत दसरथ लत बुलेहो ।
यह छवि दखि मगन सुर मुनि भय रबि ससि कोट लजैहौं ।
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक निगम नति जस गहौं ।
अग्रदास भजु दसरथ नन्दन दिन प्रति दिन अधिकैहों ॥

(१६४)

अखिल लाक श्री उदय भई हैं जनक रामपुर आई ।
निरुपम कन्या निमि कुल के सीता एक्षी नाई ॥
बरनत बिदुष पार नहि पावत थाँहो रही लजाई ।
जाके चरन कमल भव नौका नाहिन आन उपाई ॥
निगम गार माभान सुजस जेहि बहुत तपाधन आइ ।
बह्म रुद्र अजहूँ पद आश्रित अग्रदास बलि जाई ॥

(१६५)

ठुमुक ठुमुक चलत चाल जनक न न्दी ।
मधुर बचन तोतरे भयताप मोचनी ॥
सोहत नव नील वसन मन्द हास रुचिर दसन,
झलकत उर माल सकल देव वदनी ।
बाजत पग नूपुर मनो साम वेद करत गान,
क्षुद्र घटि रुचिर नाद उर अनन्दनी ॥
जगत मात सखिन सग विहरत बहु करत रग,
अग्र अली निरखत छवि भवनिकन्दिनी ॥

(१६६)

॥ ख्याल ॥

दशरथ सत देखि देखि जनक सुता मोही ।
धनुष बान कोइ चढावे मेरो पति सोही ।
सीता जू कहे पिताजी सो धनुष प्रनत जो ।
ऐसो वर राम माज तिलक को सजो ॥
सीता जू के बचन सुनत सबही मुख मोरयो ।
तबही तत्काल राम कठिन धनुष तोरयो ॥
घर घर आनन्द होन अचरज यह कियो बाल ।
तबही सीय पाय लाग डारी है गरे जयमाल ॥
जय जय जयकार होत बाजै बहु बाजा ।
'अग्र' के स्वामी जीति आय अयोध्या के राजा ॥

(१६७)

॥ कीतन ॥

प्रात समय जागी अनुरागी सोवत उठी री स्याम जू की सगिया ।
बार सँवारनि उठी री दक्षिण कर बाम भुजा व कुटी भरि अगिया ॥
भाल मे सुहाग भारी कचुकी की छवि न्यारी ।
पहरे कसूँभी झारी सोहा रगवगिया ।
'अग्र स्वामीजी लडाई बहुत की ही बडाई
फूली फूली फिरै सब रैन रग रगिया ॥

(१६८)

॥ होली गान ॥

होली के खलार भावत तोहि जान न देहौ ।
रग भीने बागे बनि आए जाग भाग्य हमारे नयन म भरि राखूँ फगुवा लहौ ॥

चोवा चन्न और अरगजा केसर कलस नहैहौं ।
'अग्र स्वामि सो कहन स्वामिनी मिलि तन ताप नसैहौं ॥

(१६६)

बहानी बाला कौन विरद की लाज ।
जे तुम सहो कसोरी हित की निरणो निकसे आज ॥ टेर ॥
मैं अति दुखित दीन गुरु द्विजवर असरन सरन तुम्हारो ।
तुमसे एक भक्ति को नातो थोरो घणो विचारो ॥१॥
साची कहूँ सुणो दुरबासा मोरी सुरत सुतत्र नाही ।
मोंहि भक्ता ऐसे बस कीनो कीर पीजरा माही ॥२॥
मख के हित की खबर पडी जब भागो मन को भोर ।
अग्रदास साचा हरिजन की सार भज्या कछु है ओर ॥३॥

अकबर की रामनिष्ठा

राजपूताने मे रसिकसापको की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा और अवध में तुलसी साहित्य के व्यापक प्रचार का प्रभाव उन्नरमना अकबर पर भी पड़ा। उसके द्वारा प्रचारित 'रामसीय' भाँति की स्वर्ण एवं रजत मुद्राओ से यह स्पष्ट हो जाता है। अब तक इस भाँति के तीन सिक्को का पता चला है—दो सोने की अधमोहरे और एक चाँदी की अठन्नी। इनमे एक सोने की अधमोहर, कैबिनेट डे फ्रास मे है दूसरी ब्रिटिश म्युजियम मे और तीसरी चाँदी की अठन्नी भारत कलाभवन, काशी म सग्रहीत है। यह (तीसरी मुद्रा) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल को लखनऊ के किसी व्यापारी से प्राप्त हुई थी। दोनो साँचो मे एक ओर राम सीता की आकृति अकित है और दूसरी ओर उनका प्रचलन काल दिया हुआ है जिससे पता चलता है कि उपर्युक्त दोनो भाँति की मुद्रायें भिन्न काल मे और दो भिन्न साँचो मे ढाली गयी थी—

राय आनन्दकृष्णजी के लेख के आधार पर नीचे इनका विवरण दिया जाता है—

(१) सोने की दो अधमुहरें (*ब्रिटिश म्यूजियम और कैब्रिनेट डे फ्रास*) इनमे राम प्राचीन वेश मे उत्तरीय तथा धोती धारण किये हुए और सीता लहँगा, ओढ़नी और चोली पहने, अवगुठन को सम्हालती हुई दिखाई गई हैं।

इसका प्रचलनकाल ५० इलाही, फरवरदीन उत्कीर्ण है। ब्रिटिश म्यूजियम मे सुरक्षित अधमोहर मे चित ओर 'रामसीय' नागरी अभिलेख मिट गया है किंतु 'कैबिनेट डे फ्रास' की अधमुहर म यह ज्यो का त्यो बना हुआ है।

(२) चादी की अठन्नी (भारत कलाभवन काशी)।

इसमे सीताराम अकबरकालीन वेश म दिखाये गये हैं। राम सिर पर तीन कगूरे वाला मुकुट, (जैसा अकबर के समय के ब्राह्मण देवताओ के चित्रो मे प्राप्त होता है) घुटने तक जामा दुपट्टा, जिसके दोनो छोर इधर-उधर लटक रहे हैं बाये हाथ मे धनुष की कमानी की मध्य, जिसकी प्रत्यचा भीतर की ओर है, पीठ पर तूणीर और दाहिने हाथ मे धनुष पर चढा हुआ बाण धारण किये हैं।

उनकी अनुगामिनी सीता चुस्त चोली, लहँगा, ओढ़नी और हाथो मे चूड़ियाँ पहने हैं। उनका बायाँ हाथ सामने उठा हुआ है और दाहिना पीछे लटकता है। उनके दोनो हाथो मे फूल का गुच्छा है। रामसीता के ऊपर बीच मे नागरी अक्षरो म 'राममीय' अंकित है इसके पट की ओर ५० इलाही अमरदाद लिखा हुआ है।

इसस यह विदित होता है, कि ये दोनो मुद्रायें, अकबर की मृत्यु के पहले एक वर्ष क भीतर, उनके द्वारा प्रचलित इलाही सम्वत् के ५० वें वर्ष क दो भिन्न महीनों म प्रचलित की गई थी।

अब यह प्रश्न उठता है कि 'राममीय' भाँति की ये दो भिन्न भिन्न प्रकार की मुद्रायें उनके जीवन की किस स्थिति की परिचायक हैं। मोटे तौर से सीताराम का दांपत्य जीवन तीन भागो म विभक्त किया जा सकता है—विवाह के पश्चात् और वनगमन के पूर्व अयोध्या म व्यतीत होने वाला उनका गाहस्थ्य जीवन चौदहवर्षीय वनवास मे सीताहरण मे पूर्व का जीवन और लकाविजय के पश्चात् उनके पुनर्मिलन के समय से लेकर सीता के द्वितीय वनवास के पहले तक उनका अयोध्या का राजैश्वर्यपूर्ण जीवन। इन तीनो के अतगत ही किसी अवस्था में उनकी स्थिति का अकन उपयुक्त दोनो प्रकार की मुद्राओ म हुआ है। यह स्पष्ट ही है कि इन तीनो मे प्रथम तथा तृतीय स्थिति का क्रीडाभूमि अयोध्या रही है और मध्यवर्ती अवस्था 'वनलीला' की है।

सोने की मुहरो मे दपति की जिस मुद्रा का चित्रण हुआ है वह उनके गाहस्थ्य जीवन क अधिक मेल म है। पति के पीछे चलती हुई सीता का दाहिना हाथ कमर पर रखना और बायें हाथ स घूघट सभालना, उनके दापत्य जीवन के आरंभिक काल की मुद्रा प्रतीत होती है। लज्जा का जो भाव इससे व्यक्त होता है, उसकी व्याप्ति इसी अवस्था मे अधिक सगत जान पडती है। यह भी असभव नहीं कि यह उनके चित्रकूट के वन विहार की किसी स्थिति का द्योतक हो। अत इस प्रथम तथा द्वितीय अवस्था के अतगत मानना उचित होगा।

भारत कलाभवन काशी की अठन्नी मे अंकित सीताराम की मुद्रा के विषय म मेरा यह विचार है कि इसमे उनके चित्रकूट अथवा पचवटीवास के समय किये आखेट एव वन विहार का दृश्य अंकित है। यह स्मरणीय है कि पचवटीवास के समय यह उस स्थिति का द्योतक नहीं माना जा सकता, जब सीता ने राम को सुवर्णमृग दिखाया था और उनकी प्रेरणा से वे उसके आखेट म प्रवृत्त हुए थे। यदि उस स्थिति स इसका सम्बन्ध होता तो सीता मृग को इगित करती हुई दिखाई जातीं किंतु प्रस्तुत चित्र मे ऐसा कुछ लक्षित नहीं होता। सीता का, नि सकोच भाव से दोनो हाथो म फूल के गुच्छे लिये हुए पति का अनुगमन करना

वन विहार का द्योतक हो सकता है। मेरा अनुमान है कि इस सीता का क्षेत्र माने जाने की सभावना पंचवटी से चित्रकूट की अधिक है। कारण यह है कि राम-भक्ति साहित्य मे 'अहेरी' राम की मुख्य क्रीडा-भूमि तथा सीताराम की विहार स्थली के रूप म इसी स्थल की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। रसिकसाहित्य म चित्रकूट-वासी राम तापस नही, राजैश्वर्यपूर्ण और नित्यरासलीलारत चित्रित किये गये हैं। तुलसी ने भी रामचरितमानस गीतावली और विनयपत्रिका मे चित्रकूट का स्मरण दम्पति की विहार भूमि के रूप म किया है।

उनके परवर्ती रामरसिकों ने भी उस इसी रूप म देखा है।

इस प्रकार दोना भाँति की मुद्राओं म सीताराम की शृगारी भावना प्रकट होती है। उनपर अकबर को इन माधुर्यव्यजक दृश्यों के सिक्कों पर उत्कीर्ण करने की प्रेरणा राममक्ति मे बढ़ती हुई रसिकभावना से प्राप्त हुई हो तो कोई आश्चर्य नही।

राय आनन्दकृष्ण जी ने इन सिक्कों के प्रचलित करने का कारण, जीवन के अंतिम दिनों म उद्बुद्ध, अकबर की रामभक्ति बताया है। इनका प्रचलन उसने जिस किसी भाव से भी प्रेरित होकर कराया हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि उसकी 'रामसीय' मे निष्ठा थी और उनके 'स्वरूप प्रचार' मे वह प्रजा और राजा दोना का हित देखता था। शताब्दियों पहले से भारतीय शासको द्वारा शिलालेखो और मूर्तियो में प्रतिष्ठित विष्णु और कृष्ण को छोडकर यवनशासक अकबर का 'रामसीय' के नाम पर सिक्का चलाना इस देश के इतिहास म एक अभूतपूर्व घटना थी। जहाँ तक इन पक्तियों के लेखक को ज्ञात है किसी हिन्दू सम्राट ने भी शासन कार्यों मे सीताराम को इतना महत्त्व नहीं दिया था। इससे तत्कालीन समाज पर रामभक्ति के बढ़ते हुए प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है।

तुलसीदास का गुरुधाम

गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी एव साहित्य के अध्येताओ के लिये इधर कुछ वर्षों म तुलसी के गुरुद्वारा 'सूकरखेत' की स्थिति एक पहेली बन गई है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल उस अयोध्या के निकट गोडा जिले मे स्थित मानते हैं तो विद्वानो का एक विशिष्ट दल उसे एटा जिले के सोरो से अभिन्न बताता है। इस दूसरे मत के समर्थकों ने गुरु-आश्रम के साथ सोरो को तुलसी की जन्मभूमि और उसी के आस पास उनकी ससुराल भी सिद्ध करने के लिये प्रचुर प्रमाण एकत्रित किये हैं। किन्तु जितने सुव्यवस्थित ढग से और जैसी योजनाबद्ध पद्धति से यह सोरो-सामग्री प्रकाश म लाई जा रही है उसी अनुपात से पारखियो की दृष्टि मे उसकी साधुता उत्तरोत्तर सन्दिग्ध होती जा रही है।

शुक्लजी ने किन प्रमाणो के आधार पर तुलसी के 'सूकरखेत' को गोडा ज़िले मे स्थित माना था 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे इसकी विस्तृत विवेचना नहीं की गई है। फिर भी इस सम्बन्ध मे वहाँ जो कुछ मिलता है उससे विदित होता है कि ऐसी धारणा बनाने में अपनी जन्मभूमि बस्ती के निकटवर्ती इस स्थान म उनका व्यक्तिगत परिचय ही विशेष प्रेरक रहा है। यह दूसरी बात है कि उसकी पुष्टि के लिये उन्होंने तुलसी की भाषा-शैली तथा अन्य साहित्यिक विशेषताओ की भी छानबीन की है जो अवध के उस भू-भाग म विरचित काव्यग्रथो में सामान्यतया पाई जाती हैं।

तुलसी के जीवनी साहित्य का अनुशीलन करते हुए इन पक्तियो के लेखक को अनेक ऐसे तथ्य उपलब्ध हुए हैं जिनसे इस विवादग्रस्त प्रश्न के समाधान म सहायता मिल सकती है। अध्ययन की सुविधा के लिये काल-क्रम से इनका विवेचन नीचे किया जाता है।[1]

इनम प्रथम हैं 'दासानुदास' द्वारा विरचित 'तुलसी चरित' अथवा 'गोसाइ

---

१ दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित 'तुलसी विचार परिषद्' मे ३१ मई १९६० को पढ़े गये निबन्ध का परिवर्द्धित रूप।

चरित' की 'सूकरखेत' विषयक सामग्री। भाषा-काव्य-संग्रह के रचयिता पं० महेशदत्त शुक्ल ने उक्त 'दासायदास' की अभिन्नता परम्परा से प्रसिद्ध तुलसी के जीवनी-लेखक बाबा वेणीमाधवदास से स्थापित की है।[1] संयोगवश 'भाषा-काव्य संग्रह' तथा 'शिवसिंह सरोज' में गोसाइं चरित से जो पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं वे 'गोसाइं चरित' की इस नवोपलब्ध प्रति में ज्यों की त्यों मिल जाती

1 यह शब्द 'दासानुदास' का अपभ्रंश है जिसका अर्थ होता है 'दासों का दास'। भक्त लोग विनम्रता प्रकट करने के लिए परम्परा से अपने को इस श्रेणी में रखते आए हैं। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन रामभक्ति साहित्य में आचार्य अग्रदास के निम्नांकित पद में इसका प्रयोग उक्त अर्थ में ही हुआ है—

यह मोंहि दीज राघव राम।
दासनिदास दास के अनुचर कथा श्रवन सुष नाम।
चरनरेनु साधुन के सिर पर कृपा करो सुषधाम।।
संतन को अनुराग निरंतर येहि बिधि बीते जाम।
'अग्रदास' चाहत हरि चरचा सुधा सिन्धु विश्राम।।
—अग्रदास की अप्रकाशित 'पदावली' से।

'भाषा काव्य संग्रह' में महेशदत्त शुक्ल ने वेणीमाधवदास का परिचय देते हुए 'दास वा दासनिदास' का उल्लेख उपनाम के रूप में किया है। इससे यह विदित होता है कि उन्होंने गोसाईं चरित की जो प्रति देखी थी उसमें उक्त तीनों नाम दिए हुए थे। शिवसिंह को भी इस ग्रन्थ का जो हस्तलेख मिला था उसमें रचयिता के रूप में वेणीमाधवदास का नाम अंकित था। उसके छंदों में 'दास' छाप देखकर सेंगर जी ने स्वयं उनका परिचय 'सरोज' में 'दास कवि' के नाम से दिया। किन्तु प्रस्तुत हस्तलेख के लिपिकार मोहन शुक्ल को उक्त ग्रन्थ की जो प्रति मिली थी उससे वेणीमाधवदास का नाम निकल गया था केवल उनका उपनाम 'दासानिदास' रह गया था। इसका कारण सम्भवतः भवानीदास द्वारा मूल प्रति में किया गया परिवर्द्धन एवं परिष्कार था। किन्तु इन तीनों प्रतियों में गोसाइं चरित के 'सूतक प्रसंग' से जो पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं उनका पाठ साम्य यह सिद्ध करता है कि रचयिता के नाम में साधारण भ्रांति होते हुए भी उन सब का मूल स्रोत वेणीमाधवदास द्वारा विरचित परम्परया प्रसिद्ध गोसाइं चरित ही था।

हैं। यह तथ्य प्राचीन 'गोसाइं चरित' से इसकी निस्सन्देह एकता सिद्ध करता है। उक्त प्रति मुझे सीतापुर जिले में दिकौलिया के तालुकेदार, ठा० महेश्वरबख्श सिंह से प्राप्त हुई है। प्रतिलिपिकार हैं गोधनी गाँव के निवासी मोहन शुक्ल। वैशाख शुक्ल ७, सं० १९२९ को एक प्राचीन पोथी से किसी राजा के आदेश से उन्होंने इसकी प्रतिलिपि की थी।[1]

इस ग्रंथ में तुलसी की अयोध्या से नीमपार (नैमिषारण्य) यात्रा का वर्णन करते हुए लिखा गया है—

अवधधाम यहुकाल करि लाहु जन्म को लीन।
सहसमाज निज गवन तब नीमपार को कीन॥
प्रथम बास रोहाई लपि अनादि थल कीन्हों।
श्री रविकुल अबरीक नृपति सुकृती जिय चीन्हों॥
दुतिय बास अघ नास किय पावन सूकरखेत।
द्वै योजन जो अवध ते 'दास' दरस सुप हेत॥
जहं थो गुरु नरसिंघ सन सुनी कथा लहि ज्ञान।
सो अनादि तीरथ विदित श्री गुरुदेव अस्थान॥

यहाँ 'सूकरखेत' को गोस्वामी जी के गुरु 'नरसिंह' अथवा 'नरहरि' का निवासस्थान घोषित करने के साथ ही गुरु-मुख से उनके रामकथा सुनने का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है, जिसके सम्बन्ध में स्वयं तुलसी की उक्ति है—

सो मैं निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

इस स्थान को 'सूकरखेत' की संज्ञा किस प्रकार प्राप्त हुई, ग्रंथकार ने इसका विवरण देते हुए लिखा है—

श्री नारायण जगतपति, जगहित जगत उधार।
धार्यो वपु वाराह जब, आदि पुरुष अवतार॥

---

१ पढ़नहार सज्जन सुमति, कथा राममनि गोइ।
प्रति पावा सो मैं लिखा, दोस न दीजो कोइ॥
आग्या मानि नरेस की, सकल चरित लिखि सोइ।
तुलसी चरित कथा सुभ, जो सुनिहै मन धोइ॥
सुक्रवार तिथि सप्तमी सुक्ल पक्ष बैसाष।
संवत उनइस से उनतिस को धाता संवत भाष॥

—गोसाइं चरित, पत्र ३२४।

स‍ घुरघुरा त भयो, घाघर सरित प्रवाह।
दध जच्छ गधर्व सब, अस्ति प्रबोधत ताहि॥
भई विमानन भीर तब, सत जोजन के घेर।
तब अज्ञा भइ सवन कह, करो पुण्यफल हेर॥
चली विमानन भीर तब, श्री वाराह समेत।
सरजू सगम घुघरा, तह बनो सूकरखेत॥
त्रययोजन है अवध ते, पसका सो परमान।
बास कछुक दिन करि तहाँ, चरचा वद पुरान॥[1]

अयोध्या से नीमषार की इस यात्रा मे शूकरखेत के पश्चात् सियाबार, लखनपुर (लखनऊ), बनहट, मलीहाबाद, कोटरा, वाल्मीकि आश्रम (बिठूर), सन्दीला आदि स्थानों म तुलसी के ठहरने का वृत्तान्त दिया गया है। ये सभी स्थान किसी न किसी रामभक्त अथवा रामकथा से सम्बद्ध पात्र के निवास-स्थल बताए गये हैं और वहाँ तुलसी के आगमन के अवसर पर कुछ विशेष चमत्कारी घटनाओं के घटित होने की चर्चा की गई है। 'गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' म इस तुलसी की पाँचवीं यात्रा (अयोध्या से नीमषार जाने और लौटने की) कहा गया है, और मार्ग म पड़ने वाले कौन्ह तीर्थों का उल्लेख किया गया है।[2] उनके साथ जिस 'सूकरखेत' का नाम आया है वह गोण्डा जिले का ही 'सूकरखेत' है, इसकी पुष्टि गोसाइ चरित एव 'गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' के पूर्वोक्त विवरणों से होती है। तुलसीदास से इनका घनिष्ठ सम्बध प्रतिपादित करने वाली अनेक कथाएँ अवध प्रदेश म आज तक प्रचलित हैं।[3]

---

१ वही, पत्र २१५–१६।

२ अयोध्या से रवनाहो, सूकरखेत (पसका), सियाबार लखनऊ, मडियाहूँ, मलीहाबाद, बिठूर कोटरा, सडीला, नीमषार, मिसरिख, रामपुर मथुरा, खराबाद, सूकरखेत और अयोध्या।

—गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत, प २८ (रामचरितमानस हरि प्रसाद भगीरथजी, कालबादेवी रोड, बम्बई की भूमिका रूप में प्रकाशित)

३ इस यात्रा में नीमसार से लौटते समय गोस्वामी जी मिसरिख, रामपुर मथुरा, खराबाद और सूकरखेत होते हुए अयोध्या आये थे। स्थानाभाव के कारण केवल रामपुर मथुरा (सीतापुर) मे उनके ठहरने, वहाँ के राजा हृदयराम को मानस की एक हस्तलिखित प्रति देने तथा उस स्थान पर हनुमान जी की प्रतिमा स्थापित करने का स्थानीय साहित्य में सुरक्षित वृत्तान्त सक्षेप मे नीचे दिया जाता है—

वेणीमाधवदास की ही भाँति गोस्वामी जी के एक अन्य समसामयिक एवं साथी काशी निवासी कृष्णदत्त मिश्र द्वारा विरचित 'गौतम चन्द्रिका' में भी तुलसी

तीरथ नमिष विदित जहाना । ताके प्राची दिशा सुजाना ।।
योजन अष्ट दूरि कवि गाव । अवधपुरी से पश्चिम पाव ।।
दश योजन प्रमाण महिं जाई । सरित चन्द्रभागा तटभाई ।।
अरु सरयू के दक्षिण आसा । बसत रामपुर ग्राम सुवासा ।।
दोहा—तहाँ महेश्वरबख्श नृप, करत राज्य नय रूप ।
विक्रम विक्रम तुल्य बुधि, सुरपति गुरु अनुरूप ।।
—महेश्वर गोगज चिकित्सा, पृ० ६८,

ग्राम रामपुर ते कछु दूरी । दिशि कौबेय सरित जल पूरी ।।
रामघाट गढकि सरि माहीं । रमई गोडिया हो तेहि ठाहीं ।।
गोस्वामी थो तुलसीदासा । आए तेहि थल सहित हुलासा ।।
घाट नाम पूछो हरषाई । रामघाट तेहि दीन्ह बताई ।।
नाम रमैया मोर कृपाला । यहि कृत करत दश प्रतिपाला ।।
घाट पार को पुर कथु नामा । बसत रामपुर ग्राम ललामा ।।
को नप हृदय राम नरनाहा । सुनि पायो तिन बड उतसाहा ।।
आवत भ सानन्द तह, मुनि नृप आयो धाइ ।
युत आदर सत्कार तिन, बास करायो आइ ।।
सेवन कीन्ह यथाविधि रूपा । भे प्रसन्न तव साधु अनूपा ।।
आशिष दीन्ह अचल यह राजू । काहू काल न होइ अकाजू ।।
रामायण निजकृत तहँ थापी । पुज्यो यहि अरि सक न चापी ।।
प्रतिमा आंजनेय भगवाई । भूप निकेत आपु पधराई ।।
अजहूँ राजत भूपति धामा । पूजत प्राप्त होत मन कामा ।।

—महेश्वर गो-गज चिकित्सा प० १०–११ (डायमंड जुबिली यन्त्रालय, कानपुर) स० १६५७ वि०, ।

ग्राम रामपुर नाम, हृदयराम भूपालमणि ।
रामघाट सुखधाम, रमई गोडिया नाम सुनि ।।
तुलसीदास कृपाल रामभक्त तन मन बचन ।
आए ग्राम सुकाल, बास कियो कछु काल तह ।।
रामायण निजकर लिखित, दै पुनि दीन्ह असीस ।
अचल होइ नपता सदा, सुनु तव रामपुरीस ।।

के जीवन से सम्बद्ध अनेक अलौकिक घटनाओं का वृत्त वर्णित है।[1] इस ग्रंथ की रचना तुलसी के साकेतवास के ठीक एक वर्ष पश्चात् श्रावणकृष्ण ३, सं० १६८१ को हुई थी।[2] इसमें तुलसी की आदि शिक्षा भूमि—'सूकरखेत' और गुरु 'नरहरिदास' का जो परिचय दिया गया है, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

सरऊ अपर घाघरी दोऊ। संगम तीर्थराज सम सोऊ॥
धवलि जेठ एकादसि माही। तहाँ विपुल नर-नारि नहाही॥
बहुरि बराहक्षेत मोपा सचि। पूजहि बटु बराह बेन्दी रचि॥
तहवा सकल लोक विख्याता। सुपन्थ भक्तिसूत्र निर्माता॥
साडिल रिषि आश्रम थल पासा। जहँ तह सरवारिह कर बासा॥
राम प्रन्स्त भूमि अधिकारी। खल दल दलन धर्म धनुधारी॥
साडिल गोत्रज नरहरि स्वामी। ज्ञान निधान भक्तिपथगामी॥
अध गज गजन नरहरी, सूकरखेत बिहाइ।
आरण्यक सुषमा भरी, कासी पहुँचे जाई॥ २॥

तात्पर्य यह कि तुलसी ने जहाँ सर्वप्रथम अपने गुरु नरहरिदास के सान्निध्य में विद्याध्ययन किया था वह स्थान सरयू घाघरा संगम पर है और 'वाराह क्षेत्र' अथवा 'सूकरखेत' नाम से अभिहित किया जाता है। पसका गाँव (सूकरखेत) में 'शाण्डिल्य ऋषि का आश्रम' नाम से एक स्थान अब तक निर्दिष्ट किया जाता है। पसका के अतिरिक्त नन्दौर तथा उसके निकटवर्ती गावों में भी शाण्डिल्य गोत्र के ब्राह्मण बहुत बड़ी संख्या में बसे हुए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि गोंडा जिले का दक्षिणी भाग, जिसमें सूकर खेत स्थित है, शताब्दियों से सरयूपारीण ब्राह्मणों का मुख्य केंद्र माना जाता रहा है।[3]

—महेश्वर रसमौर ग्रन्थ (रायकवि दौलतराम) लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, अक्तूबर १८६८ ई०।

१ गौतमचन्द्रिका में तुलसी का वृत्तांत (श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६० अंक १, सं० २०१२, पृ० १२।

२ संवत सोरह सै एकासी। तुलसी बरखी असी प्रकासी॥
सावन कृष्ण तीज तिथि पाई। यह गौतम चन्द्रिका बनाई॥
वही, पृ० ३।

३ 'देयर आर मोर ब्राह्मन्स इन गोंडा दन इन एनी अदर पार्ट स आव अवध एण्ड इ डीड इन दि होल आव यूनाइटेड प्राविंसेज विद दि एक्सेप्शन आव गोरखपुर। दि वास्ट मेजारिटी आव देम बिलांग टु दि सरवरिया सब डिवीजन।'

—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा पृ० ६७।

इन दोनो समसामयिक वृत्तो का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव तुलसी के परवर्ती लेखको द्वारा निर्मित एतद्विषयक साहित्य पर पडा। महेशदत्त शुक्ल ने स० १६३० मे 'भाषा-काव्य सग्रह' म वेणीमाधवदास का परिचय देते हुए लिखा—

ये कवि जिले गोडा मे घग्घर के निकट पसका के रहने वाले थे और तुलसीदास जी के शिष्य थे। ये बडे रामोपासक और गुरुभक्त थे। गोसाइ जी के सग ये भी फिरते थे। जो जो सिद्धताये तुलसीदास जी की इन्होने देखी हैं वे सब अपने ग्रथ 'गोसाइ चरित' मे लिखी हैं। ये स० १६६६ मे हरिपुरवासी हुए।[1]

वेणीमाधवदास तथा 'गोसाइ चरित' का जो परिचय इन पक्तियो म दिया गया है वह गोसाइ चरित की पूर्वोक्त प्रति मे उपलब्ध वृत्त से समर्थित है। इस ग्रथ के वर्ण्य-विषय से सम्बन्ध म यह लिखकर कि इसम वेणीमाधवदास ने अपने गुरु की केवल आखो देखी सिद्धताए वर्णित की हैं न कि उनका सम्पूर्ण जीवन वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी गई है। खटकने वाली बात केवल इतनी है कि इसम एक स्थान पर भवानीदास का नाम लेखक के रूप मे आया है। उन्होंने इस सम्पूर्ण कथा को अपने गुरु, महात्मा रामप्रसाद से सुनी हुई बताया है।[2] महात्मा रामप्रसाद अयोध्या के 'बडा स्थान' के सस्थापक थे। इनका समय १७६० स स० १८६१ तक माना जाता है। मेरी धारणा है कि भवानीदास ने गुरुमुख तथा तत्कालीन अन्य सन्तो से प्राप्त अनुश्रुतियो का सन्निवेश कर पूर्व प्रचलित 'गोसाइ चरित' मे कुछ परिवतन एव परिवद्धन मात्र किया है।[4] वस्तुत रचना यह वेणीमाधवदास की ही है।

---

१ भाषा-काव्य सग्रह, पृ० १३५।

२ सब गुन रहित औगुन सहित तव चरन दिढ़ विस्वास है।
घरि आस सत्ता नाम की जाच भवानीदास है॥
—गोसाईं चरित पत्र ५

३ ताते कछुक प्रसग सुभ, सुनेउ जो सत प्रसाद।
सत सिरोमन हू वई, अग्या राम प्रसाद॥ —वही, पत्र २६।

४ डा० माताप्रसाद गुप्त ने रामचरणदास की टीका सहित १९२४ ई० नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित रामचरित मानस की भूमिका मे उद्धत जिस गोसाइ चरित्र का विवरण दिया है वह प्रस्तुत गोसाइ चरित का ही प्रतिरूप है।

इसके चार वर्ष पश्चात् विरचित 'सरोज' में सेंगर जी वेणीमाधवदास का परिचय देते हुए लिखते हैं—

"दास—२—वेणीमाधवदास, पसका, जिले गोंडा, सं० १६५५ में उ० यह महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी के शिष्य उन्हीं के साथ रहे हैं और गोसाइं जी के जीवन चरित की एक पुस्तक गोसाइं चरित बनाई है। सं० १६९९ में देहान्त हुआ।'[1]

अयत्र उसी ग्रंथ में गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है।

'इनके जीवन चरित्र की एक पुस्तक वेणीमाधवदास कवि पसका ग्रामवासी ने जो इनके साथ-साथ रहे बहुत विस्तारपूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को हम कहाँ तक संक्षेप में वर्णन करें।'[2]

सेंगर जी के उपयुक्त कथन से यह विदित होता है कि उन्होंने 'गोसाइं चरित' को स्वयं देखा था, नहीं तो वे इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को 'हम कहाँ तक संक्षेप में वर्णन करें' न लिखते। उन्होंने वेणीमाधवदास की रचना शैली के नमूने के रूप में जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं 'गोसाइं चरित' की प्रस्तुत प्रति में वे अविकल रूप में पाई जाती हैं। इससे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महेशदत्त शुक्ल तथा शिवसिंह सेंगर द्वारा निर्दिष्ट 'गोसाइं चरित' दासायन्दास अथवा दासानुदास विरचित प्रस्तुत ग्रंथ से अभिन्न था और उनके रचयिता एक ही वेणीमाधव दास थे जो पसका अथवा सूकरखेत के निवासी और तुलसी के अन्तेवासी थे।

शिवसिंह के परवर्ती 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' के रच-

---

यह ग्रन्थ 'श्री स्वामी गोसाईं तुलसीदासजू को चरित्र' नाम से खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के साथ १८८१ ई० से निकल चुका है। डॉ० गुप्त ने भी यह सम्भावना व्यक्त की है कि "गोसाईं चरित्र की जिस रूप में सेंगर जी ने देखा रहा उस रूप में वह बेनीमाधवदास की ही रचना रही हो और उसे भवानीदास की बनाने के लिए कुछ अवश्य फेरफार बाद में कर लिया गया हो।"

—तुलसीदास, (सं० १९५३ ई०), पृ० ४३।

१ शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ४३२।

२ शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ४२८।

पिता सर जार्ज ग्रियर्सन ने भी इसी सामग्री का आधार लेकर वेणीमाधवदास को पसका (सूकरखेत जिला गोंडा) का निवासी बताया है।

"वेणीमाधवदास—पसका, जिला गोंडा के १६०० ई० में उपस्थित यह गोसाईं तुलसीदास के शिष्य थे और लगातार उनके साथ रहते थे। इन्होंने उनका जीवन चरित 'गोसाईं चरित्र' नाम से लिखा था। यह १६४२ ई० में मरे।[1]"

इतना लिखते हुए भी न जाने किस आधार पर उन्होंने सोरों को सूकरखेत का पर्याय मान लिया। यह उल्लेखनीय है कि इस स्रोत से प्राप्त सामग्री में परम्परा में गोंडा के ही सूकरखेत से तुलसी का सम्बन्ध बताया जाता रहा है। पीछे अंग्रेज शासकों ने भी डिस्ट्रिक्ट गजेटियर के लिए सामग्री एकत्र करते समय इन्हीं स्रोतों को विश्वसनीय माना।[2]

यह तो हुआ हिन्दी साहित्य के प्राचीन ऐतिहासिक स्रोतों में पसका अथवा सूकरखेत की वास्तविक स्थिति और तुलसी से उसके सम्बन्ध का दिग्दर्शन। इसी के साथ यह भी देख लेना चाहिये कि उसकी तीर्थ रूप में प्रतिष्ठा का रहस्य क्या है?

हम यह कह चुके हैं कि वाराह क्षेत्र अथवा सूकरखेत गोंडा जिले की दक्षिणी सीमा पर सरयू घाघरा संगम पर स्थित है। इसलिये कुछ लोग इसे 'संगम' के नाम से भी पुकारते हैं। स्कन्दपुराण में इसकी महिमा विस्तार से वर्णित है।[3]

---

१ माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान (हिन्दी अनुवाद—डा० किशोरी लाल गुप्त), पृ० १३५।

२ "वन आर टू गोंडा वर्दीज हैव अटेन्ड सम मेजर आव लिटररी फेम। वेनीमाधोदास आव पस्का वाज ए डिसाइपिल एण्ड कम्पनियन आव तुलसी दास हूज लाइफ ही रोट इन दि फार्म आव ए पोयम, एन्टाइटिल्ड 'दि गोस्वामी चरित'।"

—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा पृ० ७५

३ दशकोटि सहस्राणि दशकोटि शतानि च।
तीर्थानि सरयू नद्या घर्घरोदक संगमे॥
निवसंति सदा विप्र स्कंदादवगत मया।
तस्मिन् संगमसलिले नर स्नात्वा समाहित।
संतर्प्य पितृ देवाश्च दत्वा दान स्वशक्तित॥
पौषे मासि विशेषेण य कुर्यात्स्नानमादृश।
ब्राह्मण क्षत्रियो वश्य शूद्रो वा वर्णसकर॥

पौष मास में इस तीर्थ में स्नान विशेष फलप्रद कहा गया है। यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र का वार्षिक पर्वस्नान अब भी पौष पूर्णिमा को ही होता है।[1]

इसके अतिरिक्त 'रुद्रयामल तन्त्र' के अयोध्या खंड में भी इस संगम तीर्थ का माहात्म्य विस्तार से बताया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक ऐसा पुण्यक्षेत्र है जिसकी वैष्णव मात्र में बड़ी प्रतिष्ठा है और जहाँ प्रतिवर्ष पौष मास में एक महान् पर्वस्नान होता है। इसी संगम पर सत्ययुग में भगवान ने वाराह अवतार धारण किया था और हिरण्याक्ष का वध करके पृथ्वी का उद्धार किया था, जिससे इस वाराह क्षेत्र की संज्ञा मिली।[2] 'गोसाइं चरित' में दिया गया सूकरखेत का वृत्तान्त 'रुद्रयामल तन्त्र' में उपलब्ध विवरण से पूर्णरूपेण समर्थित है।

स याति ब्रह्मणः स्थानं पुनरावृत्ति वर्जितम्।
एकतः सर्वतीर्थानि नाना विधि फलानि च।
सरयू घर्घरोत्पन्न संगमस्त्वधिको भवेत्॥
—स्कंदपुराण (वेंकटेश्वर प्रेस, १९६७ वि०) वैष्णव खंड—२, अयोध्या माहात्म्य, अध्याय ६, श्लोक ७९, ८१, ८२, ९०, ११०।

१ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा पृ० २४६।

२ संगमे वर्तते देवि सर्वपाप प्रणाशनं।
तत्र स्नात्वा तु यत्पुण्यं शृणु तत्कथयामि ते॥
दशकोटि सहस्राणि दशकोटि शतानि च।
सरयू घर्घरे संगे तीर्थानि संति पार्वति॥
हुत्वा वैष्णव मंत्रेण विष्णुलोक व्रजेन्नरः।
पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहु फलप्रदम्॥
प्राप्नोति सकलं राज्यं दीपदानेन सुव्रते।
यस्तु शुक्ल चतुर्दश्यां पौषे च संयतो व्रती॥
वैष्णवो विष्णु पूजां च कुर्वन्नरहरेः कथाम्।
गीत-वादित्र नृत्यश्च विष्णु संतोष कारकः॥
संगमे विधिवद्दत्वा स याति परमां गतिम्।
वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं यात्रा धर्मार्थ तत्परैः॥
—रुद्रयामल, तन्त्र, अयोध्या खंड, अध्याय २६, श्लोक ३६, ३७, ४३, ५४, ५५।

३ पुराकृतयुगे देवि! पृथिव्युद्धरणं कृतम्।
तत्र निष्पादितातीय वराहेण महात्मना॥

पुराणों में अवतारों के साथ उनकी शक्तियों के भी आविर्भाव की चर्चा यत्र-तत्र मिलती है। 'देवी भागवत' में वाराह भगवान की आदिशक्ति वाराही देवी का उल्लेख है।'[1] गोंडा जिले में 'सूकरखेत' के समीप वाराही देवी का स्थान 'उत्तरी भवानी' के नाम से अब भी एक सिद्धपीठ माना जाता है और वह वाराह भगवान की आदिशक्ति रूप में पूजी जाती हैं। यहाँ चैत्र शुक्ल सप्तमी को एक बहुत बड़ा मेला लगता है।

इस सम्बन्ध में एक अन्य प्रामाणिक साक्ष्य अनादि काल से रामभक्तों में प्रचलित परिक्रमा के अन्तर्गत गोंडा के सूकरखेत की विशिष्ट तीर्थ के रूप में ख्याति भी है। महात्मा बनादास (सं० १८७८-१९४९ वि०) ने रामभक्तों की तीन परिक्रमाओं का उल्लेख किया है—पचकोसी, चौदहकोसी और चौरासी-कोसी। इनमें से प्रथम दो अयोध्या के सीमित तथा विस्तृत क्षेत्र की प्रदक्षिणायें हैं किन्तु तीसरी अर्थात् चौरासी कोस की परिक्रमा में अयोध्या के निकटवर्ती

हत्वा दुष्टं हिरण्याक्षं पृथ्वी स्थापनं कृतम्।
अथ देवाः सगन्धर्वा हर्षनिर्भर मानसाः॥
समागम्य स्तुतिं चक्रुर्यज्ञवाराहतुष्टये।
इति श्रुत्वा तदा देवा गन्धर्वा मुनयस्तथा॥
तत्रैव निवसन्ति स्म सभांकृत्वा विधानतः॥

—वही, श्लोक ५६, ५७, ५८, ६३।

१ (क) वाराहे चैव वाराही सर्वं सर्वार्थदा सती।
मूल प्रकृति सम्भूता पञ्चीकरण मार्गतः॥
वाराहेण वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा।
उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात्॥
पूर्व रूपं वराहं च दधार स च लीलया।
पूजां चकार तां देवीं ध्यात्वा च धरणीं सतीम्॥

—देवीभागवत, नवम् स्कन्ध, अध्याय ९, श्लोक २५, २७, ३३।

(ख) डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा, पृ० ३८ (परिशिष्ट)।

२ पचकोस मरजाद चौदह चौरासी कोस
करत प्रदक्षिणा जो अति मन लाई है।
अगम पुण्य ताको सब तीरथ किये को फल
करत पुरान मुनि जाकर बड़ाई है॥

—उभयप्रबोधक रामायण, पृ० ७८।

फैजाबाद, गोंडा तथा बस्ती जिला के कतिपय अन्य छोटे-छोटे तीर्थ भी आ जाते हैं। पहली दोनों परिक्रमायें क्रमश कार्तिक शुक्ला एकादशी तथा नवमी को आरम्भ होती हैं और एक ही दिन में समाप्त हो जाती हैं। किन्तु तीसरी परिक्रमा चैत्र शुक्ला नवमी (रामनवमी) से लेकर पूर्णिमा तथा किसी भी दिन उठाई जा सकती है। उसका आरम्भ मनोरमा[1] से होता है जो अयोध्या से उत्तर गोंडा जिले में मनवर नदी के उद्गम स्थल तथा उद्दालक ऋषि के पुत्र नचिकेता के आश्रम रूप में विख्यात है। इसी तीसरी परिक्रमा में सूकरखेत एक विश्राम स्थल है। परिक्रमा समाप्त होने पर यात्री अयोध्या आकर जानकी नवमी (वैशाख शुक्ल ६) के दिन सीताकुंड में स्नान करते हैं।

महात्मा बनादास ने उपर्युक्त तीन परिक्रमाओं के अतिरिक्त रामभक्तों में परम्परा से प्रचलित एक चौथी बृहत् परिक्रमा का भी वर्णन किया है जिसके भीतर अधिकांश रामतीर्थ आ जाते हैं। उनके शब्दों में उसका स्वरूप इस प्रकार है—

कासी से उठावै राम नाम लव लावै,
प्रागराज में अन्हावै चित्रकूट कह आवई।
नीमषार धावै हिय अति हरषावै,
क्षेत्र सूकर अन्हावै मनोरामा पर जावई॥
मिथिला को पाय नहिं आनन्द समाय,
बक्सर वाराणसी पुर कोशल चलावई॥

---

१ उद्दालकेन यजता पूर्व ध्याता सरस्वती।
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनि कारणात्॥
पूज्यमाना मुनि गणैर्वल्कलाजिन संवृतै।
मनोरमेति विख्याता सा हि तन्मनसा कृता॥
—महाभारत, शल्यपर्व, ३८ वाँ अध्याय, श्लोक २४, २५।

२ चौरासी कोस की परिक्रमा के विश्राम स्थल ये हैं— मनोरामा, शृंगी ऋषि का आश्रम, गोसाइगंज सूर्यकुंड, दराबगंज, आस्तिकाश्रम, जन्मेजय कुण्ड, अमानीगंज, मिश्र केटरवा, ललनीपुर, पटरंगा कमियार, जम्बूतीर्थ, सूकर खेत, उत्तरी भावनी (वाराही देवी), अमवहो, गोकुलपुर, टेढी संगम, नवाबगंज, नगवा और सिकन्दरपुर।
—विशेष विवरण के लिए देखिये—अयोध्या दिग्दर्शन, पृ० ५८ ५६, (पं० रामरक्षा त्रिपाठी, एम० ए०)

बदे 'बनादास' परिक्रमा को स्वरूप यह,
भेषें सियाराम मुख माँगे सोई पावई ॥[1]

यहाँ भी नीमपार (नैमिषारण्य) के पश्चात् और मनोरमा के पूर्व जिस 'क्षेत्र सूकर अथवा 'सूकरखेत' का उल्लेख है, वह गोंडा जिले का ही सूकरखेत है क्योंकि उसकी स्थिति उपयुक्त दोनों तीर्थों—नीमपार और मनोरमा के मध्य में है। 'उभय प्रबोधक रामायण' में बनादास जी ने इसी प्रसंग में अपने तीर्थाटन का वर्णन करते हुए सूकरखेत के स्थान पर उसके दूसरे नाम 'संगम' की भी चर्चा की है।[2] इससे उक्त धारणा निर्भ्रांत ठहरती है।

'गौतम चन्द्रिका' में एक स्थान पर कृष्णदत्त मिश्र ने तुलसी द्वारा रामतीर्थों के पर्यटन का भी उल्लेख किया है। उसमें दिए गए प्रारम्भिक तथा अन्तिम यात्राक्रम में बनादास जी द्वारा प्रस्तुत परिक्रमा का स्वरूप बिल्कुल मिल जाता है।[3]

---

१ रामद्रष्टा, पत्र ६६। इस संगम नाम का उल्लेख 'रुद्रयामल तंत्र' और 'गौतम चन्द्रिका' दोनों ग्रंथों में हुआ है। महात्मा बनादास ने भी सूकरखेत के इस पर्याय की चर्चा अपने यात्रा विवरण में की है।

२ काशी तीर्थराज चित्रकूट नीमसार लके,
संगम औ मनोरमा मिथिला सिधाई है।
बनावास बक्सर वाराणसी पूर कर,
रीझें सीयराम मुख माँग तौन पाई है ॥
—उभयप्रबोधक रामायण, प० ७८।

३ रामभक्ति रसमय भरो, सरि गोमती नहाइ।
ज्ञानखानि अघ हानि कर, कासी निवसे आइ ॥
तीरथराज भरि मकर नहाहीं। फागुन चित्रकूट चलि जाहीं ॥
अवध निवास करहिं मधुमासा। आइ करहिं पुनि कासी वासा ॥
लागत मागसीष मन भावन। कथित कृष्णगीता अति पावन ॥
रामविवाह महोत्सव जानी। तुलसी हिये भक्ति हुलसानी ॥
गुरु सन चहिं मोहि संग लिवाई। सिय मइके सुति रमा लपाई ॥
अवध संत मटली निहारी। गावहिं नारि मैथिली गारी ॥
बकसर वार्यो गौतमी, तुलसी सुदिन नहाइ।
मुक्ति जन्म महिमा मढ़ी, कासी निवसे आइ ॥
—गौतम चन्द्रिका में तुलसी का वृत्तान्त, पृ० ११।

इसी के साथ यह भी देख लेना चाहिये कि सूकरखेत का नामोल्लेख तुलसी ने 'रामचरितमानस' के जिस दोहे मे किया है उसकी टीका करते हुए मानस मर्मज्ञों ने क्या विचार प्रकट किये हैं और उनकी इस स्थान की स्थिति विषयक क्या धारणा रही है। इससे यह भी प्रकट हो जायेगा कि प्राचीन काल से साधु समाज और तुलसी साहित्य के प्रेमियों मे किस सूकरखेत को मान्यता दी जाती रही है। यहाँ 'मानस' की केवल उन्हीं टीकाओं से उद्धरण दिये जायेंगे जिनकी रचना सूकरखेत सम्बन्धी विवाद छिड़ने के बहुत पहले १६ वी शताब्दी में हो चुकी थी।

रामचरितमानस के प्रथम टीकाकार महात्मा रामचरणदास ने अपनी 'रामायण टीका' यद्यपि स० १८८० में समाप्त कर ली थी किन्तु बालकाण्ड का तिलक, जिसमे वह छन्द आया है, स० १८५० मे ही पूरा हो चुका था।[1] रामचरितमानस बालकाण्ड के सातवें दोहे की टीका करते हुए वे लिखते हैं—

मूल—सो मैं निज गुरु सनसुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नही तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥

दोहार्थ—सोई कथा हमारे गुरुन को जाने यहाँ ते प्राप्त भई। सोई कथा है मैं अपने गुरु ते सुन्या है। कथा सु कहै सुष्टु पदार्थ को उत्पन्न करे ताको सूकरखेत कही। तहाँ सुष्टु पदार्थ श्री रामयश गुण चरित सो सतसंग में गुरुन ते सुन्यो है अथवा शूकरखेत कहे वाराह क्षेत्र, श्री अयोध्या के पश्चिम तीनि योजन सरयूतीर तहाँ सुनेउँ तब मेरी बाल अवस्था रहै अचेत दसा रहै।

इसके पश्चात् स० १६३२ में विरचित 'रामायण मानस प्रचारिणी टीका' मे मानस के उपर्युक्त दोहे का अर्थ करते हुए जानकीदास कहते हैं—

'अब जो कोई पूछै कि भला तुम कहाँ पायो तापर कहत हैं कि पुन वही कथा जो शंभु कीन्ह फेरि काक भुशुण्डि दीन्ह तिन्हते याज्ञवल्क्य पाये ते भरद्वाज प्रति गाये सो कथा कहें मे हमारे गुरुजी को प्राप्त भई सो हम अपने गुरुजी से सुना कहा सुना सूकरखेत नाम वाराह क्षेत्र जो श्री अयोध्या जी से पश्चिम भाग मे सरयू घाघरा को संगम है तहाँ पर अथवा सूकर नाम सुष्टु वस्तु जो करै सो का है सत संग सो सतसंग क्षेत्र में अपने गुरु से सुनी परंतु समझी नही तब

---

१ संवत अष्टादस सुभग, सत्तरि अष्ठ सपाख।
रामचरण ऋतुराज तिथि, मघ शुक्ल वसाख ॥
—रामचरितमानस (ले० रामचरणदास)

२ रामायण टीका (रामचरणदास) नवलकिशोर प्रेस १८८७ ई० पृ० ६१।

जस श्री रामचरित मानस को स्वरूप है काहे ते कि तब बाल्यावस्था अति अचेत रहेउ।[1]

'मानस' की 'संत उन्मनी टीका' के रचयिता ने इसी प्रसंग की व्याख्या करते हुए लिखा है—

'तत्पश्चात् नैमिषवन के वाराह क्षेत्र नाम स्थान का साथ ही आये। तहां कुछ दिन रह। वा वाल्मीकि अध्यात्म इत्यादि रामायण श्रवण कियो। उनकी कृपा करि काव्य-शक्ति भई। वाराह क्षेत्र मे, जो अयोध्या के पश्चिम ओर है।'[2]

गांव के इस सूकरखेत मे पौष की पूर्णिमा का एक विशाल मेला लगता है जिसमे दूर-दूर से साधुओ के अखाड़े कल्पवास के लिये आते हैं। पसका गांव मे ही, वाराह मन्दिर[3] और घाघरा तट के बीच, एक पुरानी कुटी है जिसे वहाँ के लोग नरहरिदास की कुटी बतलाते हैं। इस स्थान मे सीताराम लक्ष्मण विग्रह स्थापित हैं। मंदिर मे पुराने बस्ता मे बँधा हुआ हस्तलिखित एवं प्राचीन मुद्रित पुस्तकों का छोटा-सा पुस्तकालय भी है। उसमे आनंदराम नामक किसी व्यक्ति की लिखी सं० १८८४ की एक हस्तलिखित रामचरितमानस की प्रति सुरक्षित है। इस गद्दी पर अब बाबा जगदेवदास आसीन हैं। इनके गुरु स्वर्गीय बाबा 'रामअवधदास' ने मुझे १८ वर्ष पूर्व अपनी परम्परा नरहरिदास के द्वितीय शिष्य रामकिसुनदास द्वारा प्रवर्तित बताई थी और अपने को नरहरिदास जी के पश्चात् उस गद्दी का आठवाँ महन्त बताया था। सम्भव है लिखित रूप मे परम्परा सुरक्षित न रहने के कारण पूर्वाचार्यों की नामावली मे दो चार पीढ़ियाँ छूट गई हों।

गुरु के साथ ही गोस्वामी तुलसीदास के तथाकथित चचेरे भाई और सोरो सामग्री के मेरुदण्ड, प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि नन्ददास के भी निवासस्थान की स्थिति पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। 'भक्तमाल' मे वे चन्द्रहास के भाई और रामपुर नामक गांव के रहने वाले बताए गये हैं। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार वे पूरब के निवासी और तुलसीदास के छोटे भाई थे। पहले वे रामानन्दीय सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे और तुलसीदास के साथ काशी

---

१ रामायण मानस प्रचारिका टीका ले० जानकीदास पृ० १२४।

२ संत उन्मनी टीका (१८८९ ई०) बालकांड पृ० २०४।

३ सरकारी कागजों मे "कोठरी वाराह जी" का विवरण नक्ल खसरा आबादी गांव पसका नम्बरी ४६७ हाता नम्बरी ६ में दिया गया है।

में निवास करते थे। उनकी प्रारम्भिक शृगारी प्रवृत्ति कालान्तर मे आराध्य देव कृष्ण की माधुर्य भक्ति म परिणत हो गई और मथुरा जाकर उन्होने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। तुलसी ने उन्हे कृष्णोपासना से विमुख कर रामभक्त बनाने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहे। छोटे भाई के व्रज चले जाने पर एक बार वे उनस मिलने गोवर्द्धन गए। वहा नददास की प्रार्थना पर श्रीनाथ जी ने तुलसीदास को धनुर्बाणधारी राम के रूप मे दर्शन दिया। इसके अनन्तर गोस्वामी विट्ठलनाथ की आज्ञानुसार उनके पुत्र रघुनाथ ने नवविवाहित वधू जानकी सहित इष्टदेव के रूप मे अपने 'सेवक' तुलसीदास को दर्शन देकर कृतार्थ किया।[1] लौटते समय तुलसीदास ने नददास से वृन्दावन त्यागकर अपने साथ काशी चलने का अनुरोध किया, किन्तु वे राजी न हुए। प्रत्युत उन्होंने तुलसीदास को ही व्रजभूमि की महिमा बताकर वहा रहते हुए अपना जीवन सफल करने की सलाह दी।

सारा आदोलन के प्रवर्तकों ने इन रेखाओ के सहारे नन्ददास की जन्मभूमि, जाति वश-परम्परा, ससुराल, गुरु मदिर आदि की खोज करके और भक्ति

---

१ यह कथा तुलसी की वृन्दावन यात्रा के समय घटने वाली उस घटना के विरोध में गढ़ी हुई जान पडती है जिसके सम्बन्ध में 'गोसाइ चरित' के 'श्री नाभा प्रसग' मे ये लोक प्रसिद्ध दोहे लिखे मिलते हैं—

> कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
> तुलसी मस्तक जब नव, धनुष बान लेउ हाथ॥
> मुरली मुकुट दुराइ क, धनुष बान लिय हाथ।
> तुलसी लखि रुचि दास की, नाथ भये रघुनाथ॥

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध रामभक्त कवि मोरोपत ने इसी घटना पर 'केकावली' में निम्नाकित छद लिखा है—

> श्री कृष्ण मूर्ति जेणेंकेली श्री राम मूर्ति सज्जन हो।
> राम सुत मयूर म्हणे त्याचा सुयशोमृतान मज्जन हो॥

यहाँ भी श्री कृष्णमूर्ति के श्री राममूर्ति में परवर्तित होने का श्रेय तुलसी को अपने इष्टदेव मे एकात श्रद्धा को ही दिया गया है, किसी कृष्णोपासक की मध्यस्थता को नहीं। कवि मोरोपत का समय १८ वीं शती है। महाराष्ट्र प्रदेश तक तुलसी की जीवनी से सम्बद्ध कथाओं के पहुँचने में कुछ काल अवश्य लगा होगा। अत इसका साक्ष्य बहुत अश तक प्रमाण कोटि मे रखा जा सकता है।

साहित्य में उपलब्ध नन्ददास विषयक सूत्रों से उनकी संगति बैठाकर तुलसीदास के गृहस्थ जीवन का एक रंगीन चित्र प्रस्तुत किया है। किन्तु इस सारी सामग्री के मूलस्रोत 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' की प्रामाणिकता अत्यन्त ही संदिग्ध है।[1] ऐसी स्थिति में उसके द्वारा प्रस्तुत तथ्यों को ऐतिहासिक महत्व नहीं दिया जा सकता।

सोरों सामग्री में नन्ददास के पूर्वज सोरों के निकटवर्ती ग्राम रामपुर के निवासी बताये गये हैं और यह कहा गया है कि किसी कारणवश उनके पिता उस गाँव को छोड़कर सोरों के योगमार्ग मुहल्ले में आ बसे थे। स्थानीय जनश्रुति के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि एक बार नन्ददास कहीं बाहर से कुछ धन कमाकर लाये थे। उसी से उन्होंने रामपुर को खरीदा और उसका नाम बदलकर श्यामपुर रखा था। इसके समर्थन में पास के गाँवों में प्रचलित 'नन्ददास सुकुल कियो रामपुर से श्यामपुर' की कहावत प्रस्तुत की गई है। 'वार्ता' और 'भक्तमाल' में उपलब्ध नन्ददास की जन्मभूमि सम्बन्धी समस्त सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन करने से इतना ही विदित होता है कि वे मथुरा वृन्दावन से पूर्व दिशा में स्थित रामपुर नामक किसी गाँव के निवासी थे। यह रामपुर किस जिले में था इसके निर्णय के साधन अब अवशिष्ट नहीं रहे।

श्री प्रभुदयाल मीतल ने साम्प्रदायिक साहित्य में प्राप्त नन्ददास विरचित निम्नांकित छप्पय को सोरों-सामग्री का समर्थक कहा है—

श्री मत्तुलसीदास स्वगुरु भ्राता पद बन्दे।
सेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनन्दे॥

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४८०। अष्टछाप (डा० धीरेन्द्र वर्मा) पृ० ११२ (टि०) हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६, अंक २ सं० २०१० में प्रकाशित डा० माताप्रसाद गुप्त का 'क्या ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ताएं उन्नीसवीं शताब्दी विक्रमी के पूर्व लिपिबद्ध नहीं हुई थीं?' शीर्षक लेख।
हिन्दी साहित्य (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी), पृ० ३६५।
ना० प्र० पत्रिका—अंक २-३, सं० २००६ "चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" शीर्षक श्री ललिताप्रसाद दुबे।

२ तुलसीदास और उनका काव्य—श्री रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ७८।

राम चरित जिन कीन ताप त्रय कलिमलहारी ।
करि पोथी पर सही आदरेउ आपु मुरारी[1] ॥
राखी जिसकी टेक मदन मोहन धनुधारी ।
बालमीकि अवतार कहत जेहि सत प्रचारी ॥
नन्ददास के हृदय नयन को खोलेउ सोई ।
उज्ज्वल रस टपकाइ दियो जानत सब कोई[2] ॥

मीतल जी के अनुसार इस प्रसग म 'गुरुभ्राता स रचयिता का तात्पर्य है 'बडा भाई । यह विचारणीय है कि 'गुरु भ्राता लोक प्रचलित 'गुरुभाई' का पर्याय है जिसका अर्थ सतीर्थ, सहशिक्षित अथवा सहपाठी होना है, अग्रज नही । वार्ता-साहित्य मे नन्ददास गोस्वामी तुलसीदास क साथ काशी मे निवास करने और रामानन्दीय सम्प्रदाय म दीक्षा लेने की चर्चा है । मीतल जी द्वारा उद्धृत उपयुक्त छद म काशी के प्रसिद्ध विद्वान् 'शेष सनातन [3] का विद्यागुरु के रूप में

---

१ मेरे विचार मे यहाँ 'पुरारी' पाठ होना चाहिए 'मुरारी नहीं । गोस्वामीजी के जीवनवृत्त से सम्बद्ध एक प्रसिद्ध किंवदती के अनुसार, जिसका उपयोग प्राय तुलसी के सभी जीवनीलेखकों ने किया है, भाषा मे लिखे गये मानस की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देख कर काशी के सस्कृताभिमानी पंडितों ने उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि विश्वनाथ जी उसकी सवश्रेष्ठता प्रमाणित कर दें तो हम विरोध करना छोड देंगे । कहते हैं गोस्वामी जी ने यह शर्त मान ली । फलत उसी रात को 'रामचरित मानस' की एक प्रति विश्वनाथ मन्दिर में कपाट मे बन्द होते समय रख दी गई । प्रात काल द्वार खुलने पर एकत्र जनसमुदाय यह देख कर स्तब्ध रह गया कि उक्त ग्रन्थ पर विश्वनाथजी की 'सही' अकित थी । प्रसग में निर्दिष्ट सही' से रचयिता का आशय त्रिपुरारि शिव द्वारा की गई उक्त सही से है, 'मुरारि' से उसका कोई सम्बन्ध लक्षित नहीं होता ।

२ अष्टछाप परिचय—श्री प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३०२ ।

३ तुलसी के काशीवासी विद्यागुरु 'शेष सनातन' अद्वैत मतानुयायी थे । डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने इनकी अभिन्नता की सम्भावना शेष पंडित से व्यक्त की है जो शकराचार्य के 'सर्व सिद्धान्त सग्रह के टीकाकार शेष गोविन्द के पिता थे । ये रामचरित मानस के विख्यात प्रशसक मधुसूदन सरस्वती के समसामयिक थे जिन्हें म० म० डा० गोपीनाथ कविराज ने स० १६५७ तक विद्यमान रहना स्वीकार किया है । डा० बडथ्वाल का अनुमान है कि

उल्लेख भी है। ये तथ्य नन्ददास और तुलसीदास का गुरुभ्रातृत्व सर्वथा सगत ठहराते हैं। अत सोरो-सामग्री का समर्थक कहा जाने वाला उपयुक्त छन्द स्वत तुलसी और नन्ददास के सहपाठी होने की ही पुष्टि करता है—सगोत्री अथवा पितृव्य पुत्र होने की नही।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत छन्द में सकेतित अन्य तथ्य भी सोरो सामग्री तथा उसकी एक प्रमुख आधारशिला 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे वर्णित घटनाओ का प्रत्याख्यान करते हैं। प्रथम पक्ति मे जिस 'स्वगुरुभ्राता तुलसी की पन्-वदना नददास ने की है उसकी 'टेक' रखने के लिए ही 'मदनमोहन श्री कृष्ण ने 'धनुषधारी' राम का रूप धारण किया था और उसी के प्रिय उपदेश से विषयासक्त नन्ददास को भगवदासक्ति की प्रेरणा मिली थी। इसके विपरीत सकुचित साम्प्रदायिकता के रग म सराबोर 'वार्ता' के 'नन्ददास' पग पग पर उपास्य के स्वरूप-भेद को लकर तुलसी का विरोध करते और अपनी ऊची आध्यात्मिक स्थिति के द्वारा उनका पथप्रदर्शन करते दिखाए गए हैं। नन्ददास की उपयुक्त रचना म अभिव्यक्त आत्मोल्लेखों के होते हुए भी परवर्ती भक्तो द्वारा साम्प्रदायिक महत्त्व को बढाने के लिए गढी गई वार्ताओ पर विश्वास कैसे किया जाय। समझ म नही आता कि मीतल जी ने इस छद को सोरो सामग्री का समर्थक कैसे मान लिया?

'गोसाइ चरित मे नन्ददास को तुलसी का 'गुरुबधु' बताया गया है जो पूर्वोक्त 'गुरुभ्राता' का ही पर्याय है। किन्तु यहा ये सनाढय नही कान्यकुब्ज कहे गये हैं—

> कान्यकुब्ज एक विप्र नगर कनउज ढिगवासी।
> श्री गोसाइ गुरुबधु रहै श्री कृष्ण उपासी॥
> नन्ददास शुभ नाम स्वच्छ कृत पद जग गावै।
> और कुटुम्बी विप्र भक्ति प्रतिपच्छ न भावै[1]।

शेष पडित अपने पुत्र शेष गोविन्द की बाल्यावस्था मे ही दिवगत हो गये थे। इसलिए उनकी शिक्षा दीक्षा आचाय मधुसूदन सरस्वती की देख रेख में हुई (योग प्रवाह पृ० २९८ २९९)। सगुणमार्गी भक्त गोस्वामी तुलसीदास को दार्शनिक विचारधारा पर अद्वैतमत का गहरा प्रभाव इन्हीं शेषसनातन द्वारा प्राप्त शिक्षा का फल था। नन्ददास के 'भ्रमरगीत' में उद्धव द्वारा अद्वैत सिद्धात का निरूपण तथा भोली भाली गोपियों की तार्किकता भी इन्हीं का प्रसाद हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

१ गोसाइ चरित, पद्य ५२।

'गोसाइं चरित' के प्रसंगों के उद्धारक भवानीदास ने कदाचित् प्रमादवश 'नन्ददास प्रसंग' में एक अन्य नन्ददास का वृत्त सग्रथित कर दिया है जिन्होंने अपने तपोबल से, भक्तमाल के अनुसार, एक मरी हुई गाय जिला दी थी।[1] प्रियादास ने इनको बरेली निवासी बताया है। इतना छोड़कर उक्त प्रसंग में दिया गया समस्त वृत्त प्रसिद्ध अष्टछापी नन्ददास का ही है। 'गोसाइँ चरित' में इन नन्ददास का आचरण तुलसी के कृष्णोपासक गुरुबंधु नन्ददास के सर्वथा अनुरूप है। नन्ददास की रामावतार सम्बन्धी रचनाओं से यह स्पष्ट विदित होता है कि तुलसी की भाँति वे भी राम और कृष्ण में अभेद भावना रखते थे और उनकी लीला गाकर अपनी वाणी पवित्र करते थे।[2]

रामगुणगान के साथ ही नन्ददास द्वारा लिखे गये 'हनुमान जी के पद'[3]

---

१ नाभा ज्यों नन्ददास मुई एक बच्छि जिलाई।

—श्रीभक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ४६०

भवानीदास की ही भाँति 'गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित' की रचयिता रानी कमल कुंवरि और तुलसी साहित्य के प्रसिद्ध टीकाकार बजनाथ कूमवंशी ने भी बरेली जिले के हवेली नामक ग्राम के निवासी इन्हीं नन्ददास को तुलसी का भाई माना है।

२ रामकृष्ण कहिए उठि भोर।
ओहि अवधेश वही ब्रजजीवन धनुधरन अरु माखनचोर॥
इत मे अयोध्या निमल सरजू उत जमुना जल करत किलोल।
उत मे दशरथ पुत्र कहाए इत कहाए (बाबा) नंदकिशोर॥
उत मे जानकी बाए विराजे इत राधे संग जुगल किशोर।
नन्ददास के ये दोउ ठाकुर दशरथसुत बाबा नन्द किशोर॥

—नन्ददास ग्रन्थावली पृ० २७१ ८०।

३ जब कूद्यो हनुमान उदधि जानकी सुधि लेन को।
देखत दसमाथ अपने नाथ को सुखदेन को॥
अरुन बदन तेज सदन पीत नयन गात हे।
उत्तर ते दच्छिन मानों मेरु उड़यो जात हे॥
जा प्रभु को नाम लेत भव जल तरि जात हे।
सत जोजन सिंधु कूद्यो तो कितौ एक बात हे॥
श्री रामचन्द्र पद प्रताप जग मे जस जाको।
'नन्ददास' सुरनर मुनि कौतुक भूले ताको॥ —वही, पृ० २८५

इस सम्भावना को और बदल देते हैं कि उनके भक्त हृदय पर किसी समय रामभक्ति की छाप पड़ी थी। मेरी यह धारणा है कि ये रामानन्दीय संस्कार नन्ददास को अपने गुरु नरहरिदास तथा गुरुभाई तुलसी के दीर्घ सहवास से प्राप्त हुए थे। इनसे सोरों-सामग्री में चित्रित 'रामपुर' को खरीदकर 'श्यामपुर'[1] बनाने वाले 'महाप्रभून के सेवक' कट्टरपंथी कृष्णोपासक नन्ददास के आचरण का प्रत्यक्ष विरोध पड़ता है और यही तथ्य साम्प्रदायिक द्वेष से अनुप्राणित उक्त वार्ता की स्थिति स्पष्ट कर देता है। सोरों के नन्ददास, लीलापुरुषोत्तम के चरित गायक उदार, निस्पृह, भावावेशी भक्त तुलसी के गुरुबन्धु नन्ददास की अपेक्षा अत्यन्त अनुदार एवं लोकप्रपंचग्रस्त प्राणी प्रतीत होते हैं। उनका तुलसी से बिन्दुमार्गी बन्धुत्व प्रमाणित करने के लिए सोरों-पक्ष के समर्थकों ने जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं वे अत्यन्त एकांगी एवं भ्रामक हैं। नन्ददास की कृतियों में उपलब्ध अन्त साक्ष्यों से उनकी सारहीनता स्पष्ट हो जाती है।

सोरों के समर्थकों ने अपनी उपपत्ति की पुष्टि के लिए तुलसीदास की कृतियों में प्रयुक्त भाषा को भी गवाही प्रस्तुत की है और उसमें से कुछ ऐसे शब्द, वाक्यांश, लोकोक्तियाँ तथा मुहाविरे, ढूंढ निकाले हैं जो, उनके अनुसार, सोरों के आसपास ही व्यवहृत होते हैं।[2] किन्तु डा० गोवर्द्धनलाल शुक्ल ने, जिनका उस प्रदेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और जो वहां के रीति-रिवाजों तथा भाषा से भलीभांति परिचित हैं, उनकी यह धारणा सर्वथा निर्मूल बताई है। उन्होंने विस्तृत परीक्षा के अनन्तर तुलसी के ठेठ प्रयोगों को पूर्वी अवधी का अभिन्न अंग मानते हुए तुलसी साहित्य में निर्दिष्ट संस्कार, संगीत तथा व्यवसाय सम्बन्धी कतिपय शब्दों का सोरों में अप्रचलित तथा वहाँ के निवासियों को उनसे अपरिचित बताया है।[3]

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त भाषा के विकासात्मक अध्ययन से यह विदित होता है कि उनकी कृतियों में क्रमशः ठेठ अवधी (रामललानहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल आदि) परिष्कृत अथवा संस्कृतनिष्ठ अवधी (रामचरित मानस, रामाज्ञा

---

१ तीरथ वर सौकर निकर, ग्राम रामपुर वास।
सोई रामपुर श्यामपुर, करयो पिता नन्दवास॥
—सूकरक्षेत्र माहात्म्य (कृष्णदास) ने अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयाल गुप्त, पृ० ६०१ पर उद्धृत।

२ तुलसीदास और उनका साहित्य, पृ० ७२-७५।

३ सोरों सामग्री पर एक दृष्टि—डा० गोवर्द्धनलाल शुक्ल, पृ० २७ २६।

प्रश्न, बरवै) तथा ब्रजभाषा (वैराग्य-सन्दीपनी, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, दोहावली, कवितावली और विनयपत्रिका) का प्रयोग हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकालना असंगत न होगा कि उन्होंने अपनी आरम्भिक रचनाओं में जिस भाषा का प्रयोग किया वही उनकी मातृभाषा अथवा बाल्यावस्था में गृहीत भाषा थी। संयोगवश वह भाषा उसी स्थान की है जहाँ उन्होंने अति अचेतन अवस्था में गुरु के अन्तेवासी रूप में अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली और प्रतीक उसी क्षेत्र की भाषा में चुने गये हैं। शनैः शनैः शिक्षा एवं सामाजिक सम्पर्क से ज्ञानवृद्धि होने पर प्रौढ़ावस्था में उन्होंने उसका परिष्कार किया और उसी में मानस की रचना की। आगे चलकर साहित्यानुशीलन एवं देशाटन करते हुए उन्होंने यह अनुभव किया कि, बल्लभ, राधावल्लभ तथा हरिदासी सम्प्रदाय के कृष्णभक्त और दरबारी कवियों ने ब्रजभाषा में अत्यन्त सरस काव्य रचना की है। उन्होंने देखा कि इसी गुण के कारण वह उत्तरी भारत की एक सामान्य काव्य भाषा के रूप में समादृत हो चुकी है, अतः अपनी अधिकांश उत्तरकालीन कृतियों में उन्होंने ब्रजभाषा को ही भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। यह उल्लेखनीय है कि तुलसी ने ब्रजभाषा का ग्रहण एक परिनिष्ठित काव्यभाषा के रूप में किया था जैसे उनके अन्य समकालीन एवं परवर्ती अवध प्रदेशवासी भक्ति एवं रीति परम्परा के कवियों ने किया था, शुद्ध मातृभाषा के रूप में नहीं। उनकी ब्रजभाषा में लिखी गयी रचनाओं में पूर्वी अवधी के शब्दों तथा मुहाविरों का प्रचुर प्रयोग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।[1] इसके विप-

---

१ (क) वैराग्य संदीपनी छं० १३, की मुखपट दीन्हे रहे। १४, ताहि। १६, गहेउ ३३, सहिवानु। ३६, जसेहु कसेहु। ४० हम नीके देखा कब आई। ४५, फिरी दोहाई राम की गे कामादिक भागि।
(ख) गीतावली—बालकांड छं २ असही दुसही। ४, कोसिलुरानी। १७, लेरुआ। ८३, कनियाँ।
अयोध्या—१८, बटोही। २०, चकचौंधी लागे। २८, बरियार। ३१, बराइ। ३२, निसरिगे। ३७, देखवया। ४०, उपही। ४६, उकठेउ। ६६, गोड़। ८७, चुचुकारे। ८६, चाहु।
आरण्य—३, गवहि। ५, मेरवति। १७, अँचइ (भोजनोपरान्त हाथ मुह धोकर)। किष्किंधा—२, बदिबदि।
सुन्दर—१, तरकि, तुक। १२, मोखे। २५, हुमकि, ताकि ३७, सई।
उत्तर —, घरहरिकरत। ६, बतकही। २१, सुघर। २२, कूटि।

रीत व्रजभाषा क्षेत्र म उत्पन्न हिन्दी के प्रसिद्ध कवियो म एक भी ऐसा नही दिखाई देता जिसने ठेठ अवधी म सफल काव्य-रचना की हो। किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए तुलसी इसके अपवाद नही बनाये जा सकते।

तुलसी की ठेठ एव परिष्कृत अवधी मे लिखी गई कृतियो मे प्रयुक्त भाषा का स्वरूप प्राय वही है जो आज भी गोडा जिले के पश्चिमी एव दक्षिणी सीमान्त क्रमश घाघरा के पुल से लेकर बस्ती जिले के पूर्वी भाग म बोली जाती है। 'सूकरखेत' इसके मध्य म स्थित है। इससे भी यही विदित होता है कि इस प्रदेश मे गोस्वामी जी ने अपना बाल्यजीवन का अधिकाश व्यतीत किया था क्योकि किसी स्थान की भाषा अपनी मौलिक प्रवृत्तिया सहित उसी अवस्था म पूर्णरूपेण ग्रहण की जा सकती है। इसी भाति दीर्घकाल तक काशी और चित्रकूट में निवास करने क कारण उनकी कृतियो में क्रमश भोजपुरी और बुन्देली के भी शब्द और मुहाविरे स्वाभाविक रूप में आ गये हैं।

गोस्वामी जी की रचनाओ मे यत्र-तत्र फारसी तथा अरबी भाषा के शब्दो का प्रयोग देखकर कुछ आलोचको ने उन्हे उत्तर प्रदेश क पश्चिमी अचल अर्थात् सोरो का निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है।[1] उनकी यह दलील है कि

(ग) विनय पत्रिका—छ० ३३, खोंचो। ३४, बिलगु न मानिए। ७०, लगिहै। ७५, ऐसो हठ जसो गाठि परेसन की। ७६, रोटी लूगा नीके राखं। १०१, बराय। १०६, भेई। १४१, उहरत। २०४, खटाई। २१६, रिरिहा। २२६, कौर। २६१, आउ बाउ। १८४, फोकट। १८६, अटखट, सरल, खटोला, बिहूल, बटोरा।

(घ) दोहावली—छ० १५, मोठो अरु कठवत भरो। १४३, पुरखा। १६८, इगारहो। ३७७, निरावहि। ४०२, भरवर। ४२२, भरुहाये। ४६६, अगाइ। ४७८, पाही खेती।

(च) कवितावली—सुन्दरकाड—छ० ४, निमुकि। ६, बुबुक बुबुकारी देत ११, वाढ़ीजार।

लका काण्ड—१६, टसकतु। २०, बहपट। ४६, फेकरि फेकरि।

उत्तर काण्ड—६, उघारि। १२, बेसाहे। १६, रिनियाँ। २२, खटाई। २४, देवया। ४६, खुरपा खरिया। ६३, गढ़ि गुढ़ि छोलि छालि। ६७, कहाँ जाई का करी।

१ प० रामनरेश त्रिपाठी ने तुलसी की भाषा पर तत्कालीन राजभाषा फारसी के प्रभाव की विवेचना करते हुए उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों के जो उदाहरण

सोरो और उसके आस-पास मुसलमानो की बस्तियाँ अधिक हैं। इसी से अरबी फारसी के जितने शब्द पश्चिमी हिन्दी म मिलते हैं उतने पूर्वी हिन्दी मे नही।[1] इस सम्बन्ध मे इतना ही सकेत कर देना पर्याप्त होगा कि यदि मुसलमानो की बहुसख्यक बस्ती और उनका सम्पर्क ही तुलसी साहित्य मे अरबी फारसी के शब्दो के अबाध प्रवेश का कारण मान लिया जाय तो सोरो की अपेक्षा मानस की आविर्भावस्थली अयोध्या और उसका निकटवर्ती प्रदेश तुलसी की जन्मभूमि होने का अधिक अधिकारी है। इतिहास इसका साक्षी है कि उत्तरी भारत मे दिल्ली और आगरा को छोडकर अयोध्या ही सुलतानो के समय (१२८० ई०)[2] से लेकर नवाब आसफुद्दौला के शासन काल, १७७५ ई० तक लगातार पाच सौ वर्षों तक प्रान्तीय शासन का मुख्य केन्द्र रहा है और उसी के नाम पर उक्त सरकार और सूबे को अवध की सज्ञा दी जाती रही है।[3] इसके धार्मिक महत्त्व

दिये हैं उनमें से एक है सीपर'। इसका शुद्ध फारसी रूप 'सिपर' है जिसका अर्थ होता है ढाल। त्रिपाठी जी का निश्चित मत है कि 'यदि सीपर' शब्द उनकी बोलचाल में आमतौर से प्रचलित न होता तो फारसी कोष में से निकाल कर वे इस शब्द को प्रयोग करने की चेष्टा हरगिज न करते।' तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७५)। त्रिपाठी जी ने सोरों को तुलसी की जन्मभूमि मानते हुए भी उस क्षेत्र के कवियों की रचनाओं से ऐसे उदाहरण नहीं दिये हैं जिनसे यह विदित होता हो कि वहाँ की बोल चाल मे ऐसे शब्द परम्परा से प्रयुक्त होते रहे हैं। किन्तु मुझे गोंडा के महाराज दत्तसिंह के शौर्य की प्रशसा मे कहा गया 'भानु कवि' का निम्नांकित दोहा मिला है जिसमे उक्त शब्द अपने प्रकृत अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है—

सिपर सिरोही सूरता, गई वस्त के साथ।
झाम मजीरा सारगी, रही बिसेन हाथ॥

महाराज दत्तसिंह १६९६ में गोंडा के सिंहासन पर बठे थे। उन्होंने नवाब सआदत अली खाँ की सेनाओ को परास्त कर पूर्वी अवध मे एकछत्र राज्य स्थापित किया था।

—देखिए डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा, पृ० १४६

१ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७५।

२ ए हिस्टारिकल स्केच आव दि फजाबाद तहसील—कार्नेगी, पृ० २३।

३ वही पृ० २।

को मिटाने के लिए म यकालीन मुसलमान शासक निरन्तर प्रयत्नशील रहे।[1] १५२८ ई० मे बाबर ने रामजन्म भूमि का प्राचीन मन्दिर तोड कर उसके ध्वंसावशेषो से एक मस्जिद बनवाई जो अब तक विद्यमान है।[2] उसके परवर्ती मुसलमान बादशाहो ने इसका नाम बदल कर 'अख्तर नगर'[3] रखा किन्तु वह सरकारी कागज-पत्रो में ही दफन होकर रह गया। जनमानस म अयोध्या की स्मृति पूर्ववत् बनी रही और विशिष्ट पर्वों पर उसकी यात्रा कर वे मर्यादापुरुषोत्तम राम की राजधानी को श्रद्धाजलि अर्पित करते रहे। इसके महत्व को नष्ट करने के उद्देश्य से औरगजेब ने त्रेता के ठाकुर का मन्दिर तोडकर एक विशाल मस्जिद बनवाई जिसके खडहर अब भी स्वर्गद्वार पर देखे जा सकते हैं। मुसलमान बादशाहो ने अयोध्या के आस-पास अपने सहधर्मियो की अनेक बस्तियाँ बसाई और उन्हें बडी-बडी जागीर देकर स्थायित्व प्रदान किया। बाराबकी, दरियाबाद, फैजाबाद, अकबरपुर, शाहगज, जौनपुर आदि नगर तथा अयोध्या म असख्य कब्रे और टूटी हुई मस्जिदो की मीनारे अब तक धर्म के नाम पर किये गये अत्याचारो की गवाही दे रही हैं। इस प्रदेश मे शताब्दियो तक प्रतिष्ठित मुसलमानी शासनतन्त्र और उसके द्वारा प्रचारित इस्लामी रीति-रिवाजो और भाषा के दीर्घकालीन सम्पर्क स ही परवर्ती भक्त कवियो—मोहन साइ, दूलनदास, बनादास, और युगलानन्यशरण ने फारसी अरबी के शब्द ही

---

१ अयोध्या पर चढाई करने वाले सर्वप्रथम मुसलमान सेनाध्यक्ष सालार मसऊद गाजी के प्रतिनिधि सय्यद मसूद बेहानी (१०३० ई०) तथा शहाबुद्दीन गोरी के सेनाध्यक्ष मकदूमशाह जूरन गोरी (११९२ ई०) की कबरें क्रमश बिडहर और अयोध्या मे अब तक देखी जा सकती हैं। जौनपुर में शर्की सल्तनत के सस्थापक ख्वाजा जहा ने भी अपनी आयु का एक बहुत बडा अश इसी नगर मे व्यतीत किया था। उसकी मृत्यु भी यहीं हुई।

२ इसी मस्जिद को लेकर इधर कई वर्षों से हिन्दू-मुसलमानों मे वाद चल रहा हैं।

३ (क) ए हिस्टॉरिकल स्केच आव दि फजाबाद तहसील, प० २३।
(ख) अयोध्या वाज ए मिल्ट टाउन आव अक्बर एण्ड मुहम्मद शाह, सम वाम्स आव दि लटर बींग इन्सक्राइब्ड 'अख्तर नगर अवध'।
—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, फजाबाद, पृ० १७२।

नही अपनाये, रेखता भाषा म काव्य रचना भी की।[1] मेरी यह धारणा है कि सपूण हिन्दी प्रदेश म फारसी, अरबी तथा इनकी उत्तराधिकारिणी उर्दू का जितना प्रभाव पूर्वी अवधी क्षेत्र मे लिखे गये काव्य ग्रथो मे मिलता है उतना व्रज ही नही उसकी किसी भी अय उपभाषा म नही पाया जाता। अत इस्लामी

---

१ इनकी रचनाओं के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

अवध की भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमे है तुलसी चौरा।
तवाफ करते हैं रोज जिसका विरचि नारद महेश गौरा॥
वह घडी अजब थी कि जिस घडी, वह दरख्त बट का उगा यहाँ।
उसी शब मे बढ़के बुलद शुद उसे कसे कोई करे बयाँ॥
हैराँ हुए सब देख कर कुदरत इलाही दर जहाँ।
न खुला मुअम्मा किसी से भी पोशीदा इसरारे निहाँ॥
सुना न देखा किसी ने पहले बना दिया उसने सबको बौरा॥

—मोहन साइ (स० १८१२ मे वतमान) का एक गीत, माधुरी, वप १४, खड २, स० ३, पृ० ३७४ ६५ से उद्धृत।

अब तो अफसोस मिटा दिल का दिलदार दोव मे आया है।
सतों की सुहबत मे रह कर हक हादी को सिर नाया है॥

—सतवाणी सग्रह, भाग २, दूलमदास, पृ० ६४।

तसबी मे फेरौं दिलों की दम रहू दान गुन के।
कफनी मे डालो खुशी की आसिक उसी मकबूल के॥

—पलटू साहब की शब्दावली, पृ० २३६।

चश्मो की अदा देखि के चितचूर हुआ है।
क्या दिल के अँधेरे में यह पुरनूर हुआ है॥
खाली था बहुत रोजों ने खातिर खराब खार।
मेहनत बग्र र शौक से भरपूर हुआ है॥

—रहस्य पदावली, युगलानन्दशरण, पृ० ५६।

जिगर से जख्म भारी है। दसा विरही की न्यारी है॥
खरे नना उदासे हैं। लेत गहरो उसासें हैं॥

स्रोतों से आये हुये शा न, लोकोक्तियों और मुहाविरा के सफल प्रयोग को ध्यान म रखने हुए भी अयोध्या और उसके निकटवर्ती 'सूकरखेत, को तुलसी की आदि शिक्षाभूमि मान लेने में कोई अड़चन नहीं दिखाई देती।

इसी प्रसग म तुलसी द्वारा निर्दिष्ट तत्कालीन लोक जीवन म फैली हुई बहराइच की दरगाह के चमत्कारी प्रभाव विषयक भ्रान्त धारणाओ पर भी विचार कर लेना चाहिए।[1] यह विचारणीय है कि रामकथा तथा अपने विरक्त जीवन से सम्बद्ध तीर्थों क अतिरिक्त तुलसी ने अपनी कृतियो मे केवल इसी स्थान की चचा की है, जो गोडा वाले 'सूकर खेत स कुछ ही दूरी पर स्थित हैं। बाल्यकाल मे गुरु के सान्निध्य म पसका अथवा सूकरखेत में तथा वयस्क होने पर अयोध्या निवास करते समय उन्होने प्रतिवप जेठ क महीने मे हजारो की सख्या मे लोगो को नेत्रज्योति, पुत्र तथा कुष्ठ रोग से मुक्ति प्राप्त करने की आकाक्षा से सालार मसऊद गाजी क दरगाह की जियारत क लिए जाते हुए देखा होगा और उस समय उनके हृदय म जनता की अधानुसारिणी प्रवृत्ति के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई होगी। क्षुद्र सासारिक स्वार्थों के लिए एक नृशस आक्रामक की कब्रपूजा उनकी दृष्टि से भूत पूजा से भी अधिक निंदनीय थी। बहराइच की दरगाह के मेले मे आनेवाले यात्रियो की प्रवृत्ति के सम्बध मे तुलसी की इस विस्तृत जानकारी का कारण उनका उसक निकटवर्ती प्रदेश मे दीर्घकाल तक निवास ही हो सकता है।

सूकरखेत की स्थिति पर विचार करते हुए यह भूलना चाहिए कि गोडा का सूकरखेत आज भी उसी नाम से प्रसिद्ध है जिस रूप म उसका उल्लेख परम्परागत साहित्य में होता आया है। सोरो को तुलसी के जीवन से सम्बद्ध करने के लिए जो नए-नए प्रमाण नित्य लाए जा रहे हैं वे उसे वाराहवतार का स्थान तो बना सकते हैं, क्योंकि इस गौरव के अधिकारी अनेक तीर्थ हमारे यहाँ बहुत

अधर सूखे बदन जरदो। रगे अँगरग ज्यो हरदी॥
भले अदर जलाया है। बाह्य सो रग छाया है॥
हृदय की कौन लखि पावे मुहब्बत जाते बढ़ती है।
बना मासूक जब राजी बशा निसि दिवस चढ़ती है॥

१ लही आँख कब आँधरे बाझपूत कब ल्याय?
कब कोढ़ी काया लही? जग बहराइच जाय॥

—दोहावली, छ० ४९६।

कुछ विद्वानों का विचार है कि अपने समय में नहछू के अवसर पर गाये जाने वाले अश्लील गीतों को सुनकर उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप तुलसी ने इस भक्तिपूर्ण संस्कार-गीत का निर्माण किया था।[1] किन्तु निम्नांकित तथ्यों के प्रकाश में यह अनुमान निराधार ठहरता है—

(१) तुलसी इस बात में पूर्णतया अवगत थे कि लोक-जीवन में जो मांगलिक गीत प्रचलित हैं, उनमें राम तथा सीता चरित व्यापक रूप से गाया और सुना जाता है। रामचरित मानस में इसका स्पष्ट उल्लेख है—

> स्याम सुरभि पय बिसद अति, करहिं गुनद सब पान।
> गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥"[2]

रामकथा पर आधारित ये ग्रामगीत संस्कार-गीत ही रहे होंगे, कारण कि लोक-स्तर पर व्यापक रूप से वे ही प्रचलित होते हैं। स्वयं तुलसी ने 'रामलला नहछू' की रचना उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करके की, यह 'रामलला नहछू' और उस अवसर से सम्बद्ध लोकगीतों की शब्दावली की समानता से स्वतः सिद्ध हो जाता है।[3]

मृगनयनि बिधुबदनी रचेउ मनि मंजु मंजुल हार सो।
उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक सोभा सार सो॥

—पार्वतीमंगल, १६३–६४।

१ 'श्री अयोध्याजी में किसी के नहछू उत्सव में श्रीगोस्वामी जी पधारे थे। वहाँ किसी भाटिन के कुछ अनुपयुक्त एवं अश्लील नहछू गीत सुने। आप वहाँ से उठ चलने पर उद्यत हुए। जानकर लोगों ने गाना बन्द करा दिया। तब उस भाटिन ने क्षमा माँगी और उपयुक्त गीत बना देने की प्रार्थना की। तब ग्रन्थकार ने इसका निर्माण किया।

—रामलला नहछू (सिद्धांत तिलक), उपोद्घात, पृ० ३।

२ रामचरित मानस, बालकाण्ड, दो० २०।

३ 'के दिहल चुटकी मुँदरिया के बिहल रूप है।
के बिहल रतन पदारथ भरि गयउ सूप हे॥
केकइ बिहल चुटकी मुँदरिया सोमित्रा बिहल रूप हे।
कौसिला बिहल रतन पदारथ भरि गयउ सूप हे॥
—तुलसीदास (डा० माताप्रसाद गुप्त) प० २०४ पर रामलला नहछू (स० १६६५ के हस्तलेख से उद्धृत)।

(२) मर्यादानिष्ठ काव्य-रचना के समर्थक होते हुए भी तुलसी मागलिक अवसरो पर गये जाने वाले गीतो मे हास-परिहास के लिए छूट देने के पक्षपाती थे। जनकपुर मे रामविवाह के अवसर पर वरपक्ष के पुरुषो और स्त्रियो का नाम लेकर गाई जाने वाली गालियो मे उन्होने रस लिया है और उन्हे अवसरोचित मानकर अभिनन्दनीय ठहराया है—

'जेवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥'[1]

'रामलला नहछू' में इन गालियो के एकाध नमूने रख कर कृतिकार ने प्रकारान्तर मे लोकमानस से तादात्म्य स्थापित किया है। इस प्रकार की शिथिलता आलोच्य ग्रन्थ के शृङ्गारी वर्णनो मे कई स्थलो पर, विशेष रूप से नेगहारिनो के हावभावो के वर्णन मे तुलसी ने जानबूझ कर बरती है, जिससे चिढ़ कर नवीन दृष्टि सम्पन्न आलोचको ने 'रामलला नहछू' को 'महात्मा कहलाने वाले एक मनोरोगी कवि मनीषी की मानसिक रतिलीला'[2] तक कह डाला है। साहित्यिक एव सास्कृतिक परपराओ से विच्छिन्न साहित्यिक मूल्याकन मे इस प्रकार का दृष्टिदोष सहज सभव है।

कहने का तात्पर्य यह कि ग्राम्य भाषा एव लोकगीत शैली मे रामचरित के मागलिक प्रसगो का वर्णन कर तुलसीदास जहाँ एक ओर इनके माध्यम से लोकजीवन मे व्याप्त रामनिष्ठा को सास्कृतिक स्तर से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे वही दूसरी ओर तथाकथित शिष्ट एव

केइ दीना चुटकी मुँदरिया केइ दीना रूप।
केइ दीना रतन जड़ाऊ त भरिगा है सूप॥
केकइ ने चुटकी मुदरिया कौशिल्या रानी रूप।
सुमित्रा रानी रतन जडाऊ तौ भरिगा है रूप॥ —ग्राम्य साहित्य
(प रामनरेश त्रिपाठी) पृ० २५५।

अन्य मुद्रित प्रतियों मे यही पक्तियाँ इस रूप मे मिलती हैं—
राजन दीन्हे हाथी रानिन्ह हार हो।
भरिगे रतन पदारथ सूप हजार हो॥
—तुलसी ग्रन्थावली (रामलला नहछू) छद १७, पृ० ५।

१ रामचरित मानस बालकाण्ड ३५६।
२ परितोष, अक ११, पृ० २६।

ग्राम्य साहित्य का भेद मिटाकर सभ्रात वर्ग मे लोकवाणी को यथोचित सम्मान दिलाने की ओर भी उनका ध्यान था।

अवसर एव उत्सव स्थल

नहछू नखक्षुर का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है वह अवसर, उत्सव या सस्कार जिसमे नख काटा जाता है।[1] कुछ विद्वानो ने इसकी व्युत्पत्ति नख+स्पर्श (नह+छू) से मानी है और इसका अर्थ किया है नहरनी से पैरो के नखो को इस प्रकार छुआना मानो नख काट रही है, जिससे यह विदित होता है कि इस अवसर पर वस्तुत नख काटा नही जाता बल्कि नहरनी से नाई या नाइनि उसका स्पर्श मात्र करती है। किन्तु तुलसीदास ने जिस 'नहछू' का वर्णन किया है उसमे नाइनि द्वारा नहरनी से नख काटने की क्रिया का स्पष्ट उल्लेख है—

नख काटत मुसुकाहिं बरनि नाहिं जातहिं हो।
पदुमराग मनि मानहु कोमल गातहिं हो॥

यह सस्कार उपवीत और विवाह दोनो अवसरो पर होता है। प्रश्न यह है कि गोस्वामी जी ने 'रामलला' के जिस 'नहछू' का वर्णन किया है, वह इन दोनो म से किस अवसर विशेष से सम्बद्ध है। इस विषय म सतो एवं विद्वानो के विभिन्न मत हैं—कोई इसे उपवीत सस्कार के अवसर पर सम्पन्न मानता है और कोई विवाह के समय। अपनी-अपनी मान्यता के समर्थन मे दोनो के पक्षधर उस ग्रन्थ के अत साक्ष्यो का सहारा लेते हुए निम्नांकित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

(क) नहछू यज्ञोपवीत (उपनयन) सस्कार के अवसर का है और अयोध्या म सम्पन्न हुआ—प० रामगुलाम द्विवेदी, सर जार्ज ग्रियर्सन और आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का यही अभिमत है।

यह सर्वविदित है कि राम और लक्ष्मण विवाह के बहुत पहले ही विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के लिए उनके साथ चले गये थे। फिर वहीं से दोनो

---

१ पूर्वी अवध (गोंडा, बाराबकी और बहराइच) मे कहीं कहीं इसे 'नाखुर' भी कहते हैं जो निर्भ्रान्त रूप से 'नखक्षुर' से व्युत्पन्न है।

२ 'रामचन्द्र तथा लक्ष्मण जी मिथिला मे थे और वहीं एकाएक विवाह निश्चित हो जाने पर अयोध्या से बारात वहा गई थी। अत यह नहछू विवाह के समय का हो नहीं सकता। यह कर्णवेध या उपवीत के समय का हो सकता है।'

—तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खंड, वक्तव्य पृ० २।

बालकों सहित विश्वामित्र जनकपुर जाकर धनुषयज्ञ मे सम्मिलित हुए थे। इसके बाद विवाह के पूर्व वे दोनों भाई अयोध्या आये ही नही। किन्तु तुलसी ने इसका अयोध्या म अनुष्ठित होना और उसमे राम की उपस्थिति स्पष्ट रूप से अनेक स्थला पर घोषित की है—

कोटिन्ह बाजन बाजहिं दसरथ के गृह हो।[1]
आजु अवधपुर आनन्द नहछू राम क हो।[2]

य पत्तिया इस बात की प्रमाण हैं कि यह 'नहछू' उपवीत सस्कार के अवसर का है, जो निश्चय ही अयोध्या मे सम्पन्न हुआ था। यह मान लेने पर आलोच्य कृति पर लगाये गय ऐतिहासिक दोष[3] का भी परिहार हो जाता है।

इस प्रसग मे राम के लिए 'दूलह और 'वर' शब्दो का प्रयोग देखकर लोग यह शका करते हैं कि यदि यह उपवीत के अवसर का है तो उक्त शब्दो का अर्थ क्या होगा? इसका समाधान यह कह कर किया गया है कि यज्ञोपवीत के समय जो मगलगान होते हैं, उनम भी विवाह-गीतो की भाँति 'वर' और 'दूलह' शब्दो का प्रयोग होता है।

डा० उदयभानु सिंह ने 'जानकी मगल की फलश्रुति के आधार पर यह अनुमान लगाया है कि 'जानकी मगल के निर्माण स पहले उपवीतोत्सव के लिए विशेषतया उपयुक्त मगलगीत के रूप मे रामलला नहछू की रचना हो चुकी थी। किन्तु जानकी मगल की सर्दभित पक्तियो से इस प्रकार की कोई ध्वनि नही निकलती। उनसे मात्र यह व्यक्त होता है कि रचयिता ने लोकजीवन मे यज्ञोपवीत, विवाह तथा अन्य मागलिक अवसरा (जन्म, कर्णवेध आदि) पर रामकथाश्रित उक्त गीता का गान नर-नारियों क लिए सभी प्रकार से कल्याणप्रद माना है।

यज्ञोपवीत क अवसर पर 'नहछू होने की इस मान्यता क विरोध म निम्नाकित तर्क दिये जा सकते हैं—

---

१ रामलला नहछू, २।
२ वही, १३।
३ तुलसीदास डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० २३०।
४ जानकी मगल, २४।
५ तुलसी काव्य मीमासा, पृ० ६१।

(१) 'नहछू' में तुलसी ने स्पष्ट रूप से संस्कार वर्णन के प्रसंग में राम को 'दूलह' और 'वर' की संज्ञा दी है, जो किसी भी स्थिति में उपनयन के लिए अनुष्ठित ब्रह्मचारी का बोधक नहीं माना जा सकता। यह लोकप्रसिद्ध है कि यज्ञोपवीत के हेतु वेदी पर उपस्थित बालक बटु, ब्रह्मचारी या बरुआ[1] के नाम से संबोधित होता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों में राम के भी जनेऊ के गीत पाये जाते हैं। उनमें भी राम को बरुआ या बटु ही कहा गया है—दूलह या वर नहीं।

(२) 'नहछू' में कहीं भी यज्ञोपवीत संस्कार का वर्णन नहीं आया है। परंपरागत लोकाचार के अनुसार इस अवसर पर बटु का क्षौर संस्कार, शरीर में हल्दी लेपन, मृगछाला तथा कुश की आसनी बगल में दबाकर पुस्तक और काठ की तख्ती लेकर अध्ययन के लिए काशी जाने को उद्यत होना,[2] वेदपाठ

---

१ कासी मे बरुआ पुकारेले हथवां जनेउवा लेले।
है कोई कासी के ठाकुर हमके जनेउवा दिहे।
कासी के ठाकुर विस्वनाथ बाबा उहे उठि बोललें।
हम अहो कासी के ठाकुर हमहो जनेउवा देवों॥
—ग्राम्य साहित्य, पृ० २४।

२ राजा दसरथ आँगना मूजि कौसिल्या रानी भल चीर।
लपकि झपकि चीरें दूनो हाथे चीरें।
रामचन्द्र बरुआ भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन॥
—ग्राम साहित्य, पृ० २४२।

३ देहु न माता मोहि सतुवा औ गुड़ गेडुवा।
जहाँ मैं कासी बनारस वेद पढ़ि अइहौं॥
—वही (जनेऊ गीत), पृ० २३६।

४ गलिया के गलिया पंडित घूमें हथवा पोथिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तो राम के जनेऊ॥
चाँवल धोतिया सुखत होइहें बरुआ जेंवत होइहें
पंडित वेद पढ़ रे।
आँगन ढोल धमाके दहव अस गरज।
उहै बखरिया राजा दसरथ तो राम कै जनेऊ॥२॥
गलिया के गलिया नाऊ घूमें हथवा कैसबतिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तो राम के जनेऊ॥३॥

ब्राह्मण भोज, कुल के मान्य (फूफा या बहनोई) के द्वारा जनेऊ अपण[1] मृगछाला एव पलास दड धारण आदि क्रिया कलापो का आयोजन होता है किन्तु 'नहछू' मे इसका कही उल्लेख नही है। जिस लोकगीत शैली म इस सस्कार गीत की रचना हुई है, उसमे राम क जनेऊ के भी गीत हैं और उनम इन सारे कृत्यो का वणन बडे ही सरस ढग से किया गया है। एक गीत म राम जनेऊ क लिए हठ करते हुए भूमि म लोटत हुए दिखाये गये हैं। महाराज दशरथ उह उठाकर गोद म बैठाते हैं और मा ने का जनेऊ मगा दन का आश्वासन देकर उन्हे बह लाते हैं।[3] एक दूसरे गीत में आठ वष की अवस्था होने पर राम को जनेऊ दने क लिए महाराज दशरथ वशिष्ठ स प्राथना करत हैं—माडव बनाया जाता है, उसमे नीचे राम खडे होते हैं। वे तीक्ष्ण धूप क कारण व्याकुल हो जाते हैं और माता कौशिल्या को वे शीघ्र भिक्षा की तैयारी करने को कहत हैं, शास्त्रीय नियम

बाँसन धोतिया
गलिया के गलिया बढ़या घूमै हथवा लिहे पटुलिया।
कवन बरुरिया
बाँसन धोतिया
गलिया के गलिया कुम्हरवा घूमै हथवा करौवा लिहे ॥७॥
कवन बरुरिया
बासन धोतिया
१ गलिया के गलिया फूफा घूमै हथवा जनेउवा लिहे ॥६॥
कवन बरुरिया
बाँसन धोतिया
उहै बरुरिया राजा दसरथ तो राम क जनेऊ ॥१०॥
२ पूछ कौसिला वेइ राजा दसरथ से बात रे।
क लैक होइ राजा रामजी के जनेउ रे।
हथवा पलास दडा गले मृगछाल रे।
सोने का खडउआ राम क जनेउ रे।
३ राजा दसरथ अगना भूजि सुमित्रा रानी भल चौर
लपकि झपकि चौर दूनौ हाथे चौर।
रामचन्द्र बरुआ भुइयाँ लोटि जाय जनेउवा के कारन ॥
राजा दसरथ झारिनि झूरिन जाँघ बठाइनि।
देब बेटा सोने के जनेउ जनेउवा बडा उत्तिम ॥—वही, पृ० २४२।

से क्षत्रियो का यज्ञोपवीत ग्रीष्म म होना चाहिए—लोकगीत मे इसका भी निर्वाह किया गया है।[१]

(३) यज्ञोपवीत के गीतो की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनम चित्रित वातावरण आद्योपांत गम्भीर, सात्विक और मर्यादाबद्ध रहता है। शृङ्गारिकता की कही झलक तक नही आने पाती। इस सिद्धान्त की रक्षा के लिए इस अवसर के सारे नेगी नाई, माली, कुम्हार, लोहार पुरुष होते हैं किन्तु इसके विपरीत विवाह मे अवसर पर आयोजित 'नहछू' मे शृङ्गारिकता का पर्याप्त पुट रहता है। इसलिए उसमे पुरुष क स्थान पर स्त्री नेगहारिनी की योजना की जाती है। तुलसी के 'नहछू मे प्राप्त शृङ्गारी वणन उसे विवाह सस्कार से घनिष्ठरूपेण सम्बद्ध सिद्ध करत हैं।

(४) तुलसी ने अपनी अन्य कृतिया मे—यहाँ तक कि रामचरित मानस म भी, यज्ञोपवीत सस्कार को अपेक्षित महत्त्व नही दिया है। मात्र एक चौपाई म कुमार होने पर चारो भाइयो को गुरु, पिता तथा माता द्वारा 'जनेऊ प्रदान करना और उसके पश्चात् गुरु के घर जाकर राम का अल्पकाल म ही सभी विद्याओ म निष्णात हो जाना बताया गया है। उनकी किसा रचना म इस अवसर पर आयोजित नहछू का निर्देश नहीं है। यह वृत्त भी उत्तरी भारत मे प्रचलित जनेऊ' सम्बन्धी लोकगीतो के अनुकूल ही है।

(५) तुलसी ने महाराज दशरथ द्वारा चारो भाइयो के नामकरण, चूडाकरण और यज्ञोपवीत सस्कारा का साथ साथ आयोजित होना बताया है। इसके दो कारण थे—एक था सबका प्राय समवयस्क होना और दूसरा था आगे-पीछे करने म रानियो के बीच मनोमालिन्य उत्पन्न होने की सम्भावना। पर तु जनकपुर से प्राप्त सूचना क अनुसार केवल राम का विवाह करने के लिए उनका बारात सजाकर ले जाना दिखाया गया है। यह दूसरी बात है कि राम का

---

१ भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरगृह पढ़न गये रघुराइ। अलप काल बिद्या सब आई॥
—रामचरित मानस, बाल० २०२।३।४।

२ जनमे एक सग सब भाइ। भोजन सयन केलि लरिकाइ॥
करनबेध उपवीत बियाहा। सग सग सब भये उछाहा॥
—वही, अयो० १०।५, ६।

३ महाभारत के रामोपाख्यान मे केवल राम के विवाह का उल्लेख है, उसमे धनुभङ्ग तथा अन्य तीनों भाइयों के विवाह की कोई चर्चा नहीं है। सम्भ

विवाह हो जाने पर बाद मे शेष तीनो भाइयो की भी उसी घर की तीन कन्याओ के साथ भाँवरें पड गई। इस विचार से 'राम विवाह' के साथ ही 'रामलला-नहछू' मे सम्बधित नहछू विषयक लोकाचार का पृथक रूप से वर्णन सगत था किन्तु उसे एक साथ आयोजित चारो भाइयो क यज्ञोपवीत के साथ जोड देना अनुचित ठहराया जावा।

इन असगतियो के होते हुए 'नहछू' को यज्ञोपवीत के अवसर पर अनुष्ठित मानना तथ्यो की ओर से आँख मूँद लेना है।

(ख) नहछू विवाह के समय का है और मिथिला मे हुआ—इस मत के पुरस्कर्ता हैं सम्पूण तुलसी साहित्य के सिद्धाततिलककार अयोध्या के महात्मा श्रीकात शरण।

राम विवाह की ऐतिहासिक परिस्थितियो को देखते हुए यह स्वीकार करने में कोई अडचन नही दिखाई देती कि राम का नहछू सस्कार महाराज दशरथ के अयोध्या से बारात लेकर मिथिला पहुँचने के बाद और विवाह के पूर्व मिथिला म ही हुआ होगा। परन्तु तुलसी ने 'मायन 'नहछू आदि कृत्या का अयोध्या मे होना और उनमे राम-लक्ष्मण की उपस्थिति दिखा कर इसकी यथार्थता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। श्रीकातशरण जी ने अपनी धारणा की पुष्टि राम चरित मानस में निर्दिष्ट कल्पभेद सिद्धान्त के अनुसार रामचरित की विभिन्नता का साम्य प्रस्तुत करके की है और इसी नियम के अनुसार जनकपुर म कृत्रिम अयोध्या निर्मित कर 'नहछू' का उत्सव करने की बात लिखी है।[1]

वत यह वाल्मीकि रामायण के पूववर्ती लोक परम्परा मे प्रचलित किसी आख्यान पर आधारित है। बाद की रामकथा मे वाल्मीकि रामायण के अनुसार उक्त दोनों प्रसङ्गों का समावेश हो गया किन्तु लोकमानस उसी प्राचीन वृत्त को सँजोए रहा जो लोकगीतों मे अब तक सुरक्षित है। 'रामलला नहछू' मे इसकी छाया उसी माध्यम से आई हो तो कोइ आश्चर्य नहीं।

१ 'श्रीरामजी के अवतारो एव उनके चरितो मे ऐसे भेद कल्पभेद के माने जाते हैं। जसे कि गोस्वामी जी ने ही श्रीरामचरित मानस में परशुराम पराजय प्रसग, धनुषभग के साथ उसी मडप मे लिखा है और फिर उसी चरित को अपने गीतावली रामायण मे उन्होंने ही वाल्मीकीय रामायण की रीति से बारात लौटने के समय माग मे लिखा है, यथा—'जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अतिमयहारी (गी० ३ ३८)। यह भेद कल्पभेद का है। किसी

श्रीकान्तशरण जी की यह उपपत्ति एक दूरारूढ कल्पनामात्र प्रतीत होती है। परशुराम प्रसग के जो दो भिन्न उदाहरण उ हाने दिये है, उनके उत्स राम कथाश्रित किसी न किसी प्राचीन ग्र थ मे मिल जाते हैं। इसीलिए तुलसी की कृतियो में लक्षित तत्सम्बन्धी भेद निराधार नहा कहा जा सकता। किन्तु कृत्रिम' अयोध्या वाली उनकी कल्पना वाल्मीकिरामायण की परम्परा मे निर्मित परवर्ती रामायणा, सस्कृत के ललित रामकाव्या, जैन एव बौद्ध रामचरिता—आदि स्रोतो मे से किसी के द्वारा समर्थित नही है।

इसकी अपेक्षा मिथिलावासियो की 'लहछूगीत' म अभिव्यक्त वह धारणा कही अधिक स्वाभाविक और विश्वसनीय कही जा सकती है, जिसमे कृत्रिम अयोध्या का झमेला न खडा कर खुले रूप मे राम का नहछू जनकपुर मे होना स्वीकारा गया है और नेगिहारिना के निछावर माँगने पर राम के द्वारा उन्हे अयोध्या लौटने पर मनचाहा नेग देने का आश्वासन दिलाया गया है।[1]

(ग) नहछू विवाह के समय का है किन्तु हुआ है अयोध्या मे ही। तुलसी ने प्रस्तुत रचना मे इन दोनो बातो का स्पष्ट रूप मे उल्लेख किया है। इन पक्तिया के लेखक का मत है कि रचयिता के एतद्विषयक निर्देशा को प्रकृत रूप म स्वीकार करने मे कोई बाधा नही उपस्थित होती। वस्तुत होनी भी नहा चाहिए क्योंकि रचना की निर्माण-प्रक्रिया, समय स्थल तथा प्रयोजन के सम्ब ध म कृतिकार का ही साक्ष्य सर्वाधिक विश्वसनीय एव अन्तिम माना जाता है। जब तक इस

कल्प में इस रीति से लीला हुइ है। यथा—

नाना भांति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
कल्पभेद हरिचरित सोहाये। भांति अनेक मुनीसन्ह गाये।
करिय न ससय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी। ?

मानस, बा० ३३/६,७,८।

इस नियम के अनुसार किसी कल्प मे श्रीरामजी के 'मायन' एव 'नहछू' आदि कृत्यो के उत्सवानद की लालसा से बारात के साथ श्री अयोध्या जी के नेगी एव मातागण तथा निछावर लेने के लिए याचक आदि गये थे। उस कल्प मे श्री जनकपुर में ही जनवास के पास कृत्रिम श्री अयोध्या नगर एव श्रीदशरथगृह तथा माडव आदि बने थे। वहीं पर उक्त 'मायन' और 'नहछू' के कृत्य हुए थे।

—रामलला नहछू (सिद्धात तिलक), उपोद्घात, पृ० १,२।

१ मैथिली लोकगीत (डा० अणिमा सिंह) पृ० ४४८।

विषय मे जो मतभेद प्रदर्शित किये गये हैं, उनका मूल कारण आलोचको अथवा टीकाकारो का शुद्ध भ्रम रहा है, 'रामलला नहछू' और उसके रचयिता की शब्दावली नही। आलोचको को यह ध्यान ही नही रहा कि वे जिस रचना की समीक्षा करने जा रहे हैं वह लोकगीत शैली की है, अत उसकी प्रकृति एव परम्पराओ को समझ कर तदनुकूल सिद्धान्तो के द्वारा उसका मूल्याकन करें। ऐसा न करके उसे इतिहास एव साहित्यशास्त्र के नियमो की कसौटी पर कसा गया। इस विवेकहीन पद्धति का अनुसरण करने से कुछ गण्यमान्य विद्वानो को तुलसी ऐसे समर्थ मर्यादानिष्ठ एव जागरूक कवि की लेखनी से नि सृत पक्तियो मे स्थान स्थान पर शिथिलता, अनैतिहासिकता, अश्लीलता, आदि दोषो की भरमार दिखाई पडी।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी की प्रामाणिक रचनाओ और उनके रचना-क्रम पर विचार करते हुए 'रामलला नहछू' की विशद समीक्षा प्रस्तुत की है। उनके पहले और बाद मे भी अब तक उतने विस्तार से उक्त ग्रथ पर विषय तथा शैली की दृष्टि से विचार नही किया गया है।

गुप्तजी ने नहछू' को विवाह के अवसर पर अयोध्या मे अनुष्ठित तो स्वीकार किया है किन्तु कुछ आपत्तियो के साथ। उनका सबसे सबस बडा एतराज इस बात पर है कि जब विवाह के सारे कृत्य मिथिला मे हुए और उसके पूव राम अयोध्या आय ही नही तो 'नहछू' का अयोध्या म होना कैसे लिख दिया गया? इसे वे तुलसी की पहली और अक्षम्य ऐतिहासिक भूल मानते हैं। उनके इस मत का समर्थन कुछ अन्य विद्वानो ने भी किया है। 'नहछू' के अनुष्ठान स्थल के सम्बन्ध मे व्याप्त सारी भ्रातियो एव आपत्तियो की जड यही ग्रन्थि है। अत इसका विश्लेषण एव अन्वीक्षण आवश्यक है।

लोकगीत शैली मे निर्मित 'रामलला नहछू' म ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव घोषित करने के पूर्व सुधी आलोचकों को यह देखना चाहिए था कि नागर साहित्य की भाति लोकगीतो मे घटनाओ के कालक्रम तथा कार्यकारण सम्बन्ध का निर्वाह नही पाया जाता। लोककाव्य का उद्गम स्थल समष्टि मानस है। समाज का मन एक स्वर मे बध कर ही गीत का रूप धारण करता है—इस प्रक्रिया में विशेष का परिहार होकर सामान्य ही अवशिष्ट रह जाता है[1]—भावो का साधारणीकरण तभी सम्भव है। लोककवि साधारणीकृत भाव को

---

१ नागमती के विरह वर्णन मे जायसी ने इस लोकव्यापी भावना का सत्कार

स्वर एव लय प्रदान करता है—इसीलिए जन-मन वे अपने भाव और उनसे सवलित गीन सबके अपने भाव एव गीत बन जाते हैं। लोकगीतो मे वर्णित 'राम' और आज के देहातो 'रामदीन' के नहछू मे तत्वत कोई अन्तर नही होना चाहिए वह रहता भी नही है। राम विवाह के समय ससुराल में ही थे, लोककवि के लिए उनकी यह विशेष परिस्थिति उपेक्षणीय है, वह तो सामान्यतया समाज म विवाह के पूर्व घर पर आयोजित 'नहछू' का ही वणन करेगा—क्योकि लोकाचार सम्मत होने से वही सर्वग्राह्य और सर्वोपयोगी हो सकेगा 'नहछू' क मागलिक अवसर पर वही आदर्श गीत की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगा।

लोकगीतो मे रामविवाह के पूर्व अयोध्या मे होने वाले इस 'नहछू' की एक बद्धमूल परम्परा थी। एक गीत म अवसरोचित सभी लोकाचारो—नहछू के पूर्व वर का स्नान करना गोत्र की स्त्रियो को बुलावा भेजना, नहछू के अवसर पर समागत स्त्रियो द्वारा न्योछावर, नाइन का नेग के लिए ठनगन करना, कौशल्या का उसको आश्वासन देना आदि का विस्तार से वणन किया गया है[1]—

के यह पोखरा खनावा घाट बधावा रे।
रामा केहकर भरहिं कहार राम नहवावें रे॥
राजा दसरथ पोखरा खनावा औ घाट बधावा रे।
कौसिला के भरहिं कहार राम नहवावें रे॥
घर घर फिरहि नउनिया गोतिनी बटोरै रे।
आज राम जिव कै नेहछू सबै कोइ आवै रे॥

करते हुए चित्तौर की महारानी के मुख से सामान्य ग्रामीण वियोगिनी स्त्रियों के उद्गार व्यक्त कराये हैं—

तप लाग अब जेठ असाढ़ी। भइ मो कह यह छाजनि गाढ़ी॥
साठि नाहि लाग बात को पूछा। बिनु जिय भएहु मूज तनु छूछा॥
बरसहि नन चुव घर माहाँ। तुम्ह बिनु कत न छाजन छाहाँ॥
—पद्मावत, ३०/३५६—१,३,६।

१, डा० माता प्रसाद गुप्त की स० १६६५ वाली नहछू की प्रति मे 'नहछू' विषयक प्रचलित लोकगीत की बहुत सी पक्तियाँ शब्दश पाई जाती है। इससे भी इस मान्यता को बल मिलता है कि तुलसी को नहछू' रचना की प्रेरणा लोकगीतों से ही प्राप्त हुई थी।

के दीन चुटकी मुँदरिया के दीना रूप रे ।
के दीना रतन पदारथ भरिगा है सूप रे ॥
कौसिला दिहिन चुटकी मुदरिया सुमित्रा दिहिन रूप रे ।
केकइ दिहिन रतन पदारथ भरिगा है सूप रे ॥
मडवै झगरै नउनिया निछावरि थोर रे ।
आजु राम जिव के नेहछू म लेबो ढेर रे ॥
का तू झगरौ नउनिया नेवछावरि थोर रे ।
राम बियहि घर ऐहैं मैं देवो करोरि रे ॥[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त को 'रामलला नहछू' की स० १६६९ की जो प्रति मिली है, वह कवि के जीवन काल की है । उसमे उपर्युक्त लोकगीत की बारह पक्तियाँ ज्यो की त्यो मिल जाती हैं ।

मिथिला मे यह 'नहछूगीत' तुलसी के ही नाम से किंचित् परिवर्तन के साथ प्रचलित है । एक विशेष बात यह है कि उसमें गुप्तजी वाली प्रति की कुछ और पक्तिया भी आ गई हैं । भेद केवल इतना है कि जहा हस्तलेख की भाषा भोजपुरी प्रभावित है वहाँ उक्त गीत मैथिली बोली मे है ।[2]

---

१ 'ग्राम साहित्य' मे प० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सग्रहीत 'नहछू' गीत मे निम्नाकित पक्तियाँ और हैं । उनमें तीसरी और अतिम पक्ति मे 'थोर' के के स्थान पर 'घोड' है जो डा० गुप्त की प्रति में 'थोर' हो गया है—
पातरि पातरि अगुली तो भाउनि गोरी ।
करत राम जीव के नेहछू तो घूघुट खोली ॥
पाँच पाट क जाजिम झारि बिछाइय ।
जेकरे जहाँ मन होय तहाँ ते बठय ॥
—ग्राम साहित्य, पृ० २५५ ।

२ चलहु सबहि मिलि देखन शोभा राम क हे ।
आजु सुदिन दिन लहछू राम क हे ॥
जुथ जुथ जब जायथि मगल गावथि हे ।
राम चुमावन हार धाव दिसि धावथि हे ॥
नाओनी ऐली गुनमती वेगि बोलाबिय हे ।
सीताराम चुमावहु चौक बसावहु हे ॥
सोना क नहरनी महा भलो नाओनि गोरिय हे ।
प्रभु जी क वदन निहारि विहसि मुख फेर हे ॥

स्पष्ट है कि तुलसी ने अयोध्या म अनुष्ठित राम के इस नहछू वणन की लोकव्यापी परपरा का सत्कार रामविवाह की विशेष परिस्थितियो की उपेक्षा करके किया।

राम विवाह सम्बन्धी लोकगीतो मे ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना का क्रम यही समाप्त नही होता। अयोध्या म 'नहछू' का यह कृत्य सम्पन्न करने के बाद महाराज दशरथ जनकपुर को बारात ले जाने की तैयारी करते है। हाथी, घोडे सजाये जाते हैं, दूल्हा राम के घोडे की सजावट विशेष प्रकार से की जाती है। बारात के प्रस्थान के समय माता कौशल्या राम की आरती उतारती हैं, आनन्दातिरेक से उनके नेत्रो से आँसू की बूदे ढुलकने लगती है—

कोरे कलस पर न्यिना बरत है कोरी परैया साठी धान रे।
वैसे रामजी के माथ झलक्वै बधे मोर औ पाग रे॥
हाथी साजिन घोडा साजिन साजिन सकलौ बरात रे।
राम के घोडवा सुघर के साजिन मोतियन रची है लगाम र॥
साजि बरात चले राजा दसरथ चदन बिरौवा तर ठाढ रे।
निसरि न आवो रानी कौसिल्या राम के आरती उतारि रे।
धीर धीरे मैया आरती उतारैं दूनौ नयन ढुरै आँसु रे॥

चारो पुत्रो सहित बारात लेकर महाराज दशरथ यथासमय जनकपुर पहुँचते है। इसके बाद धनुप यज्ञ की तैयारी होती है। राम विश्वामित्र के आदेश से धनुष तोडते हैं, तब विवाह सम्पन्न होता है।

इस प्रकार रामविवाह का सम्पूर्ण घटनाक्रम वैसा ही है जैसा समाज म प्रत्येक परिवार मे पुत्र विवाह के समय आज तक होता चला आ रहा है।

धनि तोरे भागि नउनिया चरन छुवौ राम क हे।
भरि सुख करत किलोल सिया धौ राम क हे॥
रामजी तोहे दसरथ सुत लछिमन भ्रात क हे।
नउआ कहै नउनिया यहि विधि तोरा गे।
रामजी क हैत बियाह चढ़न लेब घोडा गे॥
कर जोरि कहै नओनिया किरपा हमरा दीय हे।
कौसिल्या उर हार माथ मोहि दीय हे॥
हार त अवधपुर एतम कतय पाबिय हे।
तुलसी कहै सुख फेरियौ चलब त देब हे॥

—मथिली लोकगीत पृ० ४४८।

लोकमानस ने उक्त 'नहछू' प्रसग के अतिरिक्त राम के चरित मे इतिहास, पुराण या नागर काव्य मे स्वीकृत क्रम की अवहेलना अन्य अनेक स्थलो पर भी की है। रामचरित विषयक लोकगीत मे निरूपित निम्नांकित तथ्यो से स्थिति और स्पष्ट हो जायगी—

(१) प्रसग सीता वनवास का है। वाल्मीकि आश्रम मे पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् वे नाई के हाथ अयोध्या का तीन रोचन भेजवाती हैं—पहला महाराज दशरथ, दूसरा महारानी कौशिल्या और तीसरा लक्ष्मण के लिए। इसके साथ ही वे उसे यह भी ताकीद कर देती हैं कि राम के कान मे इसकी भनक तक न पडे—

पहिल रोचन राजा दसरथ, दुसर कौसिला माई हो।
तिसर रोचन लछिमन देवरा, पपियवा न जानै अधरमी न जान हो॥

कौन नही जानता कि दशरथ की मृत्यु रामवनगमन के समय ही—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार, सीतापरित्याग वाली घटना से बहुत पहले हो चुकी थी, किन्तु लोककवि न शाही मुवर्रिख होता है न इतिहास का प्रोफेसर। उसके सामने तो माता, पिता, सास, ससुर से सम्पन्न एक भरे-पूरे परिवार का चित्र है—एक दशरथ मर गये तो क्या हुआ? ग्राम वधुओं के दशरथ लाखो की सख्या मे जीवित हैं लोककवि की सीता उन्ही के पास रोचन भेजकर वधू का कर्त्तव्य पालन करते हुए कृतार्थ होती है क्योंकि पौत्रजन्म का सम्वाद पाकर जितने प्रसन्न सास-ससुर होंगे, उतना और कोई नहीं। पुत्रवती वधू के लिए अपने सास-ससुर की प्रसन्नता सर्वाधिक मूल्यवान है। लोककवि पति के द्वारा अवहेलिता सीता को इस सौभाग्य से वचित रखना सहन नही कर सकता।

(२) राम के उत्तरकालीन चरित से ही सम्बद्ध एक दूसरे गीत में राम की परधाम यात्रा के पूर्व सीता ने महाराज दशरथ से पति के दुर्व्यवहार की शिकायत की। ससुर ने सभा मे बैठे हुए राम से इसका कारण पुछवाया, राम को बात लग गई। यह सामान्य घटना ही उनके लोकान्तरण का कारण बनी—

जब हम रहे जनक घर राजा रे जनक घर।
सखिया सोने के सुपेलिया पछोरौं मैं मोतिया हलोरौं॥
जब हम पग्ली राम घर राजा दशरथ घर।
जरि बरि भइउ है कोइलिया त जरि के भसम भइउँ॥
सभवा बैठे हैं रामचन्द्र पुछाइन राजा दसरथ।
पुता कवन मिनल दुख दिहउ सखिन सग रोवे॥

हँसि के धनुप उठाइन बिहँसि के पैठिन ।
सीता अन सुख सोवऊ महलिया गुपुत होइ जावै ॥[1]

सास ससुर से भरे-पूरे सयुक्त परिवार मे पति के अत्याचारो से त्राण ससुर ही दिला सकता है । लोकगीत की सीता ने पारिवारिक मर्यादा की रक्षा के लिए दिवगत दशरथ को पुनरुज्जीवित कर लिया। कवि, चाहे वह शिष्ट भाषा का हो या भदेस भाषा का, स्वयभू होता है । वह इतिहास का निर्माता होता है, अनुगामी नही—लोकगीतो के ये दृष्टात इसके प्रमाण हैं ।

इन तथ्यो के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि तुलसी द्वारा वर्णित 'नहछू' विवाह के अवसर का है और यह सस्कार अयोध्या मे निष्पादित हुआ ।

आक्षेप और समाधान

डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'नहछू' की एक और ऐतिहासिक भूल बताई है और वह है कौशिल्या की 'जेठि' अथवा महाराज दशरथ की ज्येष्ठा भ्रातृवधू का उल्लेख—

कौसिल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो ।
नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो ॥[2]

आपत्ति का कारण है रामकथा के किसी स्रोत मे दशरथ के बडे भाई के उल्लेख का अभाव । फिर जेठानी के अस्तित्व का आधार ही क्या ?

कहना न होगा कि इस प्रसग में कवि के अभिप्रेत अर्थ के ग्रहण मे आलोचक की असफलता का कारण परम्परागत लोकरीतिओ की अनभिज्ञता है । जेठि या जेठानी गाँवो मे आज भी केवल सगे ज्येष्ठ भ्राता की स्त्री नही कही जाती बल्कि पूरे कुल या गोत्र मे, दूर के नाते से भी, जो जेठे भाई लगते हैं उनकी स्त्री की सज्ञा जेठानी होती है । मुडन विवाहादि मागलिक अवसरो पर उन्हे यथोचित प्रतिष्ठा दी जाती है और उनके द्वारा लोकाचार सम्पन्न कराये जाते हैं—यहाँ तक कि लडके के विवाह मे यदि अपने वश मे उसका कोई जेठा भाइ नही होता तो चुनरी छोडने के लिए 'ससुर' का कार्य आयु मे बडे फुफेरे और ममेरे भाई करते हैं । इस अर्थ मे रघुवशियो मे दशरथ से आयु मे बडे भाइयो की स्त्रियाँ कौशल्या की जेठानी थीं । उन्ही के आदेश से ये चौक पर पुत्र का

१ ग्राम साहित्य, पृ० २०५ ।
२ रामलला नहछू, ६ ।

नहछू कराने के लिए बैठी थी। रामचरित मानस में केकइ-कोप के प्रसग की निम्नाकित पक्ति मे प्रयुक्त 'जठेरी' शब्द से यह स्पष्ट विदित होता है कि केकई को ममझाने के लिए एकत्रित स्त्रियों मे उनकी जेठानिया भी थी—

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रियपरम केकई केरी॥

इसी प्रकार डा० गुप्त ने 'नहछू' मे दो स्थलो पर जो प्रबध दोष दिखाये हैं वे भी वस्तुत प्रबध दोष न होकर लोकाचार के सूक्ष्म तत्त्वो का आशय हृदयगम करने म विद्वान् समीक्षक की असमर्थताजन्य मिथ्या प्रतीति मात्र हैं।

यह प्रसग नाइनि की 'नहछू' के अवसर पर उपस्थिति से सम्बन्धित है। डा० गुप्त का कहना है कि जब नहछू के आरम्भ में ही नाइनि मौजूद बताई गई है और उसे गारी गाते दिखाया है[1] तो थोडी ही देर के बाद उसके बुलाये जाने का उल्लेख करने का क्या औचित्य है? गुप्तजी की धारणा है कि उक्त प्रसग म यह पता चलता है कि कवि को यह स्मरण ही नहीं रह गया कि वह पीछे राज-प्रासाद में नाइन की उपस्थिति दिखा चुका है इसलिए उसने लोकाचार सम्पन्न करने के लिए आवश्यकतानुसार नाइन के पुन बुलाने की बात लिख दी।

किंतु पूरे प्रसग को दृष्टि म रखकर प्रकृत पक्तियो की समीक्षा करने पर कवि द्वारा निर्धारित घटना क्रम की योजना सर्वथा निर्दोष ठहराती है। इसम उस स्थिति का चित्रण है जब नहछू म सम्मिलित होने के लिए अन्य नेगहारिनो क साथ नाइनि घर स आई है और आनन्द विभोर होकर अन्य मागलिक गीतो के साथ रानियो को गाली गाती हैं। इसके बाद नेहछू कराने के लिए कौशिल्या राम को गोदी म लेकर बैठाती हैं। तब अपनी विशिष्ट भूमिका के लिए उसकी बुलाहट होती है क्योंकि उस उत्सव का प्रधान कृत्य, नाखून काटना, उसी के हाथों सम्पन्न होना है। प्रश्न यह उठता है कि अभी थोडी ही देर पहले जो गा बजा रही थी वह क्षण भर म ही कहा लुप्त हो गई? जिससे उसकी खोज कराना पडी। निम्नाकित पक्तियाँ इसका रहस्य खोल देती हैं—

नाइनि अति गुनखानि तौ बेगि बोलाई हो।
करि सिंगार अति लोन ती बिहँसति आइ हो॥
कनक चुनिन सो लसति नहरनी लिहे कर हो।
आनन्द हिय न समाइ देखि रामहिं वर हो॥

---

१ नैन बिसाल नउनिया भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो॥

—रामलला नहछू ८।

कानन कनक तरीबन बेसरि सोहइ हो।
गजमुकता कर हार कंठ मनि मोहइ हो॥
कर कंकन कटि किंकिनि नूपुर बाजइ हो।
रानि कै दीन्ही सारी अधिक विराजई हो॥[1]

बात यह थी कि नाइनि आरम्भ में घर से अपनी स्थिति के अनुकूल अत्यन्त सामान्य आभूषण एवं कपड़े पहन कर आई थी किन्तु सामन्तीय परंपरा के अनुसार युवराज राम के नहछू संस्कार के उपलक्ष्य में उसे बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिरावन के रूप में दिये गये थे जिन्हें धारण करके ही उसे नहछू कराना था। अतः भीड़-भाड़ से हटकर वह कपड़े बदलने महल के किसी एकान्त कक्ष में चली गई। इसमें स्वभावतः कुछ देरी लगी होगी—विशेष रूप से गहनों के पहनने में। तब तक कौशिल्या जी पुत्र को गोद में लेकर चौक पर आ बैठीं—इसलिए उसे शीघ्र बुलाने के लिए लोग व्यग्र हो गये। हुआ सब कुछ स्वाभाविक रूप से ही, केवल समझने में फेर था। बुलाने के पीछे दूसरा सशक्त तर्क यह है कि ऐसे विशिष्ट अवसरों पर नेगहारा नेगहारिनों की विशेष रूप से मनुहार की जाती है। वे उस समय साधारण प्रजागण नहीं होते, विशिष्ट व्यक्ति होते हैं। बुलाये जाने पर वे नेग के लिए नखरे भी करते है, मनचाही चीजें माँगते हैं। उन्हें बार बार मनाना और बुलाना पड़ता है।

एक ऐसी ही प्रबन्ध त्रुटि 'नहछू' के गारी प्रसंग में बताई गई है। सम्बद्ध पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

काने राम जिउ सावर लछिमन गोर हो।
कीधौं रानि कौसिलहि परिगा भोर हो॥
राम अहैं दसरथ कै लछिमन आन क हो।
भरत सत्रुहन भाइ तौ श्री रघुनाथ क हो॥[2]

डा० गुप्त का कहना है कि उपर्युक्त छन्द की प्रथम दो पंक्तियों में प्राप्त परिहास तर्कश्रृंखला सगत है किन्तु अंतिम दो पंक्तियों में अभिव्यक्त परिहास अंतर्विरोध के कारण भ्रान्तिपूर्ण है। पहले यह कहकर कि एक ही पिता के पुत्र होते हुए भी राम और लक्ष्मण में वर्णभेद का कारण कौशल्या का अपने पति दशरथ के भ्रम में पर पुरुष से गर्भधारण करना है अर्थात् राम औरस पुत्र हैं, फिर तत्काल ही यह घोषित करना कि वस्तुतः राम ही दशरथ की औरस सन्तान है

१ रामलला नहछू १०, ११।
२ वही, १२।

और लक्ष्मण अनौरस, रचयिता की अ यवस्थित मानसिक स्थिति का परिचायक है। मेरी सम्मति में यह गलतफहमी भी लोकगीता की प्रवृत्ति की जानकारी न होने में ही हुई है। सर्न्भित चार पंक्तिया की निम्नांकित व्याख्या से रचयिता का म तव्य स्पष्ट हो जायगा—

नहछू के अवसर पर एकत्र स्त्रियाँ, जिनमे नाइनि, बारिनि, आदि नेगहारिनें भी हैं, गाली गा रही हैं। इन गालिया की मुख्य लक्ष्य हैं महारानी कौशल्या, क्योंकि वे ही गोद में पुत्र को बैठाकर नेहछू करा रही हैं। लगे हाथा वे सुमित्रा और कैकेयी को भी खबर ले लेती हैं। एक स्त्री शका करती है कि एक ही पिता की सतान होने पर भी क्या राम साँवले हैं और लक्ष्मण गोरे। सम्भवत इसका कारण कौशल्या का किसी सावले रग के पर पुरुष से जार सम्बन्ध है। अन्यथा गोरे दसरथ और गोरी कौशल्या का पुत्र भी गोरा ही होना चाहिए था। इस प्रकार कौशल्या को परिहास का लक्ष्य बनाने के बाद स्त्री वर्ग सुमित्रा और कैकेई की ओर झुकता है उनमें से एक बताती है, नहीं, बात ऐसी नहीं है, वस्तुत राम ही दशरथ के औरस पुत्र हैं लक्ष्मण जारज हैं—इस प्रकार सुमित्रा की भी पूजा हो गई। बच रहा कैकेई, वृद्ध पति की नवयुवती पत्नी होने से उनके प्रति किया गया इस प्रकार का परिहास, परिहास न रहकर वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न कर देता, दूसरे कैकेयी का स्वभाव भी उग्र था। इन कारणों से स्त्रियों ने भरत को भी राम की ही भाँति दशरथ का औरस पुत्र कहा, इनके साथ शत्रुघ्न का नाम इसलिए जोड़ दिया गया कि सुमित्रा को प्रथम पुत्र की जन्मदात्री के रूप में पहले ही कलक का सेहरा पहनाया जा चुका था—उनके दूसरे लडके के भी सदिग्ध पितृत्व का उल्लेख परिहास को अवाछनीय सीमा तक पहुँचा देता, इसलिए राम का भाई कहकर उनकी औरसता प्रमाणित कर दी गई।

इस सदर्भ में एक बात ध्यान देने की यह है कि अवध प्रदेश में ही नहीं मिथिला मडल में भी नहछू के जो गीत गाये जाते हैं, उनमें रामलला नहछू की यह गारी इन्हा शब्दा में आज भी विद्यमान है। अन्तर केवल इतना है कि महाराज जनक के महल में और मिथिला की स्त्रियो के द्वारा गाई जाने से उसमे परपुरुष का आशय स्पष्ट करते हुए कौशल्या को उनके समधी जनक से लगाकर गाली दी गई है—

राम जी ता हैं दसरथ सुत लछुमन आन क हो।
रानी कौसिला गेल भार जनक जी के आँगन हो॥[1]

---

१ मथिली लोक गीत पृ० ४४८।

अमर्यादित शृंगार चित्रण

'रामलला नहछू' का सर्वाधिक छीछालेदर उसके शृंगारी चित्रणों का लेकर की गई है। उन्हें ठेठ अथवा उत्तान शृंगार की संज्ञा देकर तुलसी की भद्दी एवं अश्लील रुचि का द्योतक बताया गया है। डा० माताप्रसाद गुप्त की धारणा है कि महाराज दशरथ का अहिरिनि के 'उनरत जोबन' पर लट्टू होना, विशालाक्षी नाउनि का नाखून रँगते समय कटाक्षों से राम को देखना, छबीली तमोलिन और पतली कमरवाली रसीली बारिनि का मनोहर चेष्टाओं से लोगों को आकृष्ट करना, पैर धोते हुए राम का कटाक्षों से नाइनि को देखना, आदि कामोत्तेजक कार्यव्यापारों के वर्णन में दशरथ तथा उनके पार्श्ववर्ती अन्य रसिकों के ब्याज से कवि स्वयं 'कल्पित आनन्द प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा है।' इस विचार सरणि के समर्थक कुछ अन्य विद्वानों ने चार कदम आगे बढ़कर 'नहछू' को 'काम की हीन ग्रंथि से शोभाकुल तुलसी का वचन काव्य' और 'कामशास्त्र' तक कह डाला है।

इस आक्षेप के औचित्य पर विचार करते हुए दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) क्या शृंगार चित्रण की दृष्टि से 'नहछू' में अंकित दशरथ और राम के चारित्रिक आदर्श में तुलसी की अन्य कृतियों की अपेक्षा कोई उल्लेखनीय अंतर पाया जाता है?

---

१ अहिरिनि हाथ दहेंडि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो ॥—रामलला नहछू, ५।

२ अति बड़भाग नउनियाँ छुए नख हाथ सो हो।
नैनन्ह करति गुमान तौ श्री रघुनाथ सों हो।
उपर्युक्त छंद की प्रथम पंक्ति में 'छुए' पाठ न होकर 'छूहे' होना चाहिए जिसका अर्थ होगा 'रंगा', नहछू के अवसर पर नाखून काटने के बाद नाउनि (या नाई) उन्हें लाल रंग से रंगता है।

३ कटि के छीन बरिनिया छाता पानिहि हो।
चन्द्र बदनि मृगलोचनि सब सुख खानिहि हो ॥—वही, ८।

४ अतिसय पुहुपक माल राम उर सोहइ हो।
तिरछो चितवनि आनंद मुनि मुख जोहइ हो ॥—वही, १४।

५ तुलसीदास, पृ० २३२।

६ परिशोध, अंक ११, जनवरी १९७०, पृ० २७ ३३।

(२) क्या 'नहछू' का शृंगार चित्रण लोकगीत परम्परा मे नहछू या विवाह गीतो की अपेक्षा अधिक शृंगारी है ?

जहाँ तक प्रथम का सम्बन्ध है 'नहछू' के दशरथ और राम वही हैं, जो राम-चरित मानस तथा गीतावली के। 'मानस' के दशरथ परिणितवय की पत्नी कैकयी के प्रेमपाश म बुरी तरह आबद्ध हैं। सपत्नी डाह से दग्ध होती हुई कुपिता कैकेई को मनाने के लिए उन्होंने जिस शब्दावली म उसे सम्बोधित किया है वह उनकी घोर रसिकता की व्यजक है—

बार बार कह राउ, सुमुखि, सुलोचनि, पिकबयनि ॥
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥[1]

× × ×

जानमि मोर सुभाव बरोरू। मन तव आनन चद चकोरू ॥[2]

सुन्दर जाँघो की ओर सकेत दशरथ की कामुकता का सबसे बडा प्रमाण है। यह आसक्ति उन्ह अविवेक की सीमा तक पहुँचा देती है—

अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा[3]

कहु कहि रकहि करउ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकारउँ देसू ॥

वाल्मीकि रामायण म तो प्रकट रूप में उन्ही के आत्मज राम ने उन्ह केकयी के प्रेमपाश मे बद्ध कामी घोषित किया है।[4]

इसी प्रकार राम का शील सकोच और मर्यादाबद्ध आचार-व्यवहार 'नहछू' के रगीन वातावरण मे भी सात्विक आभा से परिपूर्ण है। समागत स्त्रियो द्वारा गाई जाने वाली गाली का स्वय को लक्ष्य होते अनुभव कर वे माँ की ओर देख-कर सकुचित हो जाते हैं कि मा के सामने मुझे मे ऐसी गदी गालिया वक रही हैं और वे न जाने क्यों इससे क्रुद्ध होने क बजाय प्रसन्न हो रही हैं।

---

१ रामचरित मानस, अयो० २५ ।

२ वही, अयो० २५ ४ ।

३ वही, अयो० २५-१,२ ।

४ अनाथस्य हि वृद्धस्य मयाचैव विनाकृत ।
किं करिष्यति कामात्मा कैकय्या वशमागत ॥
इद व्यसनमालोक्य राज्ञश्च मतिविभ्रमम् ।
काम एवार्थ धर्माभ्यां गरीयानिति मे मति ॥
—वा० रा०, अयो० ५३/८,९ ।

गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो ॥
रामलला सकुचाहिं देखि महतारी हो ॥[1]

× × ×

दूसह के महतारि देखि मन हरखइ हो ।[2]

इतना ही नहीं आराध्य के परात्पर ब्रह्मत्व में अगाध श्रद्धा और उनके पुण्य चरित के गान-श्रवण की अपार महिमा में जैसी दृढ़ आस्था रामचरित मानस तथा विनय पत्रिका पाई जाती है, नहछू में उसमें तिलभर भी कम नहीं दिखाई देती—

जो पगु नाउनि धोवई राम धोवावइ हो ।
सो पग धूरि सिद्ध मुनि दरस न पावइ हो ॥[3]

इसके पश्चात् हम लोकगीतों में अभिव्यक्त शृंगार भावना से नहछू के शृंगारी वर्णनों की तुलना करते यह देखेंगे कि इस दिशा में अपने उद्देश्य से 'नहछू' कहाँ तक प्रभावित है।

'नहछू' के अनुष्ठान स्थान एवं अवसर की मीमांसा करते हुए हम यह पहले दिखा चुके हैं कि किस प्रकार उसकी सारी सम्बन्धी पंक्तियाँ अक्षरशः लोकगीतों में मिल जाती हैं। तुलसी ने इन गीतों से तो प्रेरणा ली ही उससे कहीं अधिक प्रेरणा उन्होंने ऐसे अवसरों पर सामाजिक जीवन में सर्वत्र दिखाई देने वाली हास-परिहास सम्बन्धी छूट से प्राप्त की। लड़के के विवाह के अवसर पर रसिकता सक्रामक बन जाती है, मर्यादा की लगाम ढीली हो जाती है, जिसका लाभ बालक और युवा वर्ग तो उठाता ही है वानप्रस्थ और संन्यास की अर्हता के दावेदार दादा, बाबा भी मधुर सम्बन्ध के रिश्तेदारों, नेगहारिनों तथा कन्यापक्ष के लोगों से हँसी-मसखरी का भरपूर आनन्द लेते हैं। इस ऋतु का सर्वस्वीकृत न्याय होता है यदि धाम पतिव्रत ताखे धरी और 'फागुन भरि बाबा देवर लागें' जैसी लोक प्रचलित उक्तियाँ ही ऐसे अवसरों पर लोकप्रवृत्ति की मनोनिका होती है। नहछू में महाराज दशरथ का अतिरसिकता के पीछे उनकी स्वभावगत शृंगारिकता के अतिरिक्त वैवाहिक वातावरण सम्बन्धी यह लोकाचार भी है, जिसे परम्परा से सामाजिक मान्यता प्राप्त है। इस पृष्ठभूमि में नहछू के शृंगारी वर्णनों की समीक्षा करने पर सब कुछ सहज, स्वाभाविक लगेगा—न उसमें

---

१ रामलला नहछू, १८।

२ वही, १६।

मर्यादा विरोध दिखाई पडेगा न निश्चय अनग लीला ।

इसी प्रकार 'नहछू' में शैलीगत शैथिल्य के जो उदाहरण डा० माताप्रसाद गुप्त ने उद्धृत किये हैं, वे लोकगीतों की स्वरयोजना तथा शब्द सघटना में अभिज्ञ भावक को नश्वर लगेंगे । 'जाइ हो' का 'जाइय हो' 'समान हो' का 'समानइ हो' बन जाना लोकगीतों की लयव्यवस्था से सर्वथा मेल में है । लोकगीत पद्धति की रचना में भरती के शब्दों का अस्तित्व भी आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता । शब्दों के विकृत रूप देने के लिए प्रतिलिपिकार का प्रमाद ही उत्तर-दायी प्रतीत होता है । वैसे जब तक पाठालोचन के सिद्धान्तों के अनुसार इस ग्रन्थ का वैज्ञानिक सपादन नहीं हो जाता तब तक प्राप्त शब्दरूपों पर आलोचना प्रत्यालोचना निरर्थक ही मानी जायगी । यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि डा० गुप्त का स० १६६५ वाला 'नहछू' का हस्तलेख, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सपादित रामलला नहछू' तथा उसके अन्य प्रकाशित सस्करणों की अपेक्षा लोकगीत शैली से अधिक प्रभावित है, उसमें नहछू सम्बन्धी प्रचलित लोकगीतों की बहुत सी पक्तियाँ शब्दश उद्धृत मिलती हैं । उनमें भी विकृत तथा भरती के शब्दों की कमी नहीं है ।[1]

इसके अतिरिक्त

'आज जनकपुर ब्याह नहछू राम क हो'

तथा—

'जगमग जोति अवधपुर अतिछवि छाजिय'

जैसी परस्पर विरोधी उक्तियाँ भी उसमें हैं । यहाँ एक बार यह बताकर कि आज जनकपुर में राम विवाह है (तो नहछू भी वहीं होना चाहिए) फिर दूसरी ही साँस में यह भी कहना कि अयोध्या को सजाने और ज्योतिर्मय करने की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है (नहछू के मांगलिक उत्सव के उपलक्ष्य में) पाठक को भ्रान्त कर देता है । 'आज' शब्द के कारण वह यह निश्चय नहीं कर पाता कि नहछू वस्तुत अयोध्या में हो रहा है या जनकपुर में ।

इसमें स्पष्ट है कि इतनी प्राचीन प्रति भी जो रचयिता के जीवन काल की है, प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती ।

साराश यह कि रामलला नहछू का स्वारस्य आत्मसात् करने के लिए

---

१ कौसिला के भरिहैं कहार तो प्रभु को नेहवाएव हे ।

× × ×

राम बियाहि कर आएव देवु मए घोर हे ।

—उद्धत, तुलसीदास पृ० २०४ ।

गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो ॥
रामलला सकुचाहिं देखि महतारी हो ॥[1]
× × ×
दूलह के महतारि देखि मन हरषइ हो ।[2]

इतना ही नहीं आराध्य के परात्पर ब्रह्मत्व मे अगाध श्रद्धा और उनके पुण्य चरित के गान-श्रवण की अपार महिमा म जैसी दृढ आस्था रामचरित मानस तथा विनय पत्रिका पाई जाती है, नहछू म उससे तिलभर भी कम नही दिखाई देती—

जो पगु नाउनि धोवई राम धोवावइ हो ।
सो पग धूरि सिद्ध मुनि दरस न पावइँ हो ॥[3]

इसके पश्चात् हम लोकगीतो म अभियक्त शृगार भावना से नहछू के शृगारी वणनो की तुलना करके यह देखेगे कि इस दिशा मे अपने उत्स से 'नहछू' कहाँ तक प्रभावित है ।

'नहछू' के अनुष्ठान स्थल एव अवसर की मीमासा करते हुए हम यह पहले दिखा चुके है कि किस प्रकार उसकी गारी सम्बन्धी पक्तियाँ अक्षरश लोकगीतो म मिल जाती हैं । तुलसी ने इन गीतो से तो प्रेरणा ली ही उससे कही अधिक प्रेरणा उन्होने ऐसे अवसरो पर सामाजिक जीवन म सर्वत्र दिखाई देने वाली हास-परिहास सम्बन्धी छूट से प्राप्त की । लडके के विवाह के अवसर पर रसिकता सक्रामक बन जाती है मर्यादा की लगाम ढीली हो जाती है, जिसका लाभ बालक और युवा वग तो उठाता ही है वानप्रस्थ और सयास की अर्हता के दावेदार दादा, बाबा भी मधुर सम्बन्ध के रिश्तेदारो, नेगहारिनो तथा कयापक्ष के लोगो से हसी मसखरी का भरपूर आनन्द लेते है । इस ऋतु का सर्वस्वीकृत न्याय होता है 'पहि पाछे पनिधन ताखे धरौ और 'फागुन भरि बाबा देवर लागैं जैसी लोक प्रचलित उक्तिया ही ऐसे अवसरो पर लोकप्रवृत्ति की सचालिका होती हैं । नहछू म महाराज दशरथ की अतिरसिकता के पीछे उनकी स्वभावगत शृगारिकता के अतिरिक्त वैवाहिक वातावरण सम्बन्धी यह लोकाचार भी है, जिसे परम्परा मे सामाजिक मायता प्राप्त है । इस पृष्ठभूमि मे नहछू के शृगारी वणनो की समीक्षा करने पर सब कुछ सहज, स्वाभाविक लगेगा—न उसम

१ रामलला नहछू १८ ।
२ वही, १६ ।
३ वही, १४ ।

मर्यादा विरोध दिखाई पडेगा न निबन्ध अनग लीला।

इसी प्रकार 'नहछू' मे शैलीगत शैथिल्य के जो उदाहरण डा० माताप्रसाद गुप्त ने उद्धृत किये हैं, वे लोकगीतो की स्वरयोजना तथा शब्द सघटना से अभिज्ञ भावक को लचर लगेंगे। 'जाइ हो' का 'जाइय हो' 'समान हो' का 'समानइ हो' बन जाना लोकगीतो की लयव्यवस्था के सर्वथा मेल में है। लोकगीत पद्धति की रचना मे भरती के शब्दो का अस्तित्व भी आश्चर्यजनक नही कहा जा सकता। शब्दो के विकृत रूप देने के लिए प्रतिलिपिकार का प्रमाद ही उत्तरदायी प्रतीत होता है। वैसे जब तक पाठालोचन के सिद्धान्तो के अनुसार इस ग्रन्थ का वैज्ञानिक सपादन नही हो जाता तब तक प्राप्त शब्दरूपो पर आलोचना प्रत्यालोचना निरर्थक ही मानी जायगी। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि डा० गुप्त का स० १६६५ वाला 'नहछू' का हस्तलेख, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सपादित 'रामलला नहछू' तथा उसके अन्य प्रकाशित सस्करणो की अपेक्षा लोकगीत शैली से अधिक प्रभावित है, उसमे नहछू सम्बन्धी प्रचलित लोकगीतो की बहुत सी पक्तियाँ शब्दश उद्धृत मिलती हैं। उनमे भी विकृत तथा भरती के शब्दो की कमी नही है।[1]

इसके अतिरिक्त

'आज जनकपुर ब्याह नहछू राम क हो

तथा—

'जगमग जोति अवधपुर अतिछबि छाजिय

जैसी परस्पर विरोधी उक्तियाँ भी उसमे हैं। यहा एक बार यह बताकर कि आज जनकपुर मे राम विवाह है (तो नहछू भी वही होना चाहिए) फिर दूसरी ही साम मे यह भी कहना कि अयोध्या को सजाने और ज्योतिर्मय करने की व्यवस्था अत्यन्त आकर्षक है (नहछू के मागलिक उत्सव के उपलक्ष्य मे) पाठक को भ्रांत कर देता है। 'आज शब्द के कारण वह यह निश्चय नही कर पाता कि नहछू वस्तुत अयोध्या मे हो रहा है या जनकपुर में।

इससे स्पष्ट है कि इतनी प्राचीन प्रति भी जो रचयिता के जीवन काल की है, प्रामाणिक नही मानी जा सकती।

साराश यह कि रामलला नहछू का स्वारस्य आत्मसात् करने के लिए

---

१ कौसिला के भरिहैं कहार तौ प्रभु को नेहवाएब हे।
× × ×
राम बियाहि कर आएब देवु भए थोर हे।

—उद्धत, तुलसीदास पृ० २०५।

उसके विषय तथा शैली तत्व का आलोचन लोकसाहित्य के प्रतिमाना का दृष्टि म रखकर होना चाहिए, नागर साहित्य के शास्त्रीय सिद्धान्तो के प्रकाश म नही। अयथा तुलसी की काव्य प्रतिभा, प्रवृत्ति, समाज-दशन एव उनके द्वारा प्रतिष्ठित चारित्रिक आदशा के सम्बध म इसी प्रकार के अनगल आरोपा का क्रम चलता रहेगा।

मानवता और रामचरित-मानस

रामचरित भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक लोकप्रिय आख्यान रहा है। साहित्यकारों ने समय-समय पर युगमानस को ऊर्जस्वित करने के लिए अपनी व्यक्तिगत साधना और अनुभूति के अनुसार उसे नये साँचे में ढाल कर रूपायित किया है, लोकगायकों ने अपनी अमृतवाणी में माटी की गंध से वासित कर उसे लोकानुरंजन तथा जनशिक्षा का माध्यम बनाया है। तुलसी की लोकव्यापी दृष्टि ने रामकथा की इन सारी परम्पराओं को समेटते हुए आध्यात्मिकता का पुट देकर राम को आदर्श मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसके फलस्वरूप एक व्यक्ति की जीवनगाथा होते हुए भी उसने धर्म ग्रंथ की महत्ता प्राप्त कर ली। विश्वसाहित्य में अन्य किसी काव्यग्रंथ को यह गौरव प्राप्त हुआ हो, यह देखने में नहीं आता। तुलसी ने उसके पठन, श्रवण और रसास्वादन को आत्मशोधन एवं भवसंतरण का सर्वसुगम साधन कहकर प्रकारांतर से निगमागम एवं पुराणों की भाँति ही उसकी पावनता प्रतिपादित की है और लोकमानस ने उनके इन वचनों को ब्रह्मवाक्य के रूप में ग्रहण किया है—

"चली सुभग कविता सरिता सो। रामप्रेम जस जल भरिता सो॥[1]
रामचरित मानस यह नामा। सुनत श्रवण पाइअ बिश्रामा॥[1]
मन करि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई॥[2]
राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥[3]
सादर मज्जन पान किये ते। मिटहिं पाप परिताप हिए ते॥[4]
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥[5]

---

१ राम० बाल, ३८।११।
२ वही, ३४।७, ८।
३ वही, ४२।३,४।
४ वही, ४२।६।
५ वही, १२८।६।

पूर्ववर्ती रामकथाश्रित प्रबन्धो म कहीं ऐतिहासिक, कही दार्शनिक, कही सास्कृतिक ओर कही साहित्यिक दृष्टिकोण को प्रधानता दी गयी थी। तुलसी ने एकागिता से बचकर रामचरित मे मानव-जीवन की महत्त्वपूण समस्याओ का आत्यतिक समाधान प्रस्तुत करने वाले सूत्रो को उजागर किया। पूण सुख शाति एव समृद्धि सम्पन्न समाज का निर्माण अधूरे, विरूप तथा अभावग्रस्त मानव द्वारा सभव नही, इसलिए उन्होंने पथभ्रात मानवता के समक्ष पूण मानव के आदश राम का चरित रखा। ऐसे महापुरुष की जीवन झाँकी प्रस्तुत की, जिसने दशरथपुत्र के रूप मे अवतरित होकर अपने कर्मकौशल से लोकमानस मे परात्पर ब्रह्म की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, जिसने राजपद क वैभव-विलास से अस पृक्त रह कर दानवता से पराभूत और सभ्यता के प्रकाश से वचित मानवता के उत्थान के लिए दर-दर की खाक छानी थी। विश्व मानव क प्रति इस अगाध करुणा एव मैत्री भावना के कारण देशकाल की बदलती परिस्थितियो म समय-समय पर मानवता के जो भी उत्कृष्टतम प्रतिमान निर्धारित होगे 'मानस के राम उससे सदा ही कुछ ऊपर और कुछ आगे दिखाई देंगे।

प्रेरणा एव आधार

रामचरित को आदश के रूप म अपनाने की प्रेरणा तुलसी को समकालीन समाज के विभिन्न वर्गों एव स्तरो के गहरे अध्ययन तथा निजी अनुभव से प्राप्त हुई थी। उनकी बाल्यावस्था घोर दरिद्रता मे कटी थी[1] वैराग्य धारण करने के बाद उन्होंने तीर्थाटन करते हुए सारे देश का भ्रमण कर जनजीवन का बहुत ही निकट से निरीक्षण किया था[2], सत्सग के क्रम में उन्हे विभिन्न धार्मिक सप्रदायो के अनुयायियो क आचार-विचार क पर्यवेक्षण का अवसर प्राप्त हुआ था, जीवन क अन्तिम वर्षों मे जब वे 'तुलसी' के ऊपर उठ कर 'गोसाइ हुए तो बडे-बडे राजे महाराज उनका चरण वदन कर कृतार्थ होने ये इस माध्यम स सामतीय वग से भी उनका परिचय हुआ। इस प्रकार समकालीन समाज के विविध वर्गों और प्रवृत्तियो के व्यक्तियो क जीवन तथा विचार पद्धति का आन्तरिक परिचय प्राप्त कर लेने पर उन्होंने अनुभव किया कि समाज का पूरा शरीर घातक सडन

---

१ बारे ते ललात बिललात द्वारे द्वारे दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चानक को।
—कविता, ७।७३।

२ विनय० २६६।२।

का शिकार हो रहा है। धार्मिक भावना के व्यापक ह्रास से उसके मूलाधार जप, योग तथा वैराग्य तिरोहित हो गये हैं, स्वाध्याय की परम्परा समाप्त हो चुकी है, आये दिन नये-नये पन्थो और सप्रदायो की स्थापना हो रही है, यज्ञदानादि कर्मों का अनुष्ठान अर्थाभाव के कारण बन्द हो रहा है, पाखडी लोग धार्मिक आचार-विचार के नाश के कारण बन रहे हैं, वर्णाश्रम धर्म लडखडा रहा है और लोकमर्यादा के मस्तूल ढह रहे हैं, सारा धार्मिक समाज दुर्वासनाओ का शिकार हो रहा है, राजवर्ग बडा ही छली है, वह प्रजा की रक्षा करने के स्थान पर उसे निगल जाने पर उतारू है, नित्य नये करो से जनता की रीढ टूट गई है, आर्थिक शोषण से निर्धनता बढ रही है, निरंतर पडने वाले दुर्भिक्षो से मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे मे पड गया है, सभी वर्णों के लोगो मे चरित्रहीनता फैल गई है, व्यक्तिगत तथा सामाजिक आचार के पतन से चारो ओर अव्यवस्था का ताडव आरम्भ हो गया है[1], समाज मे विषमता इतनी बढ गई है कि एक ओर वैभव नालियो मे बह रहा है, तो दूसरी ओर लोग दाने-दाने को तरस रहे हैं। मर्यादा तथा निष्ठा के अभाव मे जनजीवन विच्छिन्न हो गया है। मानवी मूल्यो को समाप्त करने वाली सम-सामयिक परिस्थिति का तुलसी ने बडा ही मर्मस्पर्शी चित्र खीचा है। विनाशकारी युग प्रभाव को उन्होंने 'कलि' के नाम से अभिहित किया है और इसका मूल कारण आसुरी वृत्तियो का उत्तरोत्तर विकास बताया है।

इस दयनीय स्थिति से समाज का उद्धार करने के लिए उन्होने शक्तियो के विधर्मी शासन के परिणामस्वरूप जन-मानस मे प्रतिष्ठित हीनभावना, भय, रूढिप्रियता, अविश्वास, सन्देह आदि को दूर करना आवश्यक समझा। इसके बिना आतंकित एव दलित जनता मे अत्याचार, अधर्म और अनैतिकता को प्रोत्साहित करने वाली शक्तियो से लोहा लेने की शक्ति का सचार करना असम्भव था। कहने की आवश्यकता नही कि इस उद्देश्य की सिद्धि मात्र तत्वज्ञान के उपदेशो और कीर्तन भजन के आयोजनो से नही हो सकती थी। वेदोपनिषद्, स्मृतियाँ और पुराण तब भी पढे-गुने जाते थे, निर्गुणिया सन्तो और सूफी फकीरो के असख्य अनुयायी उस युग मे भी धर्मग्रथो के स्वाध्याय और साधना मे कालयापन करते थे। राम और कृष्ण भक्ति के केन्द्रों मे आराध्य युगल की लीला के गान और प्रदर्शन की परम्परा भी अक्षुण्ण रूप से चली आ रही थी। विभिन्न दार्शनिक मतवादो के अनुयायी सन्यासी तथा गृहस्थ तत्त्वनिरूपण, शास्त्रार्थ आदि से ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित रखने मे यथाशक्ति अंशदान करते थे—फिर भी अधकार बढता जा रहा था। विनय पत्रिका मे एक स्थान पर इसका सकेत मिलता है—

---

१ मानस बाल०, ११८३, १८४।१,२,३।

वाक्य ज्ञान अत्यत निपुन भव पार न पावत कोई ।
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई ।।[1]

ऊँचे सिद्धान्त और विचार व्यवहारभूमि में उतर कर ही लोक कल्याण के साधन बनते हैं। जन-मानस का विश्लेपण करने पर उन्हें लगा कि इसका कारण नैतिकता के मूर्त आदर्श का अभाव है—सामान्य लोग अमूत सिद्धात और विचारो से, चाहे वे कितने भी उत्कृष्ट और उपादेय क्या न हो, प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकते। सूरदास की इन पक्तियो मे समकालीन लोकमानस की किंकर्त्त-व्यविमूढ़ावस्था की छाया देखी जा सकती है—

"अविगत गति कछु कहत न आवै।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिन निरालब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावै ।।[2]

युगीन वातावरण का सम्यक् आकलन करने के बाद तुलसी ने अपने गभीर शास्त्रज्ञान के द्वारा यह अनुभव किया कि भारत के साम्प्रतिक इतिहास मे कुछ इसी प्रकार का गतिरोध हजारो वर्ष पूर्व गाथाकाल मे उपस्थित हुआ था, जब रावण के अत्याचारो से समस्त चराचर जगत नारकीय यातना भोग रहा था, पृथ्वी माता उस समय गोरूप म जगन्नियन्ता के समक्ष उपस्थित हो त्राण की भिक्षा मागने के लिए विवश हुई थीं और परात्पर ब्रह्म ने करुणार्द्र हो धर्म-सस्थापना के लिए मानवावतार धारण का वचन देकर उसे आश्वस्त किया था। त्रेता का रामावतार इसी का परिणाम था। लोक मर्यादा के सस्थापक राम का जीवनादर्श अपनाने से ही विधर्मी शासन द्वारा निर्मित आसुरी वातावरण पर विजय प्राप्त की जा सकती है और परतन्त्रता की बेडियो म जकडी भारत भूमि का उद्धार किया जा सकता है, यह उनका स्पष्ट मत था—

मडलीक मनि रावन रासेसि कोउ न सुतत्र ।
भुजबल जगत बस्य करि, राज करै निज मत्र ।।

× × ×

जेहि विधि होइ धर्म निरमूला । सोइ सब करै धर्म प्रतिकूला ।।

× × ×

यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा ।
कामादिहर विग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा ।।[3]

---

१ विनय १२३ ।
२ मानस बाल० १८२।५ ।
३ मानस कि० ३० क ।

भव भेषज रघुनाथ जस सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्हकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिपुरारि ॥[1]

× × ×

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन और अधार ॥

ऐसी अनेक उक्तियों द्वारा तुलसी ने सारी सामाजिक विगगतियों और उनके प्रेरक मानसिक विकारों को दूर करने में रामकथा के अद्भुत प्रभाव का उल्लेख किया है। इससे हताश लोगों में यह विश्वास जगा कि दुःशासन एवं दुव्यवस्था चाहे वह कितनी ही मूलबद्ध और शक्तिशाली क्यों न हो अंततः समाप्त होकर ही रहेगी। इस भावना से प्रजा में संघर्ष करने की ऊर्जा एवं अत्याचारी शासक को दण्डनीय घोषित करने का साहस उत्पन्न हुआ—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥[2]

'रामचरित मानस' ने सर्वमानवीय मुक्ति के लिए अंतःशक्ति उद्बुद्ध कर दानवी वृत्तियों पर विजय पाने का पथ प्रशस्त कर दिया।

विराट् लक्ष्य

शब्दशक्ति से मानवता को प्रभावित कर अधःपतित समाज को ऊपर उठाने का ऐसा महान् लक्ष्य उसी सर्वात्मदर्शी कृतिकार का हो सकता है जिसका मानस पीड़ित मानवता की हृत्तन्त्री से संपृक्त हो चुका हो, जिसका 'स्व' विराट 'अहं' में और विराट् अहं' जिसके 'स्व' मे विलीन हो गया हो। उसी का 'स्वान्तः-सुखाय', 'सर्वान्तः सुखाय' बनने का गौरव प्राप्त कर सकता है। यह 'अन्तःसुख निज सुख शान्ति' अथवा 'परम विश्राम' ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है, यही आत्मोलब्धि है। तुलसी ने इसका आस्वादन किया था—

जाकी कृपा लवलेस तें मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥[3]

अवतार निष्ठा में मानवतावादी दृष्टि

अवतारवाद मानवतावाद का ही नामान्तर है, यह अवतार धारण करने के प्रयोजन की मीमांसा से ही स्पष्ट हो जाता है। यहाँ तक कि मानवेतर योनियाँ—

१ मानस लंका १२१ ख।
२ मानस० अयोध्या०, ७०।६।
३ मानस० उत्तर, १३०।३।

मत्स्य, कच्छप, वाराह म भी विष्णु के अवतार आततायियो का सहार करके मानवधर्म की सस्थापना के लिए ही हुए थे।

(क) मानवावतार—मानवता को गौरव दान

मानव विश्वकर्ता की उत्कृष्टतम सृष्टि है। धर्मसपादन की क्षमता से मडित होने के कारण मनुष्य देह ही भव-सतरण का एकमात्र साधन माना गया है। धर्मसाधना से इसे स्वर्गापवर्ग की प्राप्ति होती है और नान विनान प्राप्त कर यह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। मानव शरीर की प्राप्ति बडे भाग्य स होती है। तुलसी ने इसे देवदुलभ माना है कारण कि भगवत्कृपा का प्रकाश मानव पर होता है, देवता इसस वचित रहते हैं। इसीलिए परात्पर ब्रह्म के दोनो पूर्णावतार—राम और कृष्ण, मानवावतार ही हैं। अ य अवतारो स इनके उत्कर्ष का कारण अपेक्षाकृत अद्भुत तत्व का गोपन एव सहजता का प्रकाश है। लोकशिक्षा पर मात्मा क मर्त्यावतार का मुख्य लक्ष्य होता है। उसकी सिद्धि लोकवत् व्यवहार स ही सभव है। राम की अवतार-लीला क वणन मे तुलसी ने यथासभव अलौकिकता क प्राबल्य को बचाया है। यदि उसका प्रकाशन भी हुआ है तो व्यक्ति विशेष के लिए और स्थानविशेष में—सबके समक्ष और सबके लिए नही। और यह भी इसलिए कि कही पाठक इसे वीरपूजा के रूप मे वर्णित प्राकृत मानव की कहानी न समझ बैठ। यही कारण है जिससे आराध्य के नितान्त नर सुलभ व्यवहारो उद्वेगो एव आचरणो का विवरण प्रस्तुत करते हुए वे निरतर उनक परात्पर ब्रह्मत्व का स्मरण दिलात रहते हैं।

(ख) रामचरितमानस क मानव सुलभ सवेग

रामचरितमानस मे अप्राकृत ब्रह्म की प्राकृत लीला का वृत्त प्रस्तुत किया गया है। ग्र थारम्भ मे जिस लोकानुग्रह अथवा करुणा को निगुणब्रह्म के सगुण रूप धारण करने का मुख्य प्रेरक भाव बताया गया है, रामकथा म उसकी आद्योपान्त व्याप्ति दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त अधैर्य प्रलाप, विरहाकुलता, कठोरता, पक्षपात, ममता आदि मनोभावो का भी उनके जीवन मे विशिष्ट अव सरो पर उद्रेक दिखाई देता है। कही-कही तो वे इतने सहज ढग से अभिव्यक्त हुए है कि अवतार लीला से उनका सम्ब ध प्रतीत ही नही होता। श्रद्धालु पाठको तक को उ ह परात्पर ब्रह्म की नरलीला स्वीकार करने म कठिनाई का अनुभव होता है। जनसामा य उसक पारमार्थिक रूप को भूल कर मात्र लौकिक चरित मानने लगें तो आश्चय ही क्या है? तुलसी ने इस भ्रांति की सभावना अनुमान

कर मानस-प्रेमियो को सगुणलीला की रहस्यमयता से सावधान रहने की चेतावनी देते हुए लिखा था—

निरगुन रूप सुलभ अति, सगुन न जाने कोय ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय ॥[1]

करुणा

राम की शरणागत वत्सलता और पतितपावनी प्रवृत्ति के व्यजक जो वृत्तान्त रामचरित मानस मे सकलित हैं, प्रसग की समीक्षा करने पर उन सबके मूल मे करुणाभाव की ही प्रधानता दिखाई देती है—गौतम के शाप से उनकी शिलाभूता पत्नी अहिल्या का उद्धार, बालि के भय से वन बीहडो म लुक-छिपकर जिन्दगी काटने वाले सुग्रीव का रक्षा तथा किष्किधा का राज्यदान, दडक वनवासी मुनियो को सर्वप्रकारेण सरक्षण प्रदान करने का आश्वासन, नरभक्षी राक्षसो द्वारा मारे गये ऋषियो के अस्थिसमूह को देखकर पृथ्वी को राक्षसहीन करने की प्रतिज्ञा, शरणागत विभीषण को लका राज्य का दान आदि प्रसगो म उस करुणा अथवा जीवदया भाव की अपूर्व छटा दिखाई देती है जिससे रहित मनुष्य को पशु कहने से पशुता भी अपमानित होती है । राम की इस करुणा सवलित उदारता की पराकाष्ठा दिखाई देती है राम रावण युद्ध मे उस अवसर पर जब वे राक्षसो को वैरभाव से स्मरण करने वाले अपने भक्त बताकर रण क्षेत्र मे प्राण त्यागने पर उन्हे मुनिदुर्लभ परमपद प्रदान करते हैं।

कृतज्ञता

गृद्धराज जटायु ने रावण द्वारा हरी जाती हुई सीता की रक्षा में प्राण अर्पित किये थे—राम ने उनका अतिम सस्कार अपने हाथो किया, पिता दशरथ से भी उनके प्रति अधिक ममता दिखाई और अत म सदेह मुक्ति दी । इसी प्रकार हनुमान द्वारा किये गये अनत उपकारो का बोझ आजीवन ढोने म वे गर्व का अनुभव करते रहे ।

(१) सीताहरण के पश्चात् वियोगी राम की लौकिक विरहीनायका की भाँति विह्वलता एव कामासक्ति का वर्णन ।

(२) लक्ष्मण-शक्ति प्रसग म मर्यादा तथा औचित्य की सीमा पार करने वाला प्रलाप ।

---

१ मानस० उत्तर०, ७३ ।

(३) सीता की अग्निपरीक्षा के समय राम का दुर्वाच्य कथन।

(४) अखिल ब्रह्मांड नायक होते हुए भी एक स्थानविशेष—अयोध्या के प्रति उनकी अगाध आसक्ति और बैकुंठ से भी उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन।

मानस के अध्येताओं, कथावाचकों और सहृदय गायकों ने राम की भगवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाने वाले इन प्रसंगों की विविध प्रकार से व्याख्या कर अवतार चरित की अलौकिक महत्ता अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया है। मेरे विचार में इनकी यथार्थता को स्वीकारने से भी रामचरित की गरिमा पर कोई आँच नहीं आती। लोकहृदय उनकी पुरुषोत्तमता का पूजक है—देवत्व का नहीं। ये तथाकथित कमजोरियाँ राम को मानवीय विशिष्टताओं से मंडित करती हैं, उन्हें दिव्य साकेत से उतार कर विधि प्रपंच की रंगस्थली, गुणावगुण समन्वित, जड़ चेतना से संकुचित उस धरती पर ला खड़ा करती हैं जिसका भार उतारने के लिए ही ब्रह्म राम ने अव्यक्त से व्यक्त, असीम से ससीम और नारायण से नर होना स्वीकार किया था। तुलसी इसका मर्म जानते थे। वे इस खतरे से भी अवगत थे कि अवतार-लीला को तर्क की कसौटी पर कसने से श्रद्धालु पाठक भटक जायेंगे। इसीलिए उन्होंने इसका स्पष्ट शब्दों में निषेध किया था—

चरित राम के सगुन भवानी। तरकि न जाहिं करम मन बानी॥[१]

रामायण को 'मानस' का रूप देने वाले शिव का भी यही अभिमत था—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि भवानी॥

ऐसी बात नहीं कि वे अवतार चरित की असंगतियों से अपरिचित थे। एकाध स्थलों पर उन्होंने स्वयं आराध्य के कृत्यों की आलोचना की है—

जेहि अघ बधेउ ब्याध इव बाली। सोइ सुकंठ पुनि कीन्ह कुचाली॥

सोइ करतूति विभीषन करी। सपनेहु सो न नाथ हिय हेरी॥[३]

शरणागत बालि के द्वारा भी इन्होंने राम के मर्यादापुरुषोत्तमत्व और समदर्शिता को चुनौती दिलाई है—

मैं बैरी सुग्रीव पियारा। कारन कवन नाथ मोहि मारा।

धर्म हेतु अवतरेउ गोसाई। मारेहु मोहि व्याध की नाई॥

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास राम के परात्पर ब्रह्मत्व के सम-

---

१ मानस, लंका० ७३।१।

२ मानस, बाल० १२०।३।

३ मानस बाल० २८।६।

४ मानस कि० ८।६।

र्थक होते हुए भी उनकी मानवावतार-लीला को साधारण लोगों के चरित की ही भांति आलोच्य मानते हैं, इसलिए नहीं कि वे रामचरित की उपयुक्त न्यूनताओं की यथार्थता में विश्वास करते हैं बल्कि यह दिखाने के लिए कि शेष के फण पर स्थित धरती पर आकर यहाँ की मर्यादानुसार पूर्ण ब्रह्म भी अपना स्वरूप गोपन कर अपूर्ण मानव सा ही व्यवहार करता है। इसीसे उनका चरित जनसाधारण के अनुकरण योग्य बनता है और अवतार-प्रयोजन की सिद्धि होती है।

लोकानुप्रेरक जीवनदर्शन के मूलाधार

रामचरितमानस के लोकानुप्रेरक जीवन दर्शन[1] के मूल आधार हैं —राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि प्रमुख पात्रों के चरित में आद्योपांत व्याप्त संयम, स्नेहशीलता, निश्छलता, सत्यनिष्ठा आदि मानवीय गुण। कथा के नायक होने से राम का चरित सर्वाधिक प्रशस्त है। व्यक्ति के रूप में अक्षय आत्म-विश्वास, स्थितप्रज्ञता, अनासक्ति, कर्तव्यनिष्ठा, स्वावलंबन, संगठनशक्ति, शौर्य, पराक्रम आदि तत्त्वों से समन्वित उनका अखंड तेजोमय जीवन, कुटुम्बी के रूप में बड़ों के प्रति श्रद्धा, समादर, आज्ञाकारिता और सेवापूर्ण व्यवहार तथा छोटों पर स्नेह-कृपा एवं क्षमाशीलता की अजस्र वर्षा, मित्र के रूप में सौहार्द्र का आजीवन निर्वाह, राजा के रूप में प्रजावर्ग की सुख-सुविधा का निरंतर ध्यान, समत्व पर आधारित समाज व्यवस्था का प्रवर्तन, लोकमत का समुचित सत्कार, ऊँच नीच का भाव त्याग कर वन्य जातियों से घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना, समाज के विभिन्न वर्गों के साथ सभी परिस्थितियों में शीलपूर्ण व्यवहार का निर्वाह, प्रत्यक्ष सम्पर्क से कोल-किरातादि जनजातियों का हृदय परिवर्तन, मानव समाज से ही नहीं पशुपक्षियों तथा जड़ प्रकृति तक से आत्मीयता की स्थापना, व्यक्तिगत सुख सुविधाओं का त्याग कर स्वेच्छया दुख एवं विपत्तिसंकुल जीवन का वरण, असत तथा अन्याय की शक्तियों से आजीवन संघर्ष करते हुए अन्ततः केवल धर्मनिष्ठता तथा चारित्रिक बल से भौतिकतावादी शक्तियों पर विजय

---

१ पुण्यं पापहरं सदाशिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैः दह्यन्ति नो मानवाः ॥
—रामचरितमानस, उत्तर० १३९ २।

(३) सीता की अग्निपरीक्षा के समय राम का दुर्वाद कथन।

(४) अखिल ब्रह्माड नायक होते हुए भी एक स्थानविशेष—अयोध्या के प्रति उनकी अगाध आसक्ति और वैकुठ से भी उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन।

मानस के अध्येताओ, कथावाचको और सहृदय गायको ने राम की भगवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाने वाले इन प्रसगो की विविध प्रकार मे व्याख्या कर अवतार चरित की अलौकिक महत्ता अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया है। मेरे विचार मे इनकी यथाथता को स्वीकारने से भी रामचरित की गरिमा पर कोई आँच नही आती। लोकहृदय उनकी पुरुषोत्तमता का पूजक है—देवत्व का नही। ये तथाकथित कमजोरियाँ राम को मानवीय विशिष्टताओ से मडित करती हैं, उन्हे दिव्य साकेत से उतार कर विधि प्रपच की रगस्थली, गुणावगुण समन्वित, जड चेतना से सकुचित उस धरती पर ला खडा करती है, जिसका भार उतारने के लिए ही ब्रह्म राम ने अव्यक्त से व्यक्त, असीम से ससीम और नारायण से नर होना स्वीकार किया था। तुलसी इसका मर्म जानते थे। वे इस खतरे से भी अवगत थे कि अवतार-लीला को तक की कसौटी पर कसने से श्रद्धालु पाठक भटक जायेगे। इसीलिए उन्होंने इसका स्पष्ट शब्दो मे निषेध किया था—

चरित राम के सगुन भवानी। तरकि न जाहिं करम मन बानी॥[1]

रामायण को मानस का रूप देने वाले शिव का भी यही अभिमत था—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि भवानी॥[2]

ऐसी बात नही कि वे अवतार चरित की असगतियो से अपरिचित थे। एकाध स्थलो पर उन्होंने स्वय आराध्य के कृत्यो की आलोचना की है—

जेहि अघ बधेउ ब्याध इव बाली। साइ सुकठ पुनि कीन्ह कुचाली॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहु सो न नाथ हिय हेरी॥[3]

मरणासन्न बालि के द्वारा भी इन्होंने राम के मर्यादापुरुषोत्तमत्व और समदर्शिता को चुनौती दिलाई है—

मैं बैरी सुग्रीव पियारा। कारन कवन नाथ मोहि मारा।
धर्म हेतु अवतरउ गोसाइ। मारेहु मोहि ब्याध की नाइ॥[4]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास राम के परात्पर ब्रह्मत्व के सम-

---

१ मानस, लका० ७३।१।
२ मानस, बाल० १२०।३।
३ मानस बाल० २८।६।
४ मानस कि० ८।६।

र्थक होते हुए भी उनकी मानवावतार-लीला को साधारण लोगो म चरित की ही भांति आलोच्य मानते हैं, इसलिए नही कि वे रामचरित की उपयुक्त "पूनताओ की यथार्थता म विश्वास करते है बल्कि यह दिखाने के लिए कि शेष के फण पर स्थित धरती पर आकर यहाँ की मर्यादानुसार पूर्ण ब्रह्म भी अपना स्वरूप गोपन कर अपूर्ण मानव सा ही व्यवहार करता है। इमीमे उनका चरित जनसाधारण के अनुकरण योग्य बनता है और अवतार-प्रयोजन की सिद्ध होती है।

लोकानुप्रेरक जीवनदर्शन के मुलाधार

रामचरितमानस के लोकानुप्रेरक जीवन दर्शन[1] के मूल आधार हैं--राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि प्रमुख पात्रो के चरित मे आद्योपात व्याप्त सयम, स्नेहशीलता, निश्छलता, सत्यनिष्ठा आदि मानवीय गुण। कथा के नायक होने स राम का चरित सर्वाधिक प्रशस्त है। व्यक्ति के रूप मे अभय आत्म-विश्वास, स्थितप्रज्ञता, अनासक्ति, कर्तव्यनिष्ठा, स्वावलबन, सगठनशक्ति, शौय, पराक्रम आदि तत्वो स समन्वित उनका अखड तेजोमय जीवन, कुटुम्बी के रूप म बडो के प्रति श्रद्धा, समादर, आज्ञाकारिता और सेवापूर्ण व्यवहार तथा छोटो पर स्नेह-कृपा एव क्षमाशीलता की अजस्र वर्षा, मित्र के रूप मे सौहार्द्र का आजीवन निर्वाह, राजा के रूप म प्रजावर्ग की सुख-सुविधा का निरतर ध्यान, ममत्व पर आधारित समाज व्यवस्था का प्रवर्तन, लोकमत का समुचित सत्कार, ऊच नीच का भाव त्याग कर वन्य जातियों से घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना, समाज क विभिन्न वर्गों के साथ सभी परिस्थितियो म शीलपूर्ण व्यवहार का निर्वाह, प्रत्यक्ष सम्पर्क स कोल किरातादि जनजातियो का हृदय परिवर्तन, मानव समाज स ही नहीं पशुपक्षियो तथा जड प्रकृति तक से आत्मीयता की स्थापना, व्यक्तिगत सुख-सुविधाओ का त्याग कर स्वच्छया दुख एव विपत्तिसकुल जीवन का वरण, असत तथा अन्याय की शक्तियो म आजीवन सघर्ष करते हुए अन्तत केवल धर्मनिष्ठता तथा चारित्रिक बल से भौतिकतावादी शक्तियो पर विजय

---

१ पुण्य पापहर सदाशिवकर विज्ञानभक्तिप्रद
मायामोहमलापह सुविमल प्रेमाम्बुपूर शुभम्
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये
ते ससारपतङ्गघोरकिरण दह्यन्ति नो मानवा ॥
—रामचरितमानस, उत्तर० १२६ २।

प्राप्ति—आदि कार्यव्यापारों में उनकी लोकवादी साधना साकार हो उठी है ।

पुराणों के विष्णु ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए मानवावतार ग्रहण कर मानवता को गौरव दिया था । मानस के राम ने अपनी लोकलीला में मानवीय गुणों के अद्भुत प्रकाश से भगवत्ता की प्रतिष्ठा बढ़ाई । उनका मर्यादापुरुषोत्तमत्व, परात्परब्रह्मत्व, का पर्याय बन गया । पहले भगवत्ता मानवता में परिणत मात्र हुई थी । तुलसी के राम में वह पूर्णतया लीन हो गई ।

रामभक्ति—मानवता की अंतिम शरणागति

रामकथा के व्यापक प्रचार द्वारा आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि और उसका लोकमंगल में विनियोग ही रामचरित मानस का मुख्य आग्रह है । तुलसी का यह दृढ़ विश्वास था कि इसके श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन से लोगों के हृदय में रामचरणों में प्रगाढ़ आसक्ति उत्पन्न होगी ।

जे यहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ।
होइहैं रामचरन अनुरागी । कलिमल रहित सुमंगल भागी ॥[1]

मनोवैज्ञानिक पद्धति

इस धारणा की पुष्टि बड़ी ही मनोवैज्ञानिक पद्धति पर करते हुए वे कहते हैं ।

कहेउ नाथ हरि चरित अनूपा । व्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥[2]
जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई । जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥[3]

परिचय से विश्वास, विश्वास से प्रीति, प्रीति से श्रद्धा और श्रद्धा से भक्ति—लौकिक प्रेमभावना की भाँति ही आध्यात्मिक विकास की भी यही प्रकृत प्रणाली है । मानस में इन स्थितियों का चित्रण ही नहीं हुआ है, हनुमान, विभीषण, सुग्रीव, अंगद, शबरी आदि के चरित्र में इनके विकास का भी निरूपण किया गया है । इस क्रम से प्रतिष्ठित रामभक्ति साधक का अंतर्मल धो देती है जिससे जन्म जन्मान्तर से जमी हुई कुसंस्कारों की काई छूट जाती है । तुलसी का यह दृढ़ मत है कि अन्य किसी भी साधना-पद्धति से इनका अत्यंताभाव संभव नहीं है—

१ मानस बाल० १४।१० ।
२ मानस उत्तर० १२२।१ ।
३ मानस उत्तर० ८८।७ ।

राम भगति जल बिनु खगराई । अभिअन्तर मल कबहुँ न जाई ॥

संस्कारमार्जन

गोस्वामी जी की धारणा थी कि प्रारब्ध से प्राप्त कुसंस्कारों की भाँति ही मनुष्य जीवन को यातनामय बनाने वाले मोह, लोभ, काम, क्रोधादि मनोविकारों के नाश की भी रामभक्ति ही एकमात्र औषधि है । इसके श्रद्धापूर्वक सेवन से मानव समाज मानसिक स्वास्थ्यलाभ कर लौकिक उत्कर्ष और पारमार्थिक सिद्धि के पथ पर अग्रसर हो सकता है ।

मोह सकल व्याधिन कर मूला । तिन्हते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥ [1]
यहि विधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भय प्रीति वियोगी ॥[2]
रघुपति भगति सजीवनि मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥[3]
जो परलोक इहां सुख चहहू । बचन हमार मानि हृद गहहू ॥

ये पंक्तियाँ असंख्य मानस रोगों से ग्रस्त मानवता के प्रति तुलसी की अपार सहानुभूति और उनके पंजे से मानव जीवन को मुक्त करने के लिए उनके करुणार्द्र हृदय की छटपटाहट व्यक्त करती हैं ।

रामभक्ति के विलक्षण प्रभाव का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि एक बार हृदय में प्रतिष्ठित हो जाने पर फिर वह कभी जाती नहीं । उसका दिव्य प्रकाश अंधकारधर्मी दुष्प्रवृत्तियों का मूलोच्छेद कर देता है—

राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहु ताके ॥
व्यापहि मानस रोग न भारी । जिन्हके बस सब जीव दुखारी ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसत भगति जाके उर माहीं ॥[4]

सुगम मार्ग

इसकी सबसे बड़ी विशेषता है सुगमता सुलभता । कर्म, ज्ञानादि साधना की भाँति न तो यह श्रमसाध्य है न प्रयत्न साध्य । इसकी प्राप्ति की एकमात्र शर्त है सरलता, निष्कपटता और संतोषवृत्तिपूर्ण जीवनचर्या—

"कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न जप तप व्रत उपवासा ॥[5]
सरल सुभावन मन कुटिलाई । जथालाभ संतोष सदाई ॥

---

२ मानस उत्तर० १२०।२६ ।
३ मानस उत्तर० १२१।१ ।
४ मानस उत्तर० १२१।७ ।
५ मानस उत्तर० ११६।६,८५ ।
१ मानस उत्तर० ४५।१ ।

इसके अधिकारी जीव मात्र हैं—

"एहि विधि जीव चराचर जेते । त्रिजग जीव सुर असुर समेते ॥¹
अखिल विस्व यह मोर उपाया । सब पर मोरि बराबरि दाया ॥

सर्वहारा का अवलंब

यों तो राम की कृपादृष्टि सब पर, सब समय और समान रूप से रहती है, किंतु उसका विशिष्ट पात्र मानवता का वह वर्ग होता है जो उपेक्षित है, अभावग्रस्त है और अघ पतित है । पतित पावन के संस्पर्श से वह निष्कलुष बन जाता है—

सरन गए मोसे अघरासी । होहिं सुद्ध नमामि अविनासी ॥²

लोकोन्मुखी अध्यात्म साधना

ऐसे भक्तवत्सल की सर्वस्वसेव्य भाव से आराधना करके मनुष्य अनेक जन्मों की साधना के अनन्तर कठिनता से प्राप्य मुक्ति को अनायास—मात्र सम्मुखता मपान्न में प्राप्त कर सकता है—

'राम भजत सोइ मुक्ति गोसाईं । अनइच्छित आवइ बरिआई ॥³
सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं । कोटि जन्म अघ नासहुँ तबहीं ॥

इस प्रकार रामभक्ति के माध्यम से तुलसी ने समाज को अध्यात्मोन्मुख करने के लिए जिस महान् अनुष्ठान का सूत्रपात किया उसका आधार व्यक्ति का अंत परिष्कार था और रामभक्ति का प्रचार वैयक्तिक साधना के रूप में ही किया गया था । अधोमुखी समाज को ऊर्ध्वमुखी बनाने का यही मार्ग था । इसके माध्यम से तुलसी ने मानवता को एक नई जीवनदृष्टि दी एक नया रास्ता दिखाया जिसका अनुसरण करने के लिए किसी प्रकार के भौतिक साधना या संबल की आवश्यकता नहीं थी, एतदर्थ श्रद्धा, विश्वास या मानसिक परिष्कार भी पुरस्सर आध्यात्मिक पृष्ठभूमि भी अनिवार्य नहीं थी—भाव, कुभाव, अनख, आलस्य किसी भी प्रकार और शौच अशौच, किसी भी स्थिति में रामनाम जप से उसकी प्राप्ति हो सकती थी । इसके लिए घर छोड़ कर जंगलों में धूनी रमाने की जरूरत नहीं थी । अपेक्षा मात्र इतनी थी कि वह अति निवृत्ति और

---

१ मानस उत्तर० ८६।६ ।
२ मानस उत्तर० १२३।८ ।
३ मानस उत्तर० ११८।४ ।

अति प्रवृत्ति से बचते हुए योग और भोग के बीच का रास्ता पकड कर—नामस्मरण के द्वारा अपने और आराध्य के बीच का सम्पर्क सूत्र सम्हाले रहे। भगवान बुद्ध ने सद्धर्म के प्रचार से मानव चरित्र को ऊपर उठाने का यही मार्ग विधेय ठहराया था—तुलसी भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे—

घर कीन्हे घर जात है, घर छोडे घर जाय।[1]
तुलसी घर बन बीच रहु, राम प्रेम पुर छाय॥

यह 'रामपुर' रामराज्य का केन्द्र है। ऐसा रामराज्य जिसमे समत्व, शांति और सम्पन्नता का अखण्ड निवास है। जहाँ के नागरिकों मे परस्पर स्नेह-सद्भावना है, रागद्वेष का नामोनिशान नही, दुखदारिद्रय फटकने नही पाता, अधिकार लिप्सा से विरत होकर जहा सभी अपने कर्तव्यपालन मे व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार तुलसी ने रामभक्ति के माध्यम से वैयक्तिक उन्नयन को चरमसीमा पर पहुँचा कर लोकोत्थान का साधन बनाया और प्रत्येक व्यक्ति को विश्वनागरिकता प्राप्त करने का अधिकारी माना। यही उनकी अध्यात्माश्रित लोक साधना है।

लोकनायक तुलसी ने इस प्रकार व्यष्टि साधना को समष्टि-साधना मे परिणत कर 'भक्तिपथ' का रूप दे दिया। मानव सुलभ दुर्बलताओ से रक्षा के लिए उन्होंने अनासक्ति एव विवेक को इसका अभिन्न अंग ठहराया। इससे इसकी दिग्विजय का पथ प्रशस्त हो गया—

"बिरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि॥"

लुप्तप्राय मानवीय आदर्शों की पुनप्रतिष्ठा के लिए समाज का जिस प्रकार के सत्याग्रही, दृढ, अदम्य एव भावप्रवण आध्यात्मिक पथनिर्देश की आवश्यकता थी—रामचरित मानस द्वारा उसकी प्रशसनीय ढग से पूर्ति हुई।

लोकोन्मुखी भाषा शैली

राम की भाँति उनके अक्षरविग्रह, रामचरित मानस, का भी प्राकट्य लोकमगल के लिए हुआ था। अत रचयिता की दृष्टि उसे लोकग्राह्य बनाने की ओर बराबर लगी रहे। तुलसी का काव्यादर्श इसी भावना से प्रेरित था—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥[2]

इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक था कि उसकी रचना लोकभाषा

---

१ दोहावली २५६।
२ मानस० बाल० १३।९।

में की जाय, क्योंकि वही सबको समझ मे आ सकती थी। इस विषय में एक अड़चन यह थी कि परंपरा से समादृत धर्मग्रंथों की भाषा उस समय भी संस्कृत ही थी और लोकप्रसिद्ध रामकथाओं—वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म रामायण आदि का निर्माण भी संस्कृत में ही हुआ था। लोगों के हृदय में चाहे वे साक्षर हो या निरक्षर संस्कृत भाषा के प्रति विशेष सम्मान का भाव था, देव अथवा देवाधिदेव की कथा, स्तुति और अर्चना के लिए देववाणी की उपयोगिता स्वतः सिद्ध थी। किंतु तुलसी के समकालीन समाज मे उसके पढ़ने समझने वालों की संख्या नगण्य हो गई थी। वह सिमट कर धार्मिक कृत्यों और धर्मग्रंथों मे जीवित रह गई थी—लोकजीवन की मुख्यधारा से उसका सम्पर्क टूट चुका था। तुलसी रामकथा को लोकशिक्षा का सशक्त माध्यम बनाना चाहते थे। इसलिए भी उसकी रचना देशभाषा मे करना अनिवार्य था। उधर संस्कृत मे अतिलोकनिष्ठा को देखते हुए उसे भी उचित सम्मान देना था। उन्होंने मानस के प्रत्येक कांड के मंगलाचरण और देवस्तुतियों में उसको स्थान देकर परंपरावादी प्रवृत्तियों का सत्कार किया। प्रतीत होता है कि इसके बावजूद उनके मन मे आराध्य के पावन चरित को 'निगमागम' की भाषा त्याग कर ग्राम्यभाषा में लिखने की ग्लानि बनी रही। मेरे विचार मे इसका कारण लोकभाषा में किसी प्रकार की न्यूनता अथवा अक्षमता न होकर तत्कालीन धर्माश्रयी विद्वद्वर्ग का संस्कृत के प्रति मोह और लोकभाषा के प्रति तीव्र जुगुप्सा एवं विरोध की भावना थी।

"राम सुकीरति भनित भदेसू। असमंजस अस मोहि अंदेसू॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालवचन मन लाई॥"

उन्होंने ग्राम गीतों मे प्राप्त रामचरित के सहज माधुर्य एवं काव्य सौन्दर्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया था इसलिए प्रबंध रचना के लिए लोकभाषा के सामर्थ्य पर उन्हें रंचमात्र संदेह नहीं रह गया था।

कालान्तर में भाषा सम्बन्धी उनका यह अंतर्द्वन्द्व समाप्त हो गया। सर्वमानवीय कल्याण-भावना की प्रेरणा से उन्होंने संस्कृत का पल्ला छोड़ कर लोकभाषा के ही पक्ष में निर्णय किया—

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साच।
काम जो आवै कामरी, का लै करव कुमाच॥
× × ×
स्याम सुरभि पय विसद अति। करहिं गुनद सब पान॥
गिरा ग्राम्य सिय राम जस। गावहिं सुनहिं सुजान॥

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि तुलसी ने रामकथा को ग्राम्य भाषा मे वर्णित करने की प्रेरणा सीधे लोकजीवन से प्राप्त की थी—यह बात दूसरी है कि उसका स्वरूप निर्माण उन्होंने संस्कृत के विशाल वाङ्मय का सहारा लेकर किया।

संयोगवश उनके आरंभिक जीवन का अधिकाश अवध प्रदेश मे बीता था। अयोध्या रामोपासना का सर्वप्रतिष्ठित केन्द्र था, उनके गुरु का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। नरहरिदास की साधना भूमि 'सूकर खेत' अयोध्या के पास पड़ती थी, वही बाल्यावस्था म इन्होंने गुरुमुख से रामायण की अनेक आवृत्तियाँ सुनी थी, अत मानस की रचना वही की बोली म हुई। राम की जन्मभूमि की भाषा होने से तुलसी का उसके प्रति आकर्षण एवं आदरभाव स्वाभाविक था।

काव्य म वर्णित तथ्यो एव भावो को जनमानस म उतारने के लिए भाषा का सरल, सुबोध, सरस एव प्रवाहपूर्ण होना आवश्यक है। सहज अभिव्यक्ति ही उसकी प्राणशक्ति है। अत काव्य शास्त्र के ममज्ञ और अर्थ-अक्षर के सामर्थ्य से अवगत होते हुए भी तुलसी ने कही भी प्रतिभा प्रदर्शन का प्रयास नही किया। यह बात दूसरी है कि उनकी परा वाणी मे सारे काव्य गुण स्वत ही सिमट आये हो। उनकी दृष्टि काव्य के आत्मपक्ष के सवारने पर थी, देहतत्व के सजाने पर नही। रामभक्ति के स्वारस्य को लोक हृदय म यथार्थ रूप मे प्रतिष्ठित कर देने में ही वे काव्य प्रतिमा की सार्थकता मानते थे और इसी म कवि कर्म की इतिश्री समझते थे—

"बिधु बानी सब भाँति सवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥"

"भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ। रामनाम बिनु सोह न सोऊ॥

इसी भावना ने उन्हें प्राकृत जनो के गुणगान से विरत किया। किसी व्यक्ति की प्रशंसा करने मे चाहे वह कितना ही प्रतिष्ठित और वैभव सपन्न क्यो न हो, सरस्वती का अपमान होता है, ऐसा उदात्त विचार सासारिक प्रलोभनों एव आकर्षणो से मुक्त मानवीय मूल्यो के पारखी का ही हो सकता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि राजाओ एव दरबारी काव्य की भर्त्सना करने वाले तथा सामता और सामन्तीय संस्कृति के विषाक्त प्रभाव से समाज की रक्षा करने वाले इस जनवादी कवि को वादाग्रही आलोचक आज सामन्तवाद का पोषक बताने लगे हैं

"गहि न जाइ रसना काहू की कहौ जाहि जो सूझै"।

इधर रामचरितमानस मे अभिव्यक्त राम के चरित की मानवीय न्यूनताओ की भाँति ही तुलसी के भी मानवता विषयक दृष्टिकोण की भी तीव्र आलोचना

होने लगी है। कहीं-कहीं तो इसने उग्र स्थूल विरोध का रूप ले लिया है। उन्हें ब्राह्मणवादी, शूद्रविरोधी और नारी निंदक कह कर सामाजिक सद्भाव एवं एकता का विरोधी घोषित किया गया है। इन आक्षेपों पर संस्कारयुक्त चित्त से तत्कालीन ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिवेश को दृष्टिपथ में रख कर विचार करने की आवश्यकता है। हमें यह न भूलना चाहिए कि तुलसी आज से लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए थे, जब शताब्दियों की विधर्मी राज्य-व्यवस्था से आक्रांत जनता अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए जूझ रही थी। वर्ण व्यवस्था जो कभी कर्मणा थी उस समय तक आते-आते जन्मना हो गई थी और उसी के लौहावरण के भीतर अपने सांस्कृतिक दाय को छिपा कर सजोने में व्यस्त थी। बाहरी आघातों से व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवनादर्शों में दरारें पड़ गई थीं और उन्हीं दरारों के कारण मनु द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था का गढ़ ढहने की स्थिति में आ गया था। तुलसी को सांस्कृतिक प्रहरी के रूप में इन सारे छिद्रों और दरारों को भरकर हताश तथा किंकर्तव्यविमूढ़ जनजीवन को नया दिशा देनी थी। प्राचीनता को एकदम उखाड़ फेंकने से इसकी सिद्धि संभव नहीं थी—उन्हें जिस समाज को लेकर चलना था, जिसका परिष्कार करना था वह पुरातनताप्रिय था—क्रांतिकारी परिवर्तन के झटके से भड़क जाता। इसलिए उन्होंने आध्यात्मिक की ही तरह लोक सामाजिक जीवन के क्षेत्र में भी अतिवादिता का त्याग कर मध्यममार्ग का अनुसरण किया। उन्होंने जहाँ एक ओर वर्णव्यवस्था के कट्टर समर्थक के रूप में ब्राह्मण, शूद्र और नारी सम्बन्धी परंपरा प्राप्त विचारों का समर्थन किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने वैष्णव भक्ति आंदोलन द्वारा प्रवर्तित सुधारवादी दृष्टिकोण के प्रसार में देशकाल की बदली हुई परिस्थिति को देखते हुए ब्राह्मणों के गिरते हुए चारित्रिक आदर्शों की खुलकर आलोचना की, शूद्रों को वशिष्ठ जैसे युगाराध्य ब्राह्मण और भरत जैसे लोकवंद्य क्षत्रिय से गले मिलाया, और स्त्री पराधीनता को समाज का अभिशाप बताया—

'कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥'

उनकी यह संतुलित दृष्टि समाज के सभी वर्गों पर पड़ी। धार्मिक मत-मतान्तरों, सामाजिक जीवन के आचरणगत सम्बन्धों और वैयक्तिक जीवन के नैतिक मूल्यों में परिव्याप्त मानवता के स्वस्थ विकास के अवरोधक तत्वों पर उन्होंने निर्मम प्रहार किये, विघटनकारी प्रवृत्तियों को निर्मूल करने संगठन तथा सद्भावना के विकास के लिए उन्होंने रूढ़िवादी शास्त्रविदों, पंडितों और पुरोहितों के स्वार्थ पद लोलुपता नेतृत्व को अस्वीकार कर समाज के उद्धार का

उत्तरदायित्व सता का सौंपा। उनकी यह धारणा थी कि व्यक्ति और लोक का समन्वय समदर्शी सता का निस्पृह तथा पावन व्यक्तित्व ही कर सकता है—लोकमत और वेदमत दोनों से सतमत को वरीयता देने का यही रहस्य था—

"सत हृदय सतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी॥"

रामचरितमानस में निरूपित उच्च मानवीय मूल्यो के द्वारा विश्वकल्याण की जो कल्पना तुलसी ने की थी कालातर में वह साकार हुई। मध्यकालीन अपकारधर्मा सामतवाद तथा रूढिजजर सामाजिक मान्यताओं के महल ढह कर रहे। अंग्रेजी शासन के साथ पाश्चात्य, ज्ञान-विज्ञान से आलोकित आधुनिक युग का पदार्पण हुआ। राजनीतिक चेतना के इस अभूतपूर्व जागृति काल में भी युगावतार गांधी ने तुलसी के 'रामराज्य' को ही सर्वोदय भावापन्न आदर्श राज्य व्यवस्था स्वीकार किया। इतना ही नहीं उन्होंने मानस प्रतिपादित नाम महिमा में दृढ़ आस्था रखते हुए 'रामनाम' को ही जीवन तथा जगत की सारी समस्याओं की महौषधि बताया और उसकी आजीवन साधना कर 'रामनाम' का स्मरण करते हुए एक सच्चे रामभक्त की भाँति अपनी ऐहिक लीला सवरण की।

यह कहा जा चुका है कि तुलसी ने आध्यात्मिक जीवन को ही सर्वोपरि माना था और राजनीतिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन के उत्थान में उसकी भूमिका अनिवार्य बतायी थी। भारतीय स्वतंत्रता आदोलन का सूत्रपात ही धार्मिक राष्ट्रीयता के रूप में हुआ। गांधी और विनोबा के नेतृत्व में तो उसने पूर्णतया आध्यात्मिक रूप धारण कर लिया—तुलसी ने 'धर्मरथ प्रसग' में वैज्ञानिक उपलब्धियों से सुसज्जित विश्वविजयी रावण पर भौतिक साधना के अभाव में भी वनवासी राम की विजय का कारण उनका अदम्य उत्साह और उच्चकोटि की नैतिकता बताया है। गांधी ने राम के इस आत्मजयी व्यक्ति तत्व से प्रेरणा प्राप्त कर अंग्रेजी साम्राज्यशाही से भारतभूमि का उद्धार किया। रामचरित भारतीय स्वतंत्रता सग्राम में कितना प्रेरक रहा है, इसका पता असहयोग आदोलन के समय निर्मित साहित्य से लगता है।

आज विज्ञान की अनियंत्रित प्रगति और भौतिकता के असतुलित विकास ने मानव सभ्यता को रामायण काल की ही भाँति विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है। आसुरी शक्तियों का जाल जल, थल और अतरिक्ष चारों ओर फैल गया है। अपना देश राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो गया है किन्तु स्वतंत्रता के फल—सुख एव शांति से सर्वथा वंचित हैं। ऐसे घोर सास्कृतिक सकट के समय समाज के मानवीय तत्वों की पुनर्स्थापना के लिए रामचरितमानस को नये सिरे से पढ़ने-सुनने का नहीं, समझने की जरूरत है।

तुलसी की लोकाराधना

तुलसीदास लोकदर्शी कवि थे। समकालीन जनजीवन की पीड़ा, प्रतारणा और हीनावस्था ही उनकी काव्यरचना का प्रेरणास्रोत था। लोकमानस से तादात्म्य स्थापित कर उन्होंने अपनी कृतियों में उसका सच्चा प्रतिबिंब उपस्थित किया। उनके तीव्र संवेदनशील मानस में युग का जीता-जागता स्वरूप उतर आया। प्राकृत जन को उद्वेलित करने वाली परिस्थितियाँ उनकी निजी अनुभूति बन गई। तुलसी साहित्य में स्थान-स्थान पर अत्याचार तथा अभाव से क्षुब्ध लोकवाणी की गूँज सुनाई पड़ती है। कहना न होगा कि उसके अन्तर्गत मुगल कालीन जन-जीवन का जो चित्र उपलब्ध है, वेतनभोगी शाही इतिहासकारों तथा विदेशी सैलानियों के सतही विवरणों में उसकी झलक भी नहीं दिखाई देती। दण्डनीति पर आधारित यवन शासन दुःख दारिद्र्य से त्रस्त जनता का शोषण कर रहा था।[1] उसके अधीनस्थ सामंत और राजकर्मचारी प्रजापीड़न में अपने मालिकों को भी मात देते थे। क्या किसान और क्या मजदूर सभी जीविका विहीन होकर पेट की ज्वाला में भस्म हो रहे थे।[3] अकाल तथा महामारी के प्रकोप से चतुर्दिक त्राहि त्राहि मची हुई थी।[4] हिन्दुओं के देवालय भ्रष्ट किये जा रहे थे।[5] धार्मिक जीवन में दंभ और पाखंड का एकाधिकार

---

१ दोहावली, ३४६, कवितावली, ५।३२।

२ प्रभु ते प्रभु गन दुखद अति, प्रभुहिं सभारे राउ।
करतें होत कृपान को, कठिन घोर घन घाउ॥ दो० ५०।

३ कवितावली, ७।६७।

४ वही ७।८१, रामचरितमानस, ७।१०१।५।

५ तुलसी देवल देव को, लागो लाख करोरि।
काग अभागे हगि भरयो, महिमा भई कि थोरि॥

दोहावली, ३८४।

था।[1] तीर्थ अनाचार के केन्द्र हो गये थे।[2] अयोध्या और काशी ऐसे नगरतीर्थों की तो बात ही क्या चित्रकूट[3] जैसे पहाडी तीर्थ भी कलि प्रभाव से अछूते नही बचे थे।

शताब्दियो की पराधीनता से सामाजिक जीवन मे अनेक विकृतियाँ आ गई थी। हिन्दुओ मे भी कब्र-पूजा आरम्भ हो गई थी।[4] भूतप्रेत, डाकिनी-शाकिनी में लोगो की आस्था बढ रही थी।[5] पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि विकराल रूप धारण कर चुकी थी। सगे सबधी खून के प्यासे दिखाई देते थे।[6] कर्तव्य की अवहेलना और अधिकार-लिप्सा सीमा पार कर रही थी।[7] अकर्मण्य आलोचको और प्रवचको की कमी न थी।[8] स्वार्थ की विभीषिका से सामाजिक जीवन यातनामय हो गया था।[9]

---

१ सुरसदननि तीरथ पुरिन, निपट कुठाट कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज॥

—वही ५५८।

२ मुख्य रुचि होत बसिबे को पुर रावरे,
राम तेहि रुचिहि कामादि घेरे। विनय, २१०

३ चित्र कूट गए हौं कलि की कुचालि देखि,
अब अपडरनि डरयौ हौं। विनय, २६६।

४ दोहावली, ४९६।

५ दोहावली, ६५, ६२।

६ सहवासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक प्रवीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं, तुलसी खग मृग मीन॥

दोहा० ४०४।

७ सासु ससुर गुरु मातु पितु, भयो चहैं सब कोइ।
होना दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ॥

दोहावली ३९१।

८ ठाढ़ो द्वार न दै सकैं, तुलसी जे नर नीच।
निदहिं बलि हरिचद को, का कियो करन दधीच॥

—वही, ३८८।

९ हरो चरहि, तापहिं बरत, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत जन, परमारथ रघुनाथ॥

—वही, ५२।

तुलसी की अंतर्भेदिनी दृष्टि समाज के इस जर्जर ढाँचे पर पड़ी। उन्होंने उसके निगूढ़ गह्वरों में छिपी व्याधियों और उनके पोषक कीटाणुओं को देखा। कवितावली में विराट् पुरुष के हृदय में बढ़ते रावण रूपी राजरोग का जो बिम्ब प्रस्तुत किया गया है, उसके मूल में वस्तुतः युगबोध ही है। लोकपीड़क मुगल शासन और विश्व-परितापी रावण की रीति-नीति में उन्हें अद्भुत साम्य दिखायी पड़ा। प्रकट रूप से तो उन्होंने इसका उल्लेख एकाध स्थल पर ही किया है, किन्तु परोक्षरूप से उनकी समस्त रचनाओं में आसुरी प्रकृति का जैसा वर्णन किया गया है, वह तत्कालीन शासक वर्ग के आचार-व्यवहार से पूरी तरह मेल खाता है। रावण ने सारे संसार की सम्पत्ति लूट कर जिस पूँजीवादी साम्राज्य की स्थापना की थी, राम ने जन जातियों के सहयोग से उसका मूलोच्छेद करके असुरों के ही नियंत्रण में उसे एक नई व्यवस्था प्रदान की थी। तुलसी को यह गाथाकालीन संदर्भ साम्प्रतिक स्थिति में बड़ा ही प्रेरक प्रतीत हुआ। साधनहीन जाति का उद्धार असुर संहारक राम का लोकानुप्रेरक चरित्र ही कर सकता है, इसमें उनकी दृढ़ आस्था हो गयी। अतः तद्ग्रस्त समाज के उद्बोधन के लिए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती निर्गुणमार्गी संतों की भाँति चेतावनी तथा दार्शनिक तत्व विवेचन का मार्ग न अपनाकर लोकग्राह्य कथा पद्धति से राम के लोकपावन चरित का आदर्श प्रस्तुत करके दर्शन को जीवन में उतारने का स्तुत्य प्रयास किया। इस माध्यम से अध्यात्म तत्व की प्रतिष्ठा हो जाने पर सारी समस्याएं हल हो सकती हैं, और दुःखाब्धि से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है। उनका दृढ़ विश्वास था—

जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥[1]
मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

अत्याचारी शासन से त्रस्त जनता के लिए उनका यह उद्घोष कितना आशाप्रद और धैर्य बधाने वाला था—

राज करत बिनु काज ही, करत कुठाट कुसाज।
तुलसी ते कुरराज ज्यों, जैहैं बारह बाट॥
राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलि काल।[2]
जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल॥

इस सुदृढ़ आध्यात्मिक आधार के साथ ही उन्होंने परंपरागत सांस्कृतिक

---

१ रामचरितमानस, बाल ३१।२।
२ दोहावली, ४१७।
३ रामचरितमानस, १।२७।

मूल्यों की रक्षा के लिए जनता को सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा भी प्रदान की—

> सहि कुबोल साँसति सकल, अगइ अनट अपमान।
> तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गये सुजान ॥[1]

लोकोपासना का राजपथ–रामभक्ति

लोकजीवन के प्रत्यक्ष अनुभव से तुलसी की यह धारणा बन गयी थी कि उसका उत्थान व्यक्तिगत नैतिकता के उत्कर्ष से ही संभव है। व्यक्ति की अधोगति के मूल में राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ हो या पूर्वजन्म के संस्कार, प्रत्येक दशा में मनोभावों का परिष्कार हुए बिना भवातप से आत्यंतिक मुक्ति नहीं मिल सकती। कुंठाएं, सन्त्रास, मानसिक द्वंद्व और दारिद्र्य सबका कारण मनुष्य की वैषयिक वृत्ति है। उसी के नियंत्रण और उन्नतीकरण से भौतिक अभावों एवं भयप्रद परिस्थितियों के बीच संतोष एवं सुख का अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकार की मन स्थिति अध्यात्म साधना में प्राप्त होती है। किन्तु कर्म, अहर्तायें अपेक्षित हैं, वे जनसाधारण की पहुँच से बाहर हैं। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर उन्होंने रामभक्ति का अत्यंत लोकग्राह्य स्वरूप प्रस्तुत किया है—

> सम संतोष विचार विमल मति सत भगति ये चारि दृढ करि धरु।
> काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेस करि परिहरु ॥
> स्रवन कथा मुखनाम हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा करि अनुसरु।
> नयन निरखि कृपा समुद्र हरि अग जग रूप भूप सीता बरु ॥
> इहै भगति वैराग्य ग्यान यह हरितोषन यह सुभ व्रत अचरु ॥[2]

सभी वर्गों और स्थितियों के मनुष्य ही नहीं सारा चराचर जगत इसका अधिकारी है।[3] मनुष्य की अंत सर्व बाह्य व्याधियों[4] तथा मनोगत अंधकार को दूर कर यह सहज ही उस तत्वज्ञान को प्राप्त करा देता है, जिसे योग और

---

१ दोहावली, ४६६।

२ विनय, २०५।

३ अखिल बिस्य यह मोर उपाया। सब पर मोरि बराबर दाया।
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सबते अधिक मनुज मोहि भाए ॥

४ यहि विधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी।
रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनुपान श्रद्धा मति पूरी ॥

ज्ञान मार्ग के अनेक कष्टसाध्य स्तरों को पार करने के बाद भी विरले ही साधक प्राप्त कर पाते हैं—

रघुपति भगति बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसीदास कह चिद्विलास, जग बूझत बूझत बूझै।। विनयपत्रिका।

स्वल्प ज्ञान से आत्मविश्वास का उदय होता है। शक्ति केन्द्र से सम्बद्ध हो जाने से मनुष्य में साहस, निर्भयता आदि भावों का उदय होता है और वे उसके स्वभाव के स्थायी अंग बन जाते हैं फिर वह किसी भी सासारिक शक्ति से पराभूत नहीं हो सकता और न दूषित सामाजिक वातावरण ही उसे मिटा पाता है।[1] आराध्यदेव की शक्तिशाली भुजाओं द्वारा अहर्निश सुरक्षित रहकर वह निर्भय विचरता है—

तुलसी जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सुसेवत रीझत थोरे।[2]
कहा भव भीर परी तेहि धौं, विचरे धरनी तिनसों तिनतोरे।।

जन-नायक राम

राम भक्ति की ओर लोकहृदय को आकृष्ट करने के लिए तुलसी ने रामचरित के ऐसे तत्वों एवं प्रसंगों को उभारा जो लोकस्तर के सर्वाधिक मेल में थे। आराध्य के परात्पर ब्रह्म युवराज और महाराज रूप का साधारणीकरण तुलसी की विशेषता है। रामचरितमानस का प्रतिपाद्य ही राम की भगवत्ता है, किन्तु उनकी अवतारलीला प्राकृत नरलीला के रूप में ही प्रस्तुत की गई। एकाध स्थलों पर जहाँ अलौकिकता का प्रदर्शन हुआ भी वह अत्यन्त गोपनीय ढंग से और ऐसे घनिष्ठ संबंधियों के समक्ष जिनके द्वारा उसके लोकप्रचार की संभावना नहीं थी, बाल्यावस्था में वे नगर के सामान्य बालकों के साथ अयोध्या की गलियों की मिट्टी और धूल में खेले थे, किशोरावस्था में पत्नी और भाइयों सहित उन्होंने सभाओं और नागरिकों के साथ सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित होकर रंग-

---

१ भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम को लेत नितैहौं।
मोको न लेनो न देनो कछू कलि भूलि न रावरे ओर चितैहौं।।
जानि कै जोर करौ परिनाम तौ तू हो मितैहैं पै मैं न भितैहौं।
ब्राह्मण ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्यों ही तिहारे हिते न हितैहौं।।
कवितावली ७।१०२।

२ वही, ७।४६।

रेलियाँ मनाई थी। वनवास के समय कोल-किरातो से घुलमिल कर उनकी जीवनधारा को नया मोड़ दिया था। रिम, बानर आदि अधसम्य जातियों के अत्याचारी शासक को समाप्त कर सुख और शांतिपूर्ण जीवनयापन में सहायता की थी और उनका लोकमोहक सौन्दर्य तथा चेष्टाएँ नागरिकों को मुग्ध करती हैं। बाल्यावस्था में सखाओं के साथ भौंरा चकडोरी खेलते और पतंग उड़ाते हुए देखकर नगरवासी लोग आनन्दमग्न हो जाते हैं। जनकपुर मे नगरदर्शन के समय स्त्री पुरुष काम काज छोड़कर उनके दर्शन के लिए टूट पड़ते हैं, स्त्रियाँ पुष्पो की वर्षा[1] कर उनका स्वागत करती हैं। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं आनन्द की वर्षा होती चलती है।

वन-पथ मे जो उन्हे एक बार देख लेते हैं, आत्म-विस्मृत हो जाते हैं—स्थान स्थान पर उनका स्वागत होता है, लोग दूर दूर तक साथ लगे हुए चले जाते हैं और रात मे विश्राम का प्रस्ताव करके सेवा का अवसर प्राप्त करना चाहते हैं।

लोकजीवन को आनन्दपूर्ण बनाने और उस आनन्द में स्वयं मग्न होने मे राम की गहरी अभिरुचि तुलसी द्वारा प्रस्तुत झूला तथा वसंतलीला के वर्णनों से व्यक्त होती है, जिसमे ऐश्वर्य तथा मर्यादा को भूलकर वे सखाओं, बंधुओं और स्त्री समाज के साथ नगर की गलियों मे घूम घूमकर हाथ में पिचकारी और कंधे पर अबीर की झोली लटकाये हुए स्वांगियों तथा विदूषकों के बीच हुड़दंग का आनन्द लेते हुये दिखाई देते हैं—

खेलत बसंत राजाधिराज। देखत नभ कौतुक सुर समाज ॥[2]
सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ। झोलिन्ह अबीर पिचकारी हाथ ॥
उत जुवति जूथ जानकी संग। पहिरे पट भूषन सरस रंग ॥
नूपुर कटि किंकिनि अति सोहाइ। ललना गन जब जेहि धरत धाइ ॥
लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ। छाड़ा है नचाइ हा हा कराइ ॥
चढे खरनि विदूषक स्वांग साजि। करै कूटि निपट गई लाज भाजि ॥
नर नारी परस्पर गारी देत। सुनि हँसहिं राम भाइन समेत ॥

प्रगीत मुक्तकों में कवि की अंतवृत्ति को खुलकर खेलने का अवसर मिलता

---

१ हिय हरषहिं बरसहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि वृन्द।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ, तहँ-तहँ परमानंद॥
(रामचरितमानस बाल-२२१)

२ गीतावली, उ०।२२।

है। इसी से राम का नागरिको के साथ इतना सम्पृक्त, इतना घुलामिला दिखाया जा सका। इस प्रकार की रसमयी लीलाओ से लोकजीवन को तो महत्व मिला ही, राम के लोकनायकत्व की सार्थकता भी प्रतिपादित हो गयी। सुख-दुख सभी स्थितियो मे आश्रितो के साथ कधे से कधा मिलाकर रहने वाला ही उनके गले का हार हो सकता है, तुलसी इस तथ्य से पूर्णतया अवगत थे।

लोक सस्कृति का चित्रण

राम कथा के अन्तर्गत लोकप्रचलित सस्कारो, उत्सवो, प्रथाओ एव व्रतोत्सवो के अनगिनत प्रसग आये हैं। रामचरित मानस, रामलला नहछू, जानकी मगल, पार्वती मगल, गीतावली और कवितावली मे इसके बडे ही सश्लिष्ट एव रोचक विवरण प्रस्तुत हुए हैं। इनसे गृहस्थ जीवन की अतर्धाराओ से तुलसी का प्रगाढ़ परिचय प्रकट होता है। इस सबध मे एक ध्यान देने की बात यह है कि उन्होने लोकजीवन मे प्रचलित ऐसी अनेक प्रथाओ को भी प्रकृत रूप मे चित्रित कर प्रकारान्तर से उपादेय ठहराया है जिनमे लोकमानस से अपरिचित आलोचको को अश्लीलता और गँवारूपन की गध आती है।

रामलला नहछू मे अकित महाराज दशरथ की गहरी रसिकता का व्यजक एक चित्र देखिये—

> अहिरिनि हाथ दहेडि सगुन लेइ आवहिं हो।[1]
> उनरत जोबन देखि नृपति मन भावहिं हो॥

इस अवसर पर स्त्रियो द्वारा गाई गई गारी का उल्लेख ही नहीं ब्योरा भी दे दिया गया है—

> काहे राम जिउ सावर लछिमन गोर हो।
> कीधौ रानि कौसिलहिं परिगा भोर हो॥
> राम अहहिं दसरथ कै लछिमन आन क हो॥[2]

मुडन तथा विवाह मे स्त्रियाँ 'स्वाग' भर कर केलि कौतुक करती हुई 'रत-जगा' करती हैं इसका भी निर्देश है—

> हिलि मिलि करहिं सवाग, सभा रस केलि हो।[3]
> नाउनि मन हरषाइ, सुगधिन मेलि हो॥

---

१ रामललानहछू ४।
२ वही १२।
३ रामलला नहछू, १८।

'राम विवाह' के समय गारी का रूप और निखरता है। जनकपुर की स्त्रियाँ भात के समय महाराज दशरथ, बरातिया, उनके कुटुम्ब की स्त्रियों का नाम ले लेकर गाली गाती हैं—

जेवँत देहि मधुर धुन गारी। लेइ लेइ नाम पुरुष अरु नारी॥[1]
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥

गारी का प्रसग यही समाप्त नही होता। तुलसी को यह प्रथा इतनी प्रिय[2] थी कि लकादहन के समय वे हनुमान के पाहुन रूप में उपस्थित अग्निदेव के भोजन के समय रागनिया द्वारा गारी से सत्कार कराना नही भूलते—

पाहुने कृसानु पवमान सो परोसो,
हनुमान सनमानि के जेवाएँ चित चाय सा।[3]
तुलसी निहारि अरिनारी दै दै गारि कहैं,
बावरे सुरारि बैर कीन्ही राम राय सों॥

कन्या की विदाई का चित्र कितना हृदयद्रावक होता है। इस अवसर पर परम विरागी विदेह भी विचलित हो गये थे। पार्वती मगल का एक बिम्ब है—

भेंटि बिदाकरि बहुरि भेंटि पहुँचावहि।[4]
हुँकारि हुँकारि सुता लवाइ धेनु जनु धावहि॥

भाँवरि के समय 'लावा परछने' की रीति कन्या के भाई द्वारा सम्पन्न कराई जाती है। जनक के कोई पुत्र न था। तुलसी ने भूमि पुत्र मगल को इस मागलिक कार्य के लिए उपस्थित कर उक्त प्रथा की मर्यादा निभाई—

सिय भ्राता के समय भौम तब आयउ।
दुरी दुरा करि नेग सुनात जनाएउ॥

इसी प्रकार कोहबर, 'लहकौरि' 'जुआ आदि रस्मो का भी वर्णन बडी तन्मयता के साथ किया किया गया है।

इन सारे चित्रणो का आधार तुलसी के सामने अपना देखा हुआ समाज और उसमें प्रचलित लोकप्रथाए रही हैं, इसमे कोई सन्देह नही।

---

१ रामचरितमानस, १।३२९–७।
२ अमिय गारि गारउ गरल गारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिंबुध न गवार। दोहावली ३२८।
३ कवितावली लका २४।
४ पार्वतीमगल, १५८।
५ जानकीमगल, १६६।

लोक धर्म

'राम' का अवतार लोकधर्म की संस्थापना के लिए हुआ था। तुलसी ने अपनी कृतियों में रामकथा के प्रमुख पात्रों के आचार, व्यवहार तथा उक्तियों के माध्यम से लोकधर्म का नैसर्गिक स्वरूप प्रस्तुत किया है। अहिंसा, करुणा, परोपकार, वृद्धों की सेवा, मर्यादानिष्ठता, जन्म भूमि प्रेम, दुष्टों का दमन, प्राण देकर भी अबलाओं की रक्षा, भलों के लिए नम्रता और अहिंसा, तिलांजलि देकर शक्ति की भाषा का प्रयोग आदि कार्य व्यापारों को आदर्श सामाजिक जीवन का अनिवार्य रूप मानकर उन्होंने राम की लोकलीला में उनकी व्याप्ति दिखाई और इस प्रकार लोकधर्म पालन के प्रति जनरुचि जागृत की।

लोक प्रकृति निरीक्षण

सामाजिक जीवन में तुलसी ने लोक स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उनकी रचनाओं में ऐसे स्थल भरे पड़े हैं, जिनसे मानव प्रवृत्ति की विलक्षणताओं की पहचान और अद्भुत क्षमता द्योतित होती है। विशिष्ट अवसरों पर प्रस्फुटित मन के सहज उद्गार व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव स्तर तथा विचार पद्धति के सूचक हैं। पात्रों के चरित्रचित्रण में उनकी दृष्टि में यह बात बराबर रही। इसी से मानव प्रकृति के चित्रण में उन्हें इतनी सफलता प्राप्त हो सकी। रामचरितमानस में सन्त-असज्जन वन्दना, नारदमोह, लक्ष्मण-परशुराम सवाद, मथरा प्रसंग तथा कलिधर्म निरूपण आदि प्रसंगों में तो एतद्विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध है ही, दोहावली में भी लोक स्वभाव एवं प्रवृत्ति-व्यंजक अगणित रेखाचित्र सजाये गये हैं—

(१) त्रिया चरित्र

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गाल करब केहि कर बल पाई॥[1]
हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥[2]

(२) गूढ़ व्यंग्य (कूटि)

करहिं कूटि नारदहिं सुनाई। नीकि दीन्हि विधि सुन्दरताई।
रीझिहि राजकुँवरि छवि देखी। इन्हहिं बरिहि हरि जानि बिसेषी॥[3]

---

१ रामचरितमानस, २।१४-१।

२ वही २।१६ ४ ७।

३ रामचरितमानस, १।१३४ ३,४।

(३) क्षोभ मे अपशब्द प्रयोग

खीझति मदोवै सविषाद देखि मेघनाद[1]

बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को।[2]

(४) पडोसियो का क्रूरतापूर्ण व्यवहार

महवासी कायो गिलहिं पुरजन पाक प्रवीन।

कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन॥

(५) लोकव्याप्त स्वार्थभावना

हरीचरहिं तारहिं बरत, फरे पसारहिं हाथ।

तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ॥[3]

लोक विश्वास

लोक जीवन की सामान्य धारा अधिकांशत परम्परागत मान्यताओ से सचालित होती है। इनका आधार जाति विशेष के सांस्कृतिक विकास की विभिन्न दशाओं में अनुभूत तथ्य होते हैं। सभ्यता का ऐतिहासिक ज्वार ऊपर से निकल जाता है, ये अन्तस्तल मे चिपके पडे रहते हैं। तुलसी ने समकालीन जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वो को मनोयोगपूर्वक देखा-परखा था। उनमें कुछ उन्हे लोकहित साधक लगे, कुछ हानिकारक। उन्होंने उनका विवेकपूर्वक त्याग अथवा ग्रहण करने के लिए लोगो को सावधान किया—

(१) अधविश्वास—बहराइच में गाजी मियाँ की दरगाह की जियारत से कुष्टनाश, पुत्र प्राप्ति, नेत्रलाभ विषयक लोकमान्यता का खण्डन—

लही आँख कब आँधरे, बाँझ पूत कब लाय।

कब कोढ़ी काया लही, जग बहरायच जाय॥[4]

(२) सती प्रथा का विरोध—पति के मरने पर उसकी चिता मे स्त्रियो के

---

१ कवितावली, ५।१२।

२ 'दाढ़ीजार' स्त्रियों द्वारा पुरुषों के लिए प्रयुक्त एक गाली है, जिसका अर्थ है 'जिसकी दाढ़ी जला देने योग्य हो।' मध्यकाल में मुसलमानों के घोर अत्याचार से क्षुब्ध होकर हिन्दू स्त्रियों ने यह शब्द गढ़ा था आक्रोश व्यक्त करने के लिए, कालांतर मे इसका प्रयोग अत्याचारी, अनिष्टकारक अथवा विरोधीमात्र के लिए होने लगा।

३ दोहावली, ४०४।

४ दोहावली, ४९६।

आत्मदाह की मध्यकालीन राजपूतों में प्रचलित प्रथा उन्हें अमानवीय एवं मर्यादाहीन प्रतीत हुई। उन्होंने स्त्रियों को इससे विरत होकर कुलशील का पालन करते हुए साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने की सीख दी।

सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग।
घर ही सती कहावती, जरती नाह वियोग ॥[1]

इसके अतिरिक्त लोकविश्वास, निष्ठा, सदाचार आदि सद्गुणों के वर्धक और लोकधर्म की रक्षा में सहायक प्रतीत हुए उनका उन्होंने समर्थन ही नहीं किया वरन् उसके पोषण निमित्त उपयुक्त अवलम्ब भी प्रदान किये—

(३) शकुन विचार—यात्रा, मांगलिक कार्य, इष्टानिष्ट ज्ञान आदि के लिये शकुन विचार की प्रथा अत्यंत पुरानी है। इसके लिये लोगों को ज्योतिषियों का सहारा लेना पड़ता था। तुलसी ने रामभक्तों को आत्मनिर्भर बनाने के लिये 'रामाज्ञाप्रश्न' की रचना की और उसकी प्रयोग विधि का भी निर्देश कर दिया—

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन विचारब चारु मति, सादर सत्य सनेम ॥[2]

शकुन विचार का इससे अधिक सरल रूप 'रामशलाका' में प्रस्तुत किया गया, जिसका उपयोग मात्र अक्षरज्ञान रखने वाले भी कर सकते हैं।

(४) भीतिपूजा—गाँवों में स्त्रियाँ विशेष पर्वों पर दीवारों पर देवी देवताओं के चित्र बनाकर पूजती हैं। लोकमानस में भक्ति की प्रतिष्ठा के लिये तुलसी को यह प्रथा उपयोगी जान पड़ी। इसलिये उन्होंने इसकी हिमायत की—

अपनो ऐपन निज हथा, तिय पूजहिं निज भीति।
फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रेम प्रतीति ॥[3]

साहित्य साधना में लोक तत्त्व

प्रतिपाद्य विषय की भाँति ही उसकी अभिव्यंजना में भी तुलसी ने लोक-तत्त्व को महत्त्व दिया। धार्मिक तथा आध्यात्मिक साहित्य की रचना परम्परा से संस्कृत में होती आ रही थी। किन्तु काल-प्रवाह में यह भाषा लोक सम्पर्क से दूर जा पड़ी थी। तुलसी को लोकोत्थान के लिये जन जन तक अपना सन्देश पहुँचाना था। इसलिये इसके प्रति आदरभाव रखते हुये भी उन्होंने लोकभाषा

---

१ दोहावली, २५४।
२ रामाज्ञाप्रश्न, ७।१।
३ दोहावली, ४५४।

अवधी तथा ब्रजी को अपनाया। साहित्य निर्माण में यह उनके लोकवादी दृष्टिकोण का परिचायक है। इसकी भी प्रेरणा उन्हें लोक-जीवन से प्राप्त हुई थी। साम्प्रतिक ग्राम्य भाषा में उन्हें रामकथा की एक समृद्ध परम्परा का पता चला था—

स्याम सुरभि पय बिसद अति, करहिं गुनद सब पान।
गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥[1]

उसमें निहित भावों तथा कलात्मक विशिष्टताओं को देखकर उनकी यह धारणा बन गई थी कि नरवाणी में वर्णित रामचरित देववाणी में विरचित रामकथा की अपेक्षा अधिक व्यापक, सीधा सर्वसुलभ, और मधुर है—

हरिहर जस सुर नर गिरहु, बरनहिं सुकबि समाज।
हाँडी हाटक घटित चरु, तुलसी स्वाद सुनाज॥[2]

उनकी कृतियों में ब्रजभाषा और अवधी दोनों का प्रयोग हुआ है। प्रतीत होता है इनमें भी अवधी उन्हें विशेष प्रिय थी—उसके परिनिष्ठित तथा ठेठ दोनों रूपों को अपनाकर उन्होंने इसका संकेत दिया है। ब्रजभाषा का केवल टकसाली रूप प्रयुक्त हुआ। अवधी के देशज शब्दों तथा मुहावरों का बाहुल्य देखते हुए यह अनुमान लगाना असंगत न होगा कि बाल्यजीवन में उनका उक्त प्रदेश में दीर्घ कालव्यापी तथा घनिष्ठ संबंध रहा होगा।

रामकथाश्रित काव्यों की परम्परा में लोकगीतात्मक शैली के मंगल काव्यों—रामलला नहछू जानकीमंगल और पार्वतीमंगल—की रचना कर उन्होंने एक नई कड़ी जोड़ी। इनमें उनका मुख्य उद्देश्य 'रामचरितमानस' का अशिक्षित तथा अर्द्धशिक्षित ग्रामीण समाज के बीच प्रचार करना था, यह कार्य संस्कार गीतों के माध्यम से ही संभव था। इसलिए लोकस्तर पर उतरकर उन्होंने उनके संस्कारों रुचियों और रीतियों के अनुकूल रामकथा के मांगलिक प्रसंगों को ग्रामगीतों के साँचे में ढाला। इनके गाने और सुनाने के सभी प्रकार के लौकिक तथा पारमार्थिक कल्याण का विश्वास दिलाकर उनके प्रति लोकाकर्षण का मार्ग प्रशस्त कर दिया—

जे यह मंगल गावहिं गाइ सुनावहिं हो।
ऋद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावइ हो॥[3]

इनकी रचना भी लोक परिचित 'सोहर' तथा मंगल छन्दों में हुई—

---

१ रामचरितमानस, १।१० (ख)।
२ दोहावली, १६७।
३ रामललानहछू, २०।

लोक-रीति का निर्वाह

तुलसी के हृदय में लोक परम्पराओं के प्रति कितना सम्मान और साहित्यिक रचना म भी उनके निर्वाह का कितना आग्रह था, इसका संकेत इससे मिल जाता है कि राम के अनन्य भक्त होते हुये भी रामचरितमानस ऐसे प्रबंध काव्य मे ही नही, पार्वती-मंगल और विनयपत्रिका ऐसे प्रगीत मुक्तकों में भी गणेश वन्दना के बाद ही इष्टदेव की वन्दना की गयी है। इसका महत्व तब और बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि उनके समसामयिक कृष्ण भक्तो यहाँ तक कि सूरदास ने भी अपनी कृतियो के मंगलाचरण में मात्र आराध्य देव की वन्दना को स्थान दिया है। तुलसी ने विनयपत्रिका मे राजा रामचन्द्र के समक्ष कलि प्रभाव से पीड़ित मानवता की जो अर्जी पेश की है, उसमें भी तत्कालीन लोक-व्यवस्था मे प्रयुक्त दरबारी शिष्टाचार का पूरी तरह पालन किया गया है। स्पष्ट है कि लौकिक जीवन म प्रत्यक्ष परिज्ञान प्राप्त करने के बाद ही उक्त-पद्धति का विनियोग आध्यात्मिक जीवन मे किया गया। उनकी कृतियो मे प्राप्त 'साहेब साहिबनी', 'गरीब नेवाज', 'उमरदराज', 'दरबार' आदि शब्द समसामयिक शासनव्यवस्था से ही लिये गये हैं। विनयपत्रिका क अन्त मे स्वीकृति प्राप्ति के लिये 'परी रघुनाथ सही है' का प्रयोग हुआ है। यह शब्दावली भी सरकारी ही है।

लोक सुलभ अप्रस्तुत विधान

तुलसी की भाषा मे जैसी भावगरिमा है वैसा ही उसका कलेवर भी शब्द और अर्थवैचित्र्य से मण्डित है। सर्वहित कामना से लिखे गये काव्य का प्रधान गुण सुगमता होना चाहिये, इस पर उनकी दृष्टि बराबर रही। इसलिये उनकी रचनाओ मे अलंकार तथा अन्य काव्य गुणों का विधान अत्यन्त स्वाभाविक रूप म हुआ है। काव्य के सारे गुण उनकी वाग्धारा के सहज प्रवाह मे स्वत संनिविष्ट होते गये। प्रसाद उनकी मुख्य वृत्ति रही, माधुर्य उनके रसमग्न हृदय के सम्पर्श से और ओज अखंड तेजोमय नायक के प्रताप से। 'कवित विवेक एक नहिं मोरे' की घोषणा करने वाले तुलसी की भाषा कितनी काव्यात्मक और काव्यशास्त्र मे निर्दिष्ट विशिष्टताओ मे भरी पूरी है, यह बताने की आवश्यकता नही।

साधर्म्यमूलक अलंकारो के विधान मे तुलसी की विशेष अभिरुचि रही है। इनकी योजना में परम्परा तथा प्रयोग दोनो पद्धतियो का योग रहा—पुराने उपमानो को भी स्थान दिया गया है और स्वतन्त्र रूप से नये-नये अप्रस्तुतो की

उद्भावना भी की गई। नये अप्रस्तुतों की यह विशेषता है कि वे प्राय व्यावहारिक जीवन क्षेत्र से चुने गये हैं इसलिये प्रगाढ अनुभव से सिक्त हैं। इससे सम्प्रेषणीयता एव रसोद्बोधन मे चमत्कारिक शक्ति आ गई है।

(१) रूपक

कृषक जीवन—

वरषा रितु, रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।[1]
राम नाम के बरन जुग, सावन भादौ मास॥

उत्प्रेक्षा-लोकानुभव—

बिलोके दूरि ते दोउ बीर
मन अगहुँड तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।
गडत गोड मनो सकुच पंक महँ, कढत प्रेम बल धीर।[2]
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। सुनत चढी जनु सब तन बीछी॥[3]

(२) उपमा–लोकजीवन

गाडी के स्वान की नाइ माया मोह की बडाई,[4]
छिनहिं तजत छिन भजत बहोरि हो।
× × ×
गुरुहित कोटि उपाय निरन्तर करत न पाँव पिराने।
सदा मलीन पथ के जल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने॥[5]

ग्राम्य जीवन से गृहीत ऐसे असख्य अछूते तथा गूढार्थ व्यजक साम्य विधान तुलसी के गभीर अन्वेक्षण एव विलक्षण काव्य प्रतिभा के परिचायक हैं।

लोकमत का सत्कार

राम राज्य के रूप मे जिस आदर्श समाज की कल्पना तुलसी ने की है उसमे न्याय, स्वतन्त्रता और सौहार्द की पूरी प्रतिष्ठा है। वर्णव्यवस्था के समर्थक होने से वे समानता के कायल नही हैं, किन्तु अपने-अपने कर्तव्यो के

---

१ रामचरितमानस, १।१६।
२ गीतावली, २।६६।
३ रामचरितमानस, २।४६-७।
४ विनयपत्रिका, २५८।
५ वही, २३५।
६ गीतावली, उ०।३६।

पालन म सबको समान रूप से सुविधा प्रदान करना वे शासन का मुख्य धर्म मानते हैं। यह सर्वविदित है कि उनके उपास्य राम राजा थे और जिस युग म तुलसी स्वय जी रहे थ, उसम भी राजसत्ता का स्वरूप अधिनायकवादी ही था। किन्तु रामराज्य और मुगलशासन के आदर्शों में आकाश-पाताल का अन्तर था। प्रथम का उद्देश्य लोकपोषण था तो द्वितीय का लोकशोषण, एक म लोकेच्छा का समादर था, तो दूसरे म पूर्ण अवहेलना। उस स्थिति म उन्होंने प्रजा को अपने अधिकारों के प्रति सजग करने के उद्देश्य से राम द्वारा स्थापित प्रबुद्ध सामन्तीय व्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत किया।

अयोध्या क चक्रवर्ती साम्राज्य क सचालन मे तुलसी ने महाराज दशरथ और उनके उत्तराधिकारी राम को विशिष्ट अवसरों पर 'जनप्रतिनिधियो' और लोकवाणी को समुचित महत्त्व देते हुए दिखाया है। इसके अतिरिक्त उन्हे परम्परागत रामकथा म स्वत ऐसे अनेक प्रसग मिल गये जिनम लोकमत को यथोचित महत्त्व दिया गया था—

(१) राज्याभिषेक का निर्णय—

राम को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के पूर्व दशरथ गुरु मन्त्रियो और सुमन्त को बुलाकर परामर्श करते हैं। उनकी सम्मति प्राप्त करने के बाद ही तद्विषयक घोषणा की जाती है—

जो पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका॥[1]

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहिं सोहाई॥

राम प्रजा के साथ बैठकर आध्यात्मिक विषयो पर विचार-विनिमय करते हैं और निर्भय होकर अपन विचारो की आलोचना करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। रामराज्य मे विचार स्वातन्त्र्य किस सीमा तक था, यह उसका उदाहरण है—

जौ अनीति कछु भाषउँ भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥[2]

(२) अङ्गद को युवराज बनाना—

बालि वध के अनन्तर सुग्रीव किष्किंधा के राजा बनाये जाते हैं, किन्तु अगद के प्रति स्थानीय जनता की व्यापक सहानुभूति देखकर, परम्परा से हटकर राम उन्हें युवराज बनाते हैं। यह कार्य राम ने अपने परम मित्र सुग्रीव की इच्छा के

१ रामचरितमानस, २।५ ३।

२ रामचरितमानस, ७।४३ ३,४,६।

विरुद्ध किया था, इसकी पुष्टि अंगद के निम्नांकित कथन से होती है—

कह अंगद लोचन भरि बारी । दुहूँ भाँति भई मृत्यु हमारी ॥
पिता बधे पर मारत मोही । राखा राम निहोरत ओही ॥[1]

(३) सीता परित्याग—

सीता वनवास रामकथा की एक अत्यंत हृदयद्रावक घटना है। राम ने अपनी परम प्रिया का त्याग, जिसके हरण पर 'महाविरही अतिकामी' की भांति अर्द्ध-विक्षिप्त हो उन्होंने वनवीहड़ छान डाले थे और पता लगने पर समुद्र पर पुल बाँधने जैसा असम्भव कार्य सम्भव कर दिखाया था, कितना अंतर्दाह सहकर किया होगा। ऐसा आत्मघाती निर्णय उन्होंने सीता के किसी अपराध या चारित्रिक दोष विषयक अपने अनुभव अथवा विश्वास के आधार पर नहीं किया। न इसके मूल में अयोध्या के नागरिकों या मंत्रिपरिषद का ही किसी प्रकार का अनुरोध था। हुआ यह कि गुप्तचरों द्वारा दी गई सूचना पर, जिसका आधार एक संस्कारहीन प्रजा द्वारा अपनी स्त्री से झगड़ते समय कहे गये वाक्य थे। राम के समक्ष लोकमत नहीं प्रस्तुत हुआ। उनके कानों तक मात्र लोकध्वनि पहुँची थी :—

चरचा धरनि सा सुनि जान मनि रघुराइ,
दूत मुख सुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी आइ ॥[2]

राजतंत्र की तो बात ही क्या, विश्व की किसी जनतांत्रिक अथवा समाजवादी शासन व्यवस्था में भी आज तक जनरव को इतना महत्त्व नहीं मिल सका है।

राम के इस अप्रत्याशित व्यवहार का औचित्य विचारशील जनता के गले के नीचे नहीं उतरा। लोकमानस में इसकी भयंकर प्रतिक्रिया हुई। सीता के माध्यम से जन कवि ने अपने उद्‌गार प्रकट किये—पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में अयोध्या को रोचन भेजते हुए उन्होंने नाई से संदेश कहलाया—

पहिल रोचन राजा दसरथ, दुसर कौसिला माई रे।
नउआ तिसर रोचन लछिमन देवरा पपियवा न जानै
अधरमी न जाने हो ॥

लोकापवाद के भय से राम द्वारा सीता के प्रति किए गये इस व्यवहार को तुलसीदास ने भी घोर अन्याय माना है—

---

१ रामचरितमानस ४।२६ ३,४ ।
२ गीतावली, ७।२७ ।

बैरि बधु निसिचर अधम, तजे न भरे कलक ।
झूठे अघ सिय परिहरी, तुलसी साइँ ससक ॥[1]

लोक देवता के रूप मे राम की प्रतिष्ठा

स्वामी रामानन्द तथा उनकी परपरा के कतिपय रामभक्तो ने व्यष्टि साधना मे हनुमान का आश्रय लिया था और उनकी स्तुति म पदों की रचना की थी। किन्तु दास्यनिष्ठा के आदश रामभक्त के रूप में उनको जो महत्व रामचरितमानस और हनुमानबाहुक ने प्रदान किया वह अभूतपूर्व था। सकटमोचन और बन्दीछोर हनुमान की पूजा का व्यापक प्रचार इसी का परिणाम था।

शिव अथवा रुद्रावतार होने से उनकी मूर्तियो की स्थापना के लिए देवालय निर्माण की अनिवार्यता नही थी, न विष्णु मदिरो की भाँति उनकी पूजा पद्धति का ही झमेला था। किसी भी चौराहे पर, निजन या घनी बस्ती के बीच, जगल या वाटिका मे अथवा सडक के किनारे उनकी प्रस्तर मूर्ति रखकर पूजा की जा सकती थी। तुलसी ने स्वय इसी प्रकार काशी मे सकटमोचन हनुमान की स्थापना कर मागदशन किया था।

हनुमान शक्ति के देवता हैं। अत उनके मदिरो क साथ अखाडों की भी स्थापना हुई। जातीय जीवन मे शौर्य के विकास के लिये इस प्रकार की व्यवस्था तुलसी के ही मानस की उपज हो तो कोई आश्चर्य की बात नही। समवत इन्ही से प्रेरणा प्राप्त कर समर्थ गुरु रामदास ने अध्यात्मसाधना क लिये राममदिरो और बलोपासना के निमित्त हनुमान मन्दिरो का महाराष्ट्र म एक जाल सा बिछा कर जन-जागरण के सफल अभियान का सूत्रपात किया था। हनुमान तत्व मे तुलसी ने शैव तथा शाक्त सिद्धातो का पयवसान कर उक्त साधनाओ मे आस्था रखने वाले लोगों को भी राममक्ति की ओर आकृष्ट किया। इससे उसका देश व्यापी प्रचार हुआ।

लोकशिक्षा के सशक्त माध्यम रामलीला का प्रवर्तन

सास्कृतिक तत्वो की गरिमा अक्षुण्ण रखने क लिये महापुरुषो की जीवनगाथा का रूपको या जन-नाट्यो द्वारा प्रदशन प्राचीन काल से ही लोकशिक्षा का एक सशक्त माध्यम रहा है। रामोपासना के क्षेत्र मे इसकी परपरा तुलसीदास के पहले से चली आ रही थी। 'भक्तमाल' में मानदास द्वारा विरचित एक नाटक

---

१ दोहावली, १६६।

का उल्लेख है, जो सभवत रामलीला के मचन की दृष्टि से ही लिखा गया था—सबद्ध पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

रामायन नाटक की रहस, उक्ति जुक्ति भाषा धरी।
गोप्यकेलि रघुनाथ की, मानदास परगट करी॥

किन्तु जैसा इन पक्तियो से ही स्पष्ट है, उसका प्रतिपाद्य राम की शृगारी लीला थी। मेरे विचार से यह रसिक रामभक्तो की परपरा म प्रचलित राम की रामलीला के प्रन्शन के लिये लिखा गया था, जिसकी परपरा उक्त शाखा मे अब तक पाई जाती है। ऐश्वर्यपरक जीवनादश को लेकर सपूण रामकथा पर आधारित रामलीला का प्रवतन तुलसी ने किया, अब तक प्राप्त सूत्रो मे यह धारणा निर्भ्रान्त ठहरती है। उत्तरी भारत के गांवो, कस्बो और नगरो मे आश्विन तथा कार्तिक मास मे रामलीला की जो धूम दिखाई देती है, उसका मुख्य श्रेय तुलसी को ही है।

लोक सेवा का श्र`यतम साधन—सम`वय भावना

भारत विभिन्न सस्कृतियो, धर्मों तथा सप्रदायो का देश है। उनके पारस्परिक मतभेद प्राय स्थूलसधर्यों के कारण रहे हैं। अत यहाँ के सामाजिक जीवन को सुख-शाँति मय बनाये रखने के लिये समय-समय पर आविभूत महापुरुषो का प्रयास विभिन्नता में एकता तथा विषमता में समता के सूत्रा का अनुसधान एव उपस्थापन रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, शकराचार्य, रामानुज और रामानन्द उसी अखड परपरा के प्रकाशस्तभ हैं। तुलसी ने अपनी लोकोत्तर प्रतिभा तथा मैत्री भावना स उसे आगे बनाया। इनकी सम`वय साधना का आधार बनी—रामभक्ति। सामाजिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, साहित्यिक आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रा मे व्याप्त सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक विरोधा के कारणा का सम्यक प्रकार से अध्ययन करके अपनी रचनाआ म उनके यथोचित समाधान प्रस्तुत किये। शैवों वैष्णवो, निर्गुणों सगुणा, लोक-वेन्दान्तिया, कर्म-योग ज्ञान मार्ग के साधको, द्वैत, अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत मतानुयायियो, ब्राह्मण-शूद्र आदि वर्गों के पारस्परिक द्वंद्वो के शमन क लिये उन्होंने अधिकारी पात्रो के प्रामाणिक विचारो की योजना की। इसक अतिरिक्त उन्होंने रामतत्व की व्याख्या एवं प्रस्तुति जिस विराट फलक पर की उसके अतगत सारे विरोध स्वतः विलीन हो गय। विच्छिन्न लोकजीवन को जोडने की यह प्रक्रिया सभी दृष्टियों से उपकारक सिद्ध हुई। यह तुलसी की ही दीर्घदर्शिता का प्रसाद था कि उत्तरी भारत मे शिवकाँची विष्णुकाँची का दृश्य प्रस्तुत होने की नौबत नहीं आई।

ज्योतिर्मय आकाश की अपेक्षा जीव सकुल धरती, दिव्य साकेत की अपेक्षा अयोध्या को अधिक महत्व देकर तुलसी ने सगुण साधना के क्षेत्र में लोकवादी विचारधारा को नई चेतना प्रदान की। मानव को विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि, मानव जीवन को देवों के लिये भी स्पृहणीय और उसका कर्म क्षेत्र ससार तथा अपनी आविर्भाव भूमि भारत को वदनीय बनाकर उन्होंने लोकजीवन की महत्ता बढाई। अद्वैतवादी सन्यासियो[1] गोरखपथी योगियो तथा निर्गुणमार्गी सतो ने जागतिक जीवन की विगर्हणा कर उसके प्रति जनता म जो विरक्ति की भावना फैलाई थी, तुलसी ने उसका जनक जैसे ब्रह्मविद्या के आचार्य द्वारा प्रतिवाद कराया और राम ऐसे नररत्न की क्रीडास्थली भवसागर का मुक्तकठ से गुणगान किया—

प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर।
जह उपजहिं अस मानिक विधि बड नागर॥

अनादि अनत परमात्मा की सृष्टि, ससार के सौंदर्य, माधुर्य और चिरतनता पर तुलसी स्वय भी मुग्ध थे—

पल्लवत फूलत नवल नित ससार विटप नमामहे।

"इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होने मलायतन कलियुग को भी मूर्धन्य स्थान दिया। लोकोद्धारक राम का सस्पर्श पाकर देशकाल सभी तर गये—

कलियुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर विस्वास।
गाइ राम गुन गन विमल भव तरु विनहिं प्रयास॥

इस प्रकार लोकालय का महत्व प्रतिपादित कर उन्होंने समकालीन वातावरण मे विषण्ण जनता के हृदय मे लौकिक जीवन के प्रति अनुराग जगाया और स्वत्वो की रक्षा के लिये उसे प्रकारान्तर से भौतिक परिस्थितियो से सघर्ष करने के लिये प्रोत्साहित किया—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

तुलसी की अपनी दृढ धारणा थी कि लोकसेवक का मुख्य कर्तव्य जनरुचि का परिष्कार और उन्नयन होना चाहिये, अधानुसरण नही। लोक के रग मे रँगजाने को वे अध पतन की पराकाष्ठा मानते थे, कारण कि समूहानुगामी मनुष्य का व्यक्तित्व अपना वैशिष्ट्य विलीन कर पशुत्व मे परिणत हो जाता है।

---

१ झूठा है झूठा है झूठा सदा सब सत कहत जो अत लहा है।
जानकी जीवन जानि न जान्यो तो जानि कहाय के जान्यो कहा है। कवि, ७।३९
२ जानकीमगल, ४७।

इसी से उन्होंने समकालीन लोकजीवन के विविध क्षेत्रों में व्याप्त लोकधर्म विरोधी प्रवृत्तियों, रीति रिवाजों, आचार-विचारों तथा उनके पुरस्कर्ताओं की खोलकर आलोचना की। जैनश्रावक,[1] भगवान बुद्ध,[2] अद्वैतवादी संन्यासी, नाथ पंथी सिद्ध,[3] अलखिया संत, सूफी फकीर और निर्गुणियाँ संत,[4] यवन शासक और उसके गण, राजे महाराजे, दरबारी कवि,[5] ढोंगी साधु,[6] पंडे और पुरोहित,[7] परोपदेशकुशल पंडित,[8] और बात की मेंठी करने वाले वक्ता प्रवक्ता, १० सब पर उनका निर्मम प्रहार हुआ। जो भ्रातृद्रोही तथा नैतिकताहीन सुग्रीव और विभीषण के पगधर अपने इष्टदेव की भी चुटकी लेने से नहीं चूका वह लाक प्रवचकों का वैस छोड़ सकता था। इस स्पष्टवादिता की उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी। विरोधियों ने उन्हें 'धूर्त', अवधूत, रजपूत, जोलहा, पाखंडी, नीच—क्या-क्या नहीं कहा। इतने से ही संतुष्ट न होकर उन्होंने तुलसी को दंड देने की योजना बनाई। वामदेव की पुरी इसी काशी में उन्हें शारीरिक यातना दी गई। किन्तु इन सारे अपमानों का विष वे सहर्ष पीते रहे। चातक की भाँति आराध्य के सारे अत्याचार मौन भाव से सहने में ही वे प्रेम की पुष्टि मानते थे। यह विषम स्थिति उनके अगाध लोकप्रेम की पराकाष्ठा के लिये संघटित हुई थी,

---

१ ईस सीस विलसत विमल, तुलसी तरल तरंग,
स्वान सरावग के कहे, लघुता लहै न गंग। दोहावली ३८३॥

२ अतुलित महिमा बेद की तुलसी किये विचार।
जो निंदत निंदित भयो, विदित बुद्ध अवतार॥ दोहावली ४६४।

३ पारद प्रगट प्रवचना, सिद्धिउ नाउ कलंक।

४ हम लखि हमहिं हमार लखि, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखहिं, रामनाम जपु नीच॥ दोहावली १९॥

५ साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान॥

६ कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥ रामचरितमानस १।

७ बंचक भक्त कहाइ राम के, किंकर कंचन कोह काम के॥

८ तुलसीदान जे देत हैं जल में हाथ उठाइ।
प्रतिग्राही जीवै नहीं दाता नरकहिं जाइ॥ दोहावली ५३३॥

९ बचन बेष ते जे बने ते बिगरें परिनाम।
तुलसी निज ते जे बने बनी बनाई राम॥ दोहावली १५४।

ऐसा उनका भाव था—

बरसि परुष पाहन पयद, पख करहु टूक टूक ।
तुलसी परी न चाहिए, चतुर चातकहि चूक ।।

इसके प्रसाद रूप म उन्हें मिला 'अखड अत सुख', विश्वात्म भाव से वही 'सर्वान्त सुख' का शाश्वत स्रोत बन गया ।

गोस्वामी तुलसीदास और हरिजन

गोस्वामी तुलसीदास के प्रति भारतीय लोक हृदय मे जो सम्मान है, वह कदाचित् ही किसी देश मे किसी कवि को प्राप्त हो। गत चार शताब्दियो से उत्तरी भारत की आध्यात्मिक विचारधारा के स्वरूप निर्माण म रामचरित मानस और विनय पत्रिका का विशेष हाथ रहा है। समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी सामर्थ्य के अनुरूप तुलसी साहित्य की अर्चना मे भाव पुष्प अर्पित कर कृतार्थ हुआ है।

इधर स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक एव आर्थिक क्रातियो ने राष्ट्रीय जीवन मे एक अजीब उथल-पुथल पैदा कर दी है। राजनीतिक क्षेत्र मे पनपे हुए कुछ विदेशी 'वादों' न परपरागत सामाजिक मा यताओ को ध्वस्त करने के साथ ही हमारे साहित्यिक दृष्टिकोण में भी आमूल परिवतन किया है। तुलसी का प्रतिभा दीप इस प्रबल झझावात मे भी अखड जलता रहा। बदले हुए साहित्यिक वातावरण में भी उनकी लोकभावना तथा काव्यधारा के अतल गाभीर्य की प्रशसा हुई। राजनीति के क्षेत्र मे युगपुरुष गाधी ने उनके द्वारा चित्रित रामराज्य के आदश को अपनाया और जीवमात्र क शोक-सताप को दूर करने वाली अकेली महौषधि राम नाम स्वीकार किया। इस धर्मनिरपेक्ष राज्य म रामभक्त तुलसी की उत्तरोत्तर बढती हुई लोकप्रियता कुछ सकुचित राजनीतिक दृष्टिकोण वाले व्यक्तियो को खली। फलत तुलसी और राम की ज मभूमि होने का गौरव रखने वाल प्रदेश की विधान सभा म रामचरित मानस क कुछ आपत्तिजनक कहे जाने वाले अशो को काट कर उक्त भावना का प्रतिनिधित्व करने वाले एक सदस्य ने सतोष की सास ली। हमारी यह धारणा है कि ऐसे कृत्यो के मूल मे राजनीतिक स्वार्थों के साथ ही कुछ भ्रातियाँ भी होती हैं जो परिस्थिति एव जीवन दशन की अनभिज्ञता के कारण अ यवस्थित मस्तिष्क मे घर कर लेती हैं और अनर्थ चितन स सिंचित होती रहती है। गोस्वामी तुलसीदास पर हरिजन द्वेष का जो कलक मढा जाता है, वह ऐसी ही बुद्धि की उपज है।

हरिजनो के प्रति तुलसी के भाव क्या थे ? ऊँच-नीच की उनकी परिभाषा

प्रसन्न हो मानो जन्मभूमि को लौट आया।
गुरु के इस अलौकिक आचरण पर मुग्ध होकर देवीमाधवगण यह

ऐसे प्रेम की बलि जाऊँ।
जब निकल विरह गुनाई
गाँव ही को नाऊँ।
लाज परम उपाध्या
निज कर्म ही न्यो बाउ।
दुर्ग मिथिल लोचन सजल
अति प्रेम तन पुलकाउ।
करि पुनीत बखान ठाकुर
पूजिय को भाउ।
त्यागि सो अनुराग पूर्व
गुपच ही के पाऊँ॥
'दास' कन्मय प्रसित जोई
स कतहूँ नहिं ठाऊँ।
याऊ अब निज सरल जेंजे
परन सहज सुभाउ॥

रामपूजा को छोड़कर 'गुपच' के चरणों की वन्दना करने वाले इस का हरिजन विरोधी वे ही कह सकते हैं जिनके मात्सर्यग्रस्त मानस और तुलसी एक रूढ़िग्रस्त सामन्तवादी परंपरा के प्रतीक रूप में ही प्रति हैं। भारतीय संस्कृति के आदर्श निर्माता इस महापुरुष का प्रकृत चि आँखों से ओझल ही रहेगा।

रामचरित मानस में, श्रीसम्प्रदाय की वर्णाश्रम सबधी मान्यताओं होकर, गोस्वामी जी ने शूद्र वर्ग के विषय में जो विचार व्यक्त किये लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और प्रबन्ध शैली भी काफी उत्तरद इसके अतिरिक्त अधिकांश उक्तियाँ जिनका दायित्व मानसमात्र आलोच पर समझते हैं अन्य रामायणों, पुराणों तथा भक्तिग्रन्थों से यथावत् उद्धृत हैं। फिर संवत् १६३१ वि० के पश्चात् की रचनाओं में तुलसी के स दृष्टिकोण में विशिष्ट परिवर्तन लक्षित होता है। खेद की बात है कि साहित्य के इस विकासात्मक अध्ययन के अभाव में उस युग प्रवर्तक की 'महिमा मृगी' अपने कहे जाने वाले लोगों के ही वचन बाणों क बन रही है।

बेनीमाधव दास ने एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिससे यह विदित
कि उन्होने उसे व्यावहारिक रूप भी दिया था। 'गोसाईं चरित' क
प्रसग' तुलसी की हरिजनप्रियता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कथा सक्षे
प्रकार है—

तुलसीदास जी काशी मे अस्सीघाट पर निवास करते थे। एक दि
स्नान करके अपने आश्रम को लौट रहे थे कि रास्ते मे उन्हे एक भगी
वह झाडू का झाडू लिये हुए था। गोस्वामी जी से परिचित न होने
वह उन्हे देख कर मार्ग से हटा नही, बगल से ही निकल गया। कुछ अ
पर किसी व्यक्ति द्वारा जब यह ज्ञात हुआ कि वे गोस्वामी तुलसीद
उसने तत्काल लौटकर अशिष्टता के लिए क्षमा याचना की। उसने निवेद
कि मैं काशी के लिए एक नवागतुक व्यक्ति हूँ इसलिए श्रीचरणो को
नही सका, मेरी जन्मभूमि अयोध्या है। गोस्वामी जी के कानो म
'अयोध्या' शब्द पडा, प्रेमातिरेक से विह्वल हो उन्होने उस स्वपच
हृदय से लगा लिया। बेनीमाधव दास ने इस स्थिति का बडा ही सजीव
किया है—

गद्गद बानी शिथिल तन
व्याकुल प्रेम अधीर।
पूछत आव न बचन तेहि
पुनि पुनि पुलक शरीर॥
पुनि पुनि पुलक सरीर
धीर निधि धीरज त्याग्यो।
उत्कठित चष नीर
नाथ पद प्रेम नुराग्यो॥
प्रेमहि रह्यो समाइ बिसरि
जनु गो आपन पद।
सुपच हिए भरि भेटि सजल
ह्व पुनि पुनि गद्गद॥
तेहि मिलि कठ लगाइ भले।
पुनि हाथ गहे सग लै जो चले॥

स्वपच से ही उन्हें ज्ञात हुआ कि ऋणभार से ग्रस्त होने के कारण उसे
छोडकर जीविका की खोज मे काशी आना पडा है। गोस्वामी जाते उसे

प्रसन्न हो अपनी जन्मभूमि को लौट आया।

गुरु के इस अलौकिक आचरण पर मुग्ध होकर वनीमाधवदास कहते हैं—

एउ प्रेम को बलि जाऊँ।
जब विकल विदेह गुनगहि
गोद ही को नाऊँ।
लाज परम उपाधना
निज कर्म ही दिया दाउ।
हुँ शिथिल लोचन सजल
अति प्रेम तन पुलकाउ।
फरि पुनाऊ जयगान ठाकुर
पूजिब का भाउ।
त्यागि सो अनुराग पूत
गुपष ही के पाउँ।।
'दास' कल्मष ग्रसित जोई
त पठहु नहि ठाउँ।
पाउ अब निज सरन लीजे
चरन सहज सुभाउ।।

रामपूजा को छोड़कर 'गुपष' के चरणों की वन्दना करने वाले इस तुलसी को हरिजन विरोधी वे ही कह सकते हैं जिनके लोकग्रणायस्त मानस में राम और तुलसी एक रूढ़िग्रस्त सामंतवादी परंपरा के प्रतीक रूप में ही प्रतिष्ठापित हैं। भारतीय संस्कृति के आदर्श निर्माता इस महापुरुष का प्रकृत चित्र उनकी आँखों से ओझल ही रहेगा।

रामचरित मानस में, श्रीसंप्रदाय की वर्णाश्रम संबंधी मान्यताओं से प्रेरित होकर, गोस्वामी जी ने शूद्र वर्ग के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं, उसके लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और प्रबन्ध शैली भी काफी उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त अधिकांश उक्तियाँ जिनका दायित्व नासमझ आलोचक तुलसी पर समझते हैं अन्य रामायणों, पुराणों तथा भक्तिग्रन्थों से यथावत् संदर्भ में उद्धृत हैं। फिर संवत् १६३१ वि० के पश्चात् की रचनाओं में तुलसी के सामाजिक दृष्टिकोण में विशिष्ट परिवर्तन लक्षित होता है। खेद की बात है कि तुलसी साहित्य के इस विकासात्मक अध्ययन के अभाव में उस युग प्रवर्तक महापुरुष की 'महिमा मृगी' अपने कहे जाने वाले लोगों के ही वचन बाणों का शिकार बन रही है।

बेनीमाधव दास ने एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिससे यह विदित होता है कि उन्होने उसे व्यावहारिक रूप भी दिया था। 'गोसाइ चरित' का 'सुपच प्रसग' तुलमी की हरिजनप्रियता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कथा सक्षेप म इस प्रकार है—

तुलसीदास जी काशी म अस्सीघाट पर निवास करत थे। एक दिन गगा स्नान करके अपने आश्रम को लौट रह थ कि रास्त म उन्ह एक भगी मिला। वह झाऊ का झाडू लिये हुए था। गोस्वामी जी से परिचित न होने के कारण वह उन्हे देख कर माग से हटा नही, बगल से ही निकल गया। कुछ आगे बढ़ने पर किसी व्यक्ति द्वारा जब यह ज्ञात हुआ कि वे गोस्वामी तुलसीदास हैं तो उसने तत्काल लौटकर अशिष्टता के लिए क्षमा याचना की। उसने निवेदन किया कि मैं काशी के लिए एक नवागतुक व्यक्ति हूँ इसलिए श्रीचरणो को पहचान नही सका, मेरी जन्मभूमि अयोध्या है। गोस्वामी जी के कानो मे जैसे ही 'अयोध्या' शब्द पडा, प्रेमातिरेक से विह्वल हो उन्होंने उस स्वपच को अपने हृदय से लगा लिया। बेनीमाधव दास ने इस स्थिति का बडा ही सजीव चित्रण किया है—

गद्गद बानी शिथिल तन
व्याकुल प्रेम अधीर।
पूछत आव न बचन तेहि
पुनि पुनि पुलक शरीर ॥
पुनि पुनि पुलक सरीर
धीर निधि धीरज त्याग्यो।
उत्कठित चख नीर
नाथ पद प्रेम नुराग्यो ॥
प्रेमहिं रह्यो समाइ बिसरि
जनु गो आपन पद।
सुपच हिए भरि भेटि सजल
ह्वै पुनि पुनि गद्गद ॥
तेहि मिलि कठ लगाइ भले।
पुनि हाथ गहे सग लै जो चले ॥

स्वपच से ही उन्हे ज्ञात हुआ कि ऋणभार से ग्रस्त होने के कारण उसे अयोध्या छोडकर जीविका की खोज मे काशी आना पडा है। गोस्वामी जाने उसे ऋणमुक्ति तथा जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त द्रव्य देकर पुन अयोध्या भेज दिया। वह

बेनीमाधव दास ने एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिससे यह विदित होता है कि उन्होंने उसे व्यावहारिक रूप भी दिया था। 'गोसाईं चरित' का 'सुपच प्रसंग' तुलसी की हरिजनप्रियता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

तुलसीदास जी काशी में अस्सीघाट पर निवास करते थे। एक दिन गंगा स्नान करके अपने आश्रम को लौट रहे थे कि रास्ते में उन्हें एक भंगी मिला। वह झाऊ का झाड़ू लिये हुए था। गोस्वामी जी से परिचित न होने के कारण वह उन्हें देख कर मार्ग से हटा नहीं, बगल से ही निकल गया। कुछ आगे बढ़ने पर किसी व्यक्ति द्वारा जब यह ज्ञात हुआ कि वे गोस्वामी तुलसीदास हैं तो उसने तत्काल लौटकर अशिष्टता के लिए क्षमा याचना की। उसने निवेदन किया कि मैं काशी के लिए एक नवागन्तुक व्यक्ति हूँ इसलिए श्रीचरणों को पहचान नहीं सका, मेरी जन्मभूमि अयोध्या है। गोस्वामी जी के कानों में जैसे ही 'अयोध्या' शब्द पड़ा, प्रेमातिरेक से विह्वल हो उन्होंने उस स्वपच को अपने हृदय से लगा लिया। बेनीमाधव दास ने इस स्थिति का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है—

गद्‌गद बानी शिथिल तन
व्याकुल प्रेम अधीर।
पूछत आव न बचन तेहि
पुनि पुनि पुलक शरीर॥
पुनि पुनि पुलक सरीर
धीर निधि धीरज त्याग्यो।
उत्कंठित चख नीर
नाथ पद प्रेम नुराग्यो॥
प्रेमहिं रह्यो समाइ बिसरि
जनु गो आपन पद।
सुपच हिए भरि भेंटि सजल
ह्वै पुनि पुनि गद्‌गद॥
तहि मिलि कंठ लगाइ भले।
पुनि हाथ गहे संग लै जो चले॥

स्वपच से ही उन्हें ज्ञात हुआ कि ऋणभार से ग्रस्त होने के कारण उसे अयोध्या छोड़कर जीविका की खोज में काशी आना पड़ा है। गोस्वामी जी ने उसे ऋणमुक्ति तथा जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त द्रव्य देकर पुनः अयोध्या भेज दिया। वह

प्रसन्न हो अपनी जन्मभूमि को लौट आया ।

गुरु के इस अलौकिक आचरण पर मुग्ध होकर वेणीमाधवदास कहते हैं—

ऐसे प्रेम को बलि जाऊँ ।
भय विप्र निषाद गुसाईंहि
गाँव ही को नाऊँ ।
साज परम उदासता
नित धर्म ही न्यो चाउ ।
हाँ मिथिल लोचन सजल
अति प्रेम ता पुलकाउ ।
करि पुनीत अगाध ठाकुर
पूजिव को भाउ ।
त्यागि सो अनुराग पूजे
गुरव ही के पाउँ ॥
'दास' कल्मष प्रसित जोई
तु कतहुँ नहि ठाउँ ।
याते अब तजि सरन लीजे
चरन सहज सुभाउ ॥

रामपूजा को छोड़कर 'गुरव' के चरणों की वन्दना करने वाले इस तुलसी को हरिजन विरोधी वे ही कह सकते हैं जिनके लोकपणाग्रस्त मानस में राम और तुलसी एक रूढ़िग्रस्त सामन्तवादी परंपरा के प्रतीक रूप में ही प्रतिष्ठापित हैं। भारतीय संस्कृति के आदर्श निर्माता इस महापुरुष का प्रकृत चित्र उनकी आँखों से ओझल ही रहेगा ।

रामचरित मानस में, श्रीसम्प्रदाय की वर्णाश्रम संबंधी मान्यताओं से प्रेरित होकर, गोस्वामी जी ने शूद्र वर्ग के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं, उनके लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और प्रबन्ध शैली भी काफी उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त अधिकांश उक्तियाँ जिनका दायित्व नासमझ आलोचक तुलसी पर समझते हैं अन्य रामायणों, पुराणों तथा भक्तिग्रन्थों से यथावत् संदर्भ में उद्धृत हैं। फिर संवत् १६३१ वि० के पश्चात् की रचनाओं में तुलसी के सामाजिक दृष्टिकोण में विशिष्ट परिवर्तन लक्षित होता है। खेद की बात है कि तुलसी साहित्य के इस विकासात्मक अध्ययन के अभाव में उस युग प्रवर्तक महापुरुष की 'महिमा मृगी' अपने कहे जाने वाले लोगों के ही वचन बाणों का शिकार बन रही है ।

तुलसी का लोकानुभव

गोस्वामी तुलसीदास जनकवि के रूप मे प्रतिष्ठित हैं । उनके 'रामचरित मानस' और विनयपत्रिका' शताब्दियो से उत्तरी भारत के लोकजीवन के मुख्य आध्यात्मिक सबल रहे हैं । साक्षर निरक्षर, धनी-निधन, नागर-गवार आदि समाज के विभिन्न वर्गों तथा मानसिक स्तरो के लोगों द्वारा उनकी कृतियाँ वेदो की भाति पूजी जाती रही हैं । दु ख मे उनकी पक्तियो का सहारा लेकर वे हृदय का भार हल्का करते हैं और सुख म उन्हें दुहरा कर द्विगुणित उत्साह के साथ कर्मक्षेत्र मे उतरने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं । तुलसी व राम के इस अद्भुत लोकाकर्षण का रहस्य क्या है ? उसमे ऐसी कौन सी विशेषता है जिसके कारण सहृदय मात्र उनके 'मानस' में अपने मन का प्रतिबिम्ब देखते हैं और उनकी उक्तिया मे अपनी हृत्तत्री की प्रतिध्वनि सुनते हैं ? मेरी समझ मे इस सारी सफलता के मूल मे गोस्वामी जी की लोकजीवन के प्रति गहरी सवेदना और उनका प्रगाढ़ लोकानुभव है । लोकजीवन के सूक्ष्मतम स्वरों तक बैठने और लोकप्रवृत्ति के विभिन्न रूपा के अवीक्षण की उनकी क्षमता अद्भुत है । उनके व्यक्तित्व म ये तत्व किन मन स्थितियो तथा स्रोता से सपादित, उनकी कृतियो मे किस रूप मे अभिव्यक्त और लोकभावना को किस सीमा तक परिष्कृत करने में सफल हुए हैं, यहाँ हम इसी पर विचार करेंगे ।

तुलसी का आविर्भाव प्रारभिक काल हुमायू के समय म हुआ। उनके जीवन का अधिकाश अकबर के शासन काल मे बीता, स० १६६२ म अकबर के दिवगत होने पर वे १८ वर्ष तक जहाँगीर की हुकूमत मे जीवित रहे । इस प्रकार मुगल सत्ता के उत्कृष्टतम काल की राज्यावस्था का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने का सुयोग मिला था । अपनी रचनाओ म उन्होंने यत्र तत्र इसके बडे ही मार्मिक विवरण दिये हैं ।

एकतन्त्र मुगल सम्राट का शासन सैन्यबल पर आधारित था । प्रजा को अकारण दण्ड देकर आतकित रखना उनकी नीति का मुख्य अग था । उसने अपनी सत्ता को दृढ करने के लिए परम्परागत राज्यवशा को पदच्युत करके उनके

स्थान पर सस्कार तथा व्यक्तित्वहीन राजे नियुक्त कर रखे थे—

गोड गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल ॥
साम न दाम न भेद कछु, केवल दड कराल ॥[1]

अधीनस्थ अमीर-उमरा तथा राजकर्मचारी उसकी इस नीति को बडी कठोरता से कार्यान्वित करते थे—

प्रभु ते प्रभु जन दुखद लखि, प्रजहि सभारे राउ।
करत होत कृपान को, कठिन घोर घन घाउ ॥[2]

रावण के अत्याचारों का वर्णन करते हुए उनके मानस नेत्रों के सामने समकालीन मुगल शासन बरबस आ जाता था—

बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापहिं कौन मिति ॥[3]

शासन तन्त्र के कर्णधारों के आचरण का वर्णन करते हुए यह भाव अधिक स्पष्ट हो गया है—

अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धम सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना ॥
बाढ़े बहु खल चोर जुआरा। जे लपट परधन परदारा।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिनके अस आचरन भवानी। ते निसिचर जानेहु सब प्रानी ॥[4]

भारतीय सैन्य नीति के बारूद के अथक प्रयोक्ता अन्यायी मुगलतन्त्र ने तत्कालीन जनजीवन में कितनी विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर दी थी इसका आभास तुलसी की निम्नांकित पक्तियों से मिल सकता है—

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल ॥[5]

हिंसा के साथ छल और प्रवचना का आश्रय लेकर मुगल शासन कभी हिन्दू राजाओं को आपस में ही लड़ाकर और कभी कपटपूर्ण मेल व्यवहार करके उन्हें आत्मसात् कर लेता था—

---

१ दोहावली, छद ५५६।
२ वही, छद ५०१।
३ रामचरितमानस, १।१८३।
४ वही, १।१८३, १८४।१,२,३।
५ दोहावली ५१५।

राजसमाज भाज कोटि कटु
कलमित कलुष कुचाल नई है।
नीति सत्य शुभ रीति गई घटि
बढ़ी कुरीति कपट कलई है ॥१

शासकों का आन्तरिक जीवन वैभव-विलासपूर्ण था। सुरा सुन्दरी में अंक में सरांटे भरते हुए इन्हें प्रजाहित की चिन्ता नहीं थी, इससे आये दिन दुर्जन पुरस्कृत और सज्जन दंडित होते रहते थे—

बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही, संतत सुरानीक प्रिय जेही ॥२

× × ×

कलि कुचालि सुभमति हरनि, सरलै दंडै मक्र।
तुलसी यह निहमय भई, बाढ़ी लेत न बक्र ॥३

इस प्रकार हिन्दुओं को सभी सम्भव उपायों से प्रताड़ित करके ये उन्हें दास के रूप में रखना चाहते थे। इस स्वप्न को सार्थक बनाने में ही उनकी सारी शक्ति लगी रहती थी। रावण की निम्नांकित उक्ति में तत्कालीन शासकों की ही मनोभावना व्यक्त होती प्रतीत होती है—

छुधा धाम बामहीन रिपु, सहजहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि राखिहौं, भली भाँति अपनाइ ॥४

निरंकुश राजतन्त्र अपनी ऐहिक वासनाओं की पूर्ति तथा हिंसात्मक नीति को कार्यान्वित करने के लिए अनेक अवांछनीय उपायों से धन एकत्र करता था—

मारग मारि महीसुर, मारि कुमारग कोटिक कै धन लीयो ।५

इस भौतिक आपत्ति के साथ ही दैवी प्रकोप से पड़ने वाले अकालों ने जनता की रीढ़ ही तोड़ दी—

कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिन अन्न दुखी सब लोग मरै।

चतुर्दिक बढ़ती हुई बेकारी और बेरोजगारी से बिलखती हुई जनता महात्रास की चपेट में आकर जीवन की आशा ही खो बैठी थी—

---

१ विनयपत्रिका, छंद १३९।
२ रामचरितमानस, १।३।१०।
३ दोहावली, छंद ५३७।
४ रामचरितमानस, १।१८१।
५ कवितावली, ७।१७९।

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोचवस,
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी ॥
दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबधु,
दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी ॥[1]

नीचे दारिद्र्य, ऊपर दशानन का क्रूर शासन, यही चक्की के दो पाट थे, जिनके भीतर पडे हुए असख्य मानव ककाल नृशसतापूर्वक पिसे जा रहे थे। उनका आर्त क्रन्दन लोककवि तुलसी की वाणी म कैसे मुखरित न होता ?

आप बीती

समकालीन लोकजीवन तथा लोक स्वभाव क अध्ययन मे तुलसी की जीवन-यात्रा की प्रारम्भिक परिस्थितिया बहुत सहायक हुइ। बाल्यावस्था से ही आश्रयहीन हो जाने के कारण दर-दर की ठोकर खाते हुए उन्हे समाज को अत्यन्त निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। अनाथ बालकों के प्रति बाल-बच्चे वाले जनसामान्य के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार के वे शिकार हुए थे। इसकी गूज उनकी कृतियो मे स्थान-स्थान पर सुनाई पडती है—

—घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय[2]
—बारे त ललात बिललात द्वारे द्वारे दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को ।[3]
द्वार द्वार दीनता कही पाहि पाहि बार बार, परी न छार मुह बायो ।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलन आगे को पेट खलायो ॥
—जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस
खाये टूक सबके विदित बात दुनी सो ।[4]
—चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यो कबहुँ न पेट भर्यो ।
फिर्यो ललात बिनु नाम उदरलगि, दुखहु दुखित मोहिं हेरे ।[5]

---

१ कवितावली, ७।९७ ।
२ दोहावली, १०९ ।
३ कवितावली, ७।७३ ।
४ विनयपत्रिका, २७५।१ ।
५ कवितावली, ७।७२ ।
६ विनयपत्रिका, छद २२६।३ ।
७ वही, २२७।३ ।

इस सर्वग्रासी विपन्नता से तुलसी का उद्धार गुरुदेव के श्रीकरों द्वारा हुआ। उन्होंने ही इस अनाथ बालक को शिष्य रूप मे स्वीकार कर अपने साथ सूकर खेत में ले जाकर सर्वप्रथम रामकथा सुनाई। सत्सग मे इन्हें साधुसमाज की रीति नीति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने का सुयोग प्रदान किया—

"परयो लोक रीति में पुनीत प्रीत रामराय
मोह वस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ।[1]

यौवनावस्था म ही गृहस्थाश्रम त्याग कर इन्हें पुन वैराग्य धारण करना पड़ा और फिर आजीवन यही वृत्ति रही। इन दोनो स्थितियो मे जीवनयापन करते हुए इन्हे तत्कालीन लोकजीवन के विविध पक्षो के सूक्ष्मान्वेषण का अवसर प्राप्त हुआ। साधुवेश मे इन्होंने देश के विभिन्न प्रदेशो का पर्यटन किया—

'अगणित गिरि कानन फिरयो बिन आगि जरयो हौं ।[2]

पर्यटन मे विधर्मियो द्वारा भ्रष्ट किये जाते हुए हिन्दू तीर्थों और मन्दिरो की दयनीय स्थिति को देखकर इन्हे अपार कष्ट हुआ—

"तुलसी देवल देव के, लागे लाख करोरि।
काग विचारे हगि भरे, महिमा भई कि थोरि।[3]

यह तो हुई विधर्मियो की बात, स्वधर्मियो का आचरण और भी लज्जा-जनक था। काशी में रहते हुए इनकी बढ़ती शैवों एव पडितो के विरोध का कारण बन गई, वे द्वेषाग्नि से जलने लगे। इन लोगो ने मौखिक विरोध करने तक ही सीमित न रहकर इन्हें शारीरिक यातना देने तक की धृष्टता की और इनके सबध में नाना प्रकार के प्रवाद फैलाये—

गाँव बसत वामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।
आधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे।
बेगि बोलि बरजिए करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूध्यो चहैं सठसाखि सिहोरे ॥[4]
साधु जानै महासाधु खल जाने महाखल
बानी झूठ साँची कोटि उठत हबूब है।[5]

---

१ हनुमान बाहुक ४०।
२ विनयपत्रिका २६६।२।
३ दोहावली ३८४।
४ विनयपत्रिका ८।३-४।
५ कबितावली, ७।१०८।

इन झंझावातों का धैर्यपूर्वक सामना करते हुए इनकी साहित्य साधना का दीपक अमंद प्रकाश विकीरता रहा—इस विश्वास से कि अंधकार का अन्ततः नाश होगा और विरोधियों को अपनी करनी का फल मिलेगा—

"कासी के कंटक जेते भये, ते सबै फल पाइहैं आपनो कीयो।
आजु की कालिह परों कि नरों, सब जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो।'[1]

इस प्रकार भूमिष्ठ होने के क्षण से लेकर अन्तिम काल तक विपरीत परिस्थितियों तथा समाजविरोधी तत्त्वों से संघर्ष करते हुए उन्होंने लोकजीवन का यथार्थ रूप देखा था। सजातीय और विजातीय, स्वजन और परजन—गँवार और नागर सबके स्वार्थपूर्ण आचरण से ऊबकर एक स्थान पर वे कहते हैं—

सहवासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक प्रवीन।
काल क्षेप केहि विधि करहिं, तुलसी खग मृग मीन॥[2]

गोस्वामी जी वीतराग महापुरुष थे। वे सांसारिक मायाजाल से दूर रहकर उदासीन भाव से कालयापन करते थे। उनका स्वयं कथन है—

मागीरथी जलपान करौं अरु नाम राम को लेत निते हौं।
मोको न लेनो न देनो कछू कलि भूलि न रावरी ओर चितैहौं॥[3]

इतने पर भी समाजकल्याण के नामधारी ठेकेदार उन्हें तंग करते थे, उन पर तरह-तरह की फब्तियाँ कसते थे, जिससे कभी-कभी वे तिलमिला उठते थे। आलोचकों की अम्यर्थना में ये शब्द उनके मुँह से इन्हीं परिस्थितियों में निकले होंगे—

"धूत कहै अवधूत कहै रजपूत कहै जोलहा कहै कोऊ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहव काहू की जाति बिगारि न सोऊ॥'[4]

अपनी तरह उन्होंने अन्य अनेक सुकृतियों को महिमामृगी खला के वाक्य-बाणों से विद्ध होती हुई देखी थी, अतः उनके द्वारा निरूपित लोकजीवन में लोकस्वभाव की यह विशेषता छूटने नहीं पाई।

तात्त्विक दृष्टि से गोस्वामीजी 'सीयराम मय सब जग जानी' के समर्थक थे, समस्त चराचर जगत् को रामलीला में अन्तर्हित तथा समस्त जागतिक प्रपंचों में रामलीला का ही दर्शन करते थे किन्तु लोकव्यवहार में उसके सत् तथा असत् दो पक्षों का अस्तित्व स्वीकार करते हुए 'राम' और 'रावण' को उनका प्रतीक

---

१ कवितावली, ७।१७६।
२ दोहावली, ४०४।
३ ४ कवितावली, ७।१०२, ७।१०६।

मानते रहे। सृष्टिरचना में इनका अनिवार्य एवं युगपत् अस्तित्व स्वीकार करते हुए एक सच्चे लोकसंग्रही महापुरुष की भांति वे लोकमर्यादा की रक्षा में सतत सावधान दिखाई देते हैं। उनका मत है—

जड चेतन गुनदोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार॥[1]
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥[2]

'जड-चेतन' का ज्ञान तुलसी ने भले ही शास्त्राध्ययन से प्राप्त किया हो किन्तु 'साधु असाधु' का परिचय उन्हें व्यापक लोक पर्यवेक्षण से मिला था। शास्त्रों में उनकी स्वभावगत विशिष्टताओं का जो विवरण पाया जाता है उसकी पुष्टि उन्होंने व्यक्त संसार को खुली आँखों से देखकर और उसके शीत उष्ण झकोरों का प्रत्यक्ष अनुभव करके की थी। उनकी कृतियों में समकालीन जनजीवन के जो सटीक तथा सजीव चित्र मिलते हैं वे इसी के परिणाम हैं। इन्होंने कहीं-कहीं प्राचीन कवियों तथा शास्त्राचार्यों की उक्तियाँ सामान्य हेर-फेर के साथ रख दी हैं। ऐसे स्थलों को देखकर यह आशंका नहीं होनी चाहिए कि वे अनुभव तो पूर्व पुरुषों के हैं तुलसी के अपने नहीं। हमारी धारणा है कि ऐसे प्रसंगों में तुलसी के अनुभव पूर्ववर्ती महापुरुषों के अनुभवों से अभिन्न हैं।

इसके विपरीत इनकी रचनाओं में ऐसे भी प्रसंग आये हैं जहाँ इनके अपने अनुभव परम्परागत आदर्श से विलक्षण हैं। गोस्वामी जी के ऐसे कुछ अनुभव समसामयिक समाज में व्याप्त विषमता, अभाव, पीडा तथा प्रतारणा से सम्बद्ध हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम के उपासक तथा आदर्शवादी भक्त होते हुए भी वे जीवन के कठोर यथार्थ की ओर हमारा ध्यान बराबर आकर्षित करते रहते हैं—

सुनिय सुधा, देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सुकृत मराल॥[3]

आज की तरह उनके समय में भी जनजीवन का मानसरोवर लोलुप तथा शंकालु कौओं, अंधकारधर्मा तथा कपटाचारी बगुलों का अड्डा बन गया था। जो एकाध हंस बच रहे थे वे लुप्त छिपकर एकान्त साधे हुए जीवनयापन कर रहे थे। सारा वातावरण विषाक्त हो गया था। ऐसे युग में सज्जनों का तिरस्कार और दुष्टों का अभिनन्दन होना स्वाभाविक था—

---

१ रामचरितमानस, १।६।
२ वही १।५ ६।
३ दोहावली, ३४७।

सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसनि खलई है ।[1]

जिस स्थिति मे सासारिक झमेला से दूर रहने वाले तुलसी ऐसे वीतराग सन्त के हृदय के ये उद्गार प्रकट हुए थे उस समय जनसामान्य की क्या दशा रही होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इस प्रकार की प्रगाढ अनुभवपूर्ण उक्तियाँ उनकी कृतियों में भरी पडी हैं, कही रामकथा और रामभक्ति निरूपण के प्रसग म और कही स्वतन्त्र रूप में इनका प्रकाशन हुआ है। इनकी विवेचना तत्कालीन वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के परिवेश म की जायेगी।

वयक्तिक जीवन

मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण तीन तत्वो—शरीर, मन अथवा वुद्धि तथा आत्मा की सहति से होता है। आदश जीवन म इनका आनुपातिक विकास आवश्यक है। व्यक्ति समाज का मूलाधार है। उसके विकास पर ही समाज का उत्थान निभर होता है। गोस्वामी जी इसकी महत्ता स अवगत थे। इसलिए पारमार्थिक दृष्टि से मनुष्य जीवन को क्षणभगुर तथा मनुष्य के कार्यक्षेत्र ससार का मिथ्या बताया है—

तुलसिदास सब विधि प्रपच जग जदपि झूठ श्रुति गावै।[2]

झूठो है झूठो है झूठो सत कहत जे अत लहा है।[3]

किन्तु व्यावहारिक रूप म उन्होंने उसकी उपादेयता एव चिरन्तनता स्वीकार की है—

पल्लवत फूलत नवल नित ससार विटप नमामहे।

आराध्य की लीलाभूमि भारत म जन्म लेने का उन्हें गर्व था—सत्कुल और स्वस्थ शरीर वडे भाग्य से मिलता है, यह उनकी धारणा थी—

भलि भारत भूमि भले कुल जन्म समाज सरीर भलो लहि कै।[5]

मनुष्य कर्मानुसार स्वर्ग अथवा नरक म जाता है—साधन द्वारा भोग की

---

१ विनयपत्रिका, १३३।५।
२ विनयपत्रिका, छद १९१।५,
३ कवितावली ७।३९।
४ रामचरित मानस ७।५
५ कवितावली, ७।३३।

भी प्राप्ति इसी शरीर से होती है। जो इसे प्राप्त कर परलोक नही सुधारता वह अभागा है।

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान विराग भगति सुख देनी ॥
साधनधाम मोक्ष के द्वारा। जो न पाइ परलोक सँवारा ॥
सो परत दुख पावई, सिर धुनि-धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥[१]

विषयासक्ति मनुष्य के आत्मोत्थान म सर्वाधिक बाधक है। माया की शक्तिशाली सेना से पराजित जीव पराधीन होकर अपना स्वरूप भूल जाता है और नाना ससृति क्लेश सहता है—

व्यापि रहेउ ससार मह, माया कटक प्रचड।
सेनापति कामादि भट, द्वेष कपट पाखण्ड ।।

इनमे काम और क्षुधा सबस प्रबल है। ये मनुष्य को अधा कर देते हैं—

तुलसी यहि जग आइके, कौन भयो समरत्थ।
कचन और मन पर कौन पसारयो हत्थ ।।[२]

पेट की माया अपरम्पार है। इसे ही भरने के लिए मनुष्य नाना प्रकार के उद्यम और निकृष्ट कर्म मे प्रवृत्त होता है—

किसबी किसान कुल, बनिक भिखारी भाँट
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेट की।
पेट को पढत, गुन गढत चढत गिरि
अटत महज वन अहन अखेट की।
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि
पेट ही को पचत बेंचत बेटा बेट की।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही ते,
आगि बडवागि ते बडी है आगि पेट की।[४]

इनका अत्यन्ताभाव असम्भव है, अत परमार्थ साधक को उदात्तीकरण द्वारा विषयोन्मुखी इद्रियों को आराध्य की अचना म सलग्न करना चाहिए—

---

१ रामचरितमानस ७।१२० १०।
२ वही, ७।७१-क।
३ कवितावली, ७।९६।
४ वही, ७।९६।

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।।[1]
श्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा करि अनुसरु ।
नयनन निरखि कृपा समुद्र हरि, अग जग रूप भूप सीता वरु ।।[2]

इस दृष्टि से त्रिकाड साधन मे उपासना अथवा भक्ति का अवलम्बन ही सुलभ तथा श्रेयस्कर है । रामनाम का आश्रय लेकर अपनी प्रवृत्ति के अनुसार वह परमात्मा सगुण अथवा निर्गुण—किसी भी रूप की आराधना म प्रवृत्त हो सकता है—

कलि नाम काम तरु राम को ।।
दलनि हार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घनघाम को ।।
नाम लेत दाहिनो होत मन बाम विधाता बाम को ।।[3]
"अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी ।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ।।[4]

भक्ति की प्राप्ति के लिए दो तत्त्व अनिवार्य हैं—श्रद्धा और विश्वास, उच्च शिक्षा, ज्ञान, अथवा बौद्धिक विकास नही । लोकजीवन मे इसका प्रत्यक्ष रूप स्त्रियो द्वारा व्रतोत्सवो पर की गई भीति पूजा म देखा जा सकता है—

अपनो ऐपन निजहथा, तिय पूजहिं निज भीति ।
फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति ।।[5]

साधना के क्षेत्र मे भी अधिकारी साधको का यह अनुभव है कि इन दोनो तत्त्वो के अभाव मे सिद्ध महापुरुष भी अन्तस्थ ईश्वर का दर्शन नही कर पाते ।

भवानीशकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तस्थमीश्वरम् ।।[6]

मफम वैयक्तिक जीवन के सयम और सरलता, कष्ट सहिष्णुता, परोपकार, परदु खकातरता, आदि वृत्तियो से प्रेरित कर्मों का महत्त्व निर्विवाद है । इसस आत्मिक शक्ति का विकास होता है । इनस सुसज्जित सदाचारी एव आस्तिक

---

१ रामचरितमानस, ७।१३० ।
२ विनयपत्रिका, छद २०५ ।
३ वही, छ० १५६ ।
४ रामचरितमानस १।२१।८ ।
५ दोहावली, छ० ४५४ ।
६ रामचरितमानस, मगलाचरण (बाल काण्ड) श्लोक २ ।

व्यक्ति के द्वारा ही पाशविक वृत्तियो का नियत्रण सभव है। ऐसा एक व्यक्ति अपने आत्मबल से बडी स बडी भौतिक शक्ति को पराजित कर सकता है।

महा अजय ससार-रिपु जीति सकइ सोइ बीर।
जाके असरथ होइ दृढ सुनहु सखा मति धीर ॥[1]

इस प्रकार उत्कर्ष लाभ कर लेने पर भी सभावित व्यक्ति को स्वार्थी सिद्धान्तहीन लोगो द्वारा की गई प्रशसा तथा दिये गये सम्मान से सदैव दूर रहना चाहिए, अन्यथा ये उसके द्वारा अर्जित साधन सपत्ति को क्षण भर मे नष्ट भ्रष्ट कर डालेंगे—

तुलसी भेडी की धँसनि, जड जनता सनमान।
उपजत ही अभिमान भो, खोवत मूढ अपान ॥[2]

पारिवारिक जीवन

अशस्वरूप जीव का तत्त्वदृष्टि से एकमात्र सम्बधी अशी अथवा ब्रह्म है। परन्तु शरीर धारण करने क पश्चात् लोकजीवन म उसके अनेक सम्बधी हो जाते हैं। ससार मात्र मे उसे इनके प्रति अपने कर्तव्य निभाने पडत है। तुलसी ने लोकजीवन की सफलता क लिए इन कतव्यो का पालन आवश्यक बताया है किन्तु यह कतव्यभावना जब आसक्ति अथवा मोह का रूप धारण कर लेती है तब कौटुम्बिक सम्बध आत्मविकास म बाधक ही नही हो जाते—रागद्वेषमय बन कर नारकीय दृश्य उपस्थित करते हैं और यमपुर का द्वार खोल देते हैं—

—सुत बनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह इनही ते।[3]
—सुत बित दार भवन ममता निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी।[4]
—जाके प्रिय न राम बैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।

—अजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौ ॥[5]

परिवार मे सम्बध के आधार पर कोई छोटा होता है कोई बडा। सबके

१ रामचरितमानस, ६।८०-क।
२ दोहावली, ४६५।
३ विनयपत्रिका १९८।
४ वही, पृ० १४०।
५ वही, पृ० १७४।

एक दूसरे से पृथक् सम्बन्धजनित कर्त्तव्य और अधिकार होते हैं। तुलसी ने समाज में लोगों को उत्तरोत्तर अधिकार प्राप्ति में सजग और कर्तव्य पालन में उसी अनुपात से शिथिल होते हुए देखा था—

सास ससुर गुरु मातु प्रभु, भयो चहैं सब कोय।
होना दूजी ओर को सुजन सराहिय सोय॥[1]

उनके समकालीन पारिवारिक जीवन में कितनी विशृंखलता उत्पन्न हो गई थी इसका निदर्शन रामचरितमानस के उत्तर काण्ड के कलियुग वर्णन प्रसंग में किया गया है। इससे कौटुम्बिक सम्बन्धों के पारस्परिक व्यवहार-विषयक उनके सूक्ष्म निरीक्षण का पता चलता है—

पिता-पुत्र सुत मानहिं मातु पिता तबलौं।
अबलानन दीख नहीं जब लौं।
ससुरारि पियारि लगी जबते।
रिपु रूप कुटुम्ब भये तबते॥

पुरुष कुलवति निकारहिं नारि सती।
घर आनहिं चेरि निबेरि गती।[2]

स्त्री गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी।
भजहिं नारि परपुरुष अभागी।[3]

इस विशृंखलता का मुख्य कारण था पारिवारिक जीवन के मूलाधार—सहानुभूति, प्रेम, त्याग आदि वृत्तियों का क्रमशः ह्रास और विधर्मी संस्कृति के प्रभाव से विलासिता एवं तज्जन्य चरित्रहीनता का विकास।

सामाजिक जीवन

तुलसी ने समसामयिक समाज की पतनोन्मुखी स्थिति का हृदयद्रावक दृश्य अनुभव नेत्रों से ही नहीं स्थूल चक्षुओं से भी देखा था। हिन्दू जीवन के मेरुदण्ड वर्णाश्रम व्यवस्था का ह्रास हो चला था। लोक-वेद-मर्यादा को तिलांजलि देकर लोग स्वेच्छाचारी हो रहे थे—

"आश्रम बरन धरम बिरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पापरत अपने अपने रंग रई है॥[4]

---

१ दोहावली, छ० ३६१।
२ रामचरितमानस, ७।१०१ ४,५,३।
३ वही, ७।९९ क, ४।
४ विनयपत्रिका, छ०

समाज के पथप्रदशक ब्राह्मण क्षत्रिय, सभी, अपने उच्च आदश से गिर चुके थे—

'विप्र निरच्छर लोलुप कामी।
निराचार सठ वृषली स्वामी॥'[१]
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥[२]

तथाकथित निम्न वण की जागृति से वर्ण विरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई थी—

"बादहिं सूद द्विजन सन, हम तुमसे कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाँटि॥[३]

१६वी शती के भक्ति आदोलन के परिणामस्वरूप निगुण सम्प्रदाय मे परिगणित तथा पिछड़ी जातियो के सतो का प्राधान्य हो चला था। ये गुरु रूप मे ब्राह्मणो द्वारा भी पूजे जाने लगे थे—

जे बरनाश्रम तलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।
ते विप्रन सन पाँव पुजावहिं, उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥[४]

इस गिरे हुए समाज मे आचार तथा योग्यता की परिभाषा का बदल जाना स्वाभाविक था—

कलिकाल कराल किये मनुजा।
नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा॥[५]
\+ \+ \+
मारग सोइ जा कह जो भावा।
पडित सोइ जो गाल बजावा॥
सोइ सयान जो परधन हारी।
करइ पखड सो बड आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना।
कलियुग सोइ गुनवंत बखाना॥[६]

जीवन की सामान्य पगडडिया पर चलने वाले लोगो की तो बात ही क्या उस काल के तथाकथित दार्शनिको तक की दृष्टि ब्रह्म से हटकर माया मे रम गई थी—

---

१ रामचरितमानस ७।१०० क ८।
२ रामचरितमानस ७।९८ क-२।
३ वही, ७।९९ ख।
४ वही, ७।१०० क ५ ७।
५ वही, ७।१०२ ३।
६ वही, ७।९८ ३,५,६।

"परतिय लपट कपट सयाने ।
मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर ।
देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥[1]

जहाँ पढे लिखे लोगो की यह दशा थी वहाँ अनपढ़ रूढिग्रस्त जनता भेडिया-धसान मे कैसे न फँसती—अयोध्या और उसके निकटस्थ सूकर खेत में बसते हुए उन्होंने इस विवेकहीनता का नग्न दृश्य अपनी आँखों देखा था। बहराइच के सैय्यद सालार की दरगाह की जियारत करने वाली अंधविश्वासी जनता के आचरण मे—

"लही आँखि कब आधरे, बाँझ पूत कब पाय ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाय ॥[2]

इस काल की शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन न होकर अर्थोपार्जन अथवा उदर-पोषण मात्र रह गया था—

मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं
उदर भरइ सोइ जतन सिखावहिं ॥[3]

पेट ही को पढत गुन गढ़त चढत गिरि
अटत गहन वन अहन अखेट की ।[4]

अत शिक्षकों की दृष्टि शिष्य की गाठ के पैसे पर अत्यधिक रहती थी, ग्रंथिमोचन अथवा शका समाधान पर कम—

"हरइ शिष्य धन सोक न हरई ।
सो गुरु घोर नरक महँ परई ॥[5]

सगुणमार्गी साधुओं की दशा और भी शोचनीय थी। उनमे वैराग्य वृत्ति का क्रमशः ह्रास होता जा रहा था। एक घर छोडकर अनेक घर बसाने के फेर में पडकर वे विषयसेवन में मग्न हो रहे थे—

"बहु दाम सवाँरहिं धाम जती ।
विषया हरि लीन नही विरती ॥

---

१ रामचरितमानस, ७।१०० क-८ १,२ ।
२ दोहावली, ४९९ ।
३ रामचरितमानस, ७।९९,८ ।
४ कवितावली, ७।९६ ।
५ रामचरितमानस ७।९९-७ ।

समाज के पथप्रदर्शक ब्राह्मण क्षत्रिय, सभी, अपने उच्च आदर्श से गिर चुके थे—

'विप्र निरच्छर लोलुप कामी।
निराचार सठ बृपली स्वामी॥[1]
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥[2]

तथाकथित निम्न वर्ण की जागृति से वर्ण विरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई थी—

"बादहिं सूद्र द्विजन सन, हम तुमते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि॥[3]

१६वीं शती के भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप निर्गुण सम्प्रदाय मे परिगणित तथा पिछड़ी जातियो के सतो का प्राधान्य हो चला था। ये गुरु रूप मे ब्राह्मणो द्वारा भी पूजे जाने लगे थे—

जे बरनाश्रम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।
ते विप्रन सन पाँव पुजावहिं, उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥[4]

इस गिरे हुए समाज मे आचार तथा योग्यता की परिभाषा का बदल जाना स्वाभाविक था—

कलिकाल कराल किये मनुजा।
नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा॥[5]
+ + +
मारग सोइ जा कहु जो भावा।
पडित सोइ जो गाल बजावा॥
सोइ सयान जो परधन हारी।
करइ पखड सो वड आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना।
कलियुग सोइ गुनवत बखाना॥[6]

जीवन की सामान्य पगडडियो पर चलने वाले लोगो की तो बात ही क्या उस काल के तथाकथित दार्शनिको तक की दृष्टि ब्रह्म से हटकर माया मे रम गई थी—

---

१ रामचरितमानस ७।१०० क ८।
२ रामचरितमानस ७।९८ क-२।
३ वही, ७।९९ ख।
४ वही, ७।१०० क ५ ७।
५ वही, ७।१०२ ३।
६ वही, ७।९८ ३,५,६।

"परतिय लपट कपट सयाने ।
मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदवादी ग्यानी नर ।
देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥'[1]

जहाँ पढे लिखे लोगों की यह दशा थी वहाँ अनपढ़ रूढ़िग्रस्त जनता भेड़िया-धसान मे कैसे न फँसती—अयोध्या और उसके निकटस्थ सूकर खेत मे बसते हुए उन्होंने इस विवेकहीनता का नग्न दृश्य अपनी आँखो देखा था। बहराइच के सैय्यद सालार की दरगाह की जियारत करने वाली अंधविश्वासी जनता के आचरण मे—

"लही आँखि कब आंधरे, बाँझ पूत कब पाय ।
कब कोढी काया लही जग बहराइच जाय ॥[2]

इस काल की शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन न होकर अर्थोपार्जन अथवा उदर-पोषण मात्र रह गया था—

मातु पिता बालकह बोलावहि
उदर भरइ सोइ जतन सिखावहि ॥[3]

पेट ही को पढत गुन गढ़त चढत गिरि
अटत गहन बन अहन अखेट की ।[4]

अत शिक्षको की दृष्टि शिष्य की गाठ के पैसे पर अत्यधिक रहती थी, ग्रंथिमोचन अथवा शका समाधान पर कम—

"हरइ शिष्य धन सोक न हरई ।
सो गुरु घोर नरक मँह परई ॥'[5]

सगुणमार्गी साधुओं की दशा और भी शोचनीय थी। उनमे वैराग्य वृत्ति का क्रमशः ह्रास होता जा रहा था। एक घर छोड़कर अनेक घर बसाने के फेर मे पड़कर वे विषयसेवन मे मग्न हो रहे थे—

"बहु दाम सवारहि धाम जती ।
विषया हरि लीन नही विरती ॥

---

१ रामचरितमानस, ७।१०० क-८ १,२ ।
२ दोहावली, ४९६ ।
३ रामचरितमानस, ७।९९,८ ।
४ कवितावली, ७।९६ ।
५ रामचरितमानस ७।९९-७ ।

तपसी धनवंत दरिद्र गृही।
कलि कौतुक तात न जात कही ॥[1]

निर्गुण धारा के संत प्राचीन आध्यात्मिक मार्गों को छोड़कर नये नये पंथो के प्रवर्तन में लीन थे—

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निजमत कल्पकरि प्रकट किय बहुपंथ॥

आचारहीन योगी तथा अघोरपंथियों की सिद्ध रूप में पूजा की जाती थी—

अशुभ वेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाँहि।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माँहि ॥[2]

सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त दुर्व्यवस्था को देखकर तुलसी ऐसा साहसी तत्वज्ञानी भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था—

कासों कीजै रोष दोष दीजै काहि ? पाहि राम
कियो कलिकाल सब खलल खलक ही।[3]

धार्मिक जीवन

दिल्ली सल्तनत के स्थापन काल से ही यवन शासन व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य इस्लामी संस्कृति तथा धर्म का प्रचार था। तीन सौ वर्षों के इस विधर्मी शासन के अत्याचारों से पिसते हुए हिन्दुओं के धार्मिक आचार-विचार लुप्त हो गये थे। जब वेद-पुराण का कथन-श्रवण ही दण्डनीय अपराध हो—ऐसे युग में धार्मिकता का तिरोहित हो जाना स्वाभाविक था। रावण द्वारा स्थापित राक्षसी राज्य व्यवस्था के वर्णन में प्रकारान्तर से तुलसी ने इस ओर संकेत किया है—

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहुविधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना ॥[4]

इस काल में व्यक्तिगत रूप से इतना चारित्रिक पतन हो गया था कि ब्रह्मज्ञान बघारने वाले ढोंगी कौड़ी के लिए गुरु तथा ब्राह्मणों की हत्या करने में नहीं हिचकते थे—

---

१ रामचरितमानस, ७।१००-१।
२ वही, ७।९७ क।
३ वही, ७।९८ क।
४ कवितावली, ७।९८।
५ रामचरितमानस, १।१८३।

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहिं न दूसर बात ।
कौडी लागि लोभ बस, करहिं विप्र गुरु घात ॥[1]

हिन्दू धर्म के भीतर प्रचलित विविध मतमतान्तर पारस्परिक विद्वेष तथा स्वार्थ साधन मे ही व्यस्त थे । चारो ओर पाखण्ड और उच्छृंखलता का ही साम्राज्य था—

दंभ सहित कलि धरम सब, छल समेत व्यवहार ।
स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार ॥[2]

लोकाचार

इसी प्रकार लोकरीति तथा लोकाचार के वर्णन मे गोस्वामी जी का दृष्टि-कोण पूर्णतया यथार्थवादी रहा है । ऐसे स्थलो पर उन्होंने आदर्श तथा मर्यादावाद के नियम ढाल कर लोकमानस का बडा ही आकर्षक स्वरूप चित्रित किया है । प्रकृत्या वीतराग होते हुए भी सामाजिक जीवन के रागरंजित कोनो तक उनकी अंतर्भेदिनी दृष्टि पहुँची थी । गारी को नई रोशनी के लोग अशिष्टता का प्रतीक मानते हैं किन्तु बाबा जी ने मांगलिक अवसरो पर उसका आयोजन एव प्रयोग लोकजीवन के लिए आनंद विधायक तथा श्रेयस्कर बताया है । उनके मत मे क्रोध तथा द्वेष की प्रेरणा से प्रयुक्त गालियाँ ही हानिकर हैं । हृदय से निकली हुई गालियाँ सजीवनी सुरा हैं, जिनका श्रवणपुटो से पान करके मुरझाये हृदय खिल उठते हैं, पोपले और झुर्रियो से भरे गालो पर सेब की लाली दौड जाती है । इनका रसास्वादन अत्यन्त उच्च चारित्रिक धरातल के सुसस्कृत लोग ही कर सकते हैं, तथाकथित सभ्य लोग नही—यह उनका स्पष्ट अभिमत है—

"अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार ।
प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध न गवार ॥[3]

ये अमृत रससिक्त गालियाँ मुण्डन, विवाह आदि के अवसर पर गाई जाती हैं । रामलला नहछू मे इसका वे एक नमूना दे गये हैं —

"गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो ।
रामलला सकुचाहिं देखि महतारी हो ॥[4]

---

१ रामचरितमानस ७।९९ क ।
२ दोहावली, ५४८ ।
३ दोहावली, ३२८ ।
४ रामलला नहछू, १८ ।

काहे राम जिव सांवर लछिमन गोर हो।
कीधो रानि कौसिलहिं परिगा भोर हो॥[1]

राम विवाह के अवसर पर बारातियों समेत महाराज दशरथ जनकपुर में भोजन के समय गाई जाने वाली गालियों का रसास्वादन करते हैं—

"जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी।
ले ले नाम पुरुष अरु नारी॥
समय सुहावन गारि बिराजा।
हंसत राउ सुनि सहित समाजा॥[2]

कवितावली में विनोदवश उन्होंने लंकादहन के अवसर पर राक्षसियों द्वारा हनुमान को दी गई गालियां को लोकजीवन में सम्बन्धियों के सम्मान में आयोजित होने वाली भोजन के समय की गाली का ही रूप दिया है—

तुलसी निहारि अरि नारी दे दे गारी कहैं
बावरे मुरारि बैर कीन्हों रामराय सो।[3]

इसी प्रकार लोकरीति विषयक उनके अनुभव एवं आस्था का भी एक नमूना देना असंगत न होगा। प्रसंग जानकी मंगल का है। विवाह के समय दूल्हा का भाई 'लावा परछता' है, सीता के कोई भाई नहीं था, इस लोकरीति को पूरा कौन करे। गोस्वामीजी ने परम्परागत मर्यादा की रक्षा के लिए सीता के भाई भूमि-पुत्र मंगल का उक्त अवसर पर अवतरण कराया—

प्रिय भ्राता के समय भौम तह आयउ।[4]
दुरी दुरा करि नेम सु नात जनायउ॥

ग्राम गीतों में आवश्यकतानुसार इस प्रकार पात्रों के सन्निवेश की परम्परा बहुत है। विवाह में दूल्हा को बहन को गाली गाई जाती है। सालियों और सरहजों का निशाना वही बनती है। प्रचलित रामकथा में राम के बहन नहीं थी, इस रिक्तता की पूर्ति प्रशांत स्वभाव के भाई राम की बहन 'शान्ता'[5] की सृष्टि

---

१ रामललानहछू, २१।
२ रामचरितमानस, १।३२९-६,७।
३ परवर्ती रामायणों में लक्ष्मीनिधि सीता के भाई कहे गये हैं। ये महाराज जनक (सीरध्वज) के भाई कुशध्वज के पुत्र थे।
४ जानकीमंगल, १६६।
५ वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में शांता दशरथ की पुत्री कही गयी

करने की गई। राम कलेवा के प्रसगो मे इसका उल्लेख मिलता है—

"बहिन तुम्हारि कहिए साता, सा मुनि सग सिधारी, हमारे राम लला।
तुम्हें गारी मैं केहि विधि देउँ, रसिया राम लला॥"[1]

लोक स्वभाव

लोक स्वभाव से उनका कितना गहरा परिचय था, उसकी प्रकट और अप्रकट छवियो का कितनी पैनी दृष्टि से उन्होंने निरीक्षण किया था, इसका अनुमान उनकी कृतियो म प्राप्त निम्नांकित उदाहरणो से लगाया जा सकता है—

(१) प्रेम और बैर दोनो मनुष्यो को अधा बना देते हैं। इनका प्रकर्ष उनकी बाहरी ही नही आन्तरिक आँखो की भी ज्योति समाप्त कर देता है—

तुलसी बैर सनेह दोउ, रहित विलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहिं सुरसरि बारि॥[2]

(२) मात्र आकर्षक वेष, लोहक व्यक्तित्व और मधुर वाणी से लोगो को प्रभावित करके जो लोग समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं अथवा धाक जमा लेते हैं, कालान्तर म अन्त परिष्कार के अभाव से उनका पतन अवश्य होता है—

बचन बेष ते जो बनै, सो बिगरै परिनाम।
तुलसी निज ते जो बनै, बनी बनाई राम॥[3]

(३) ससार मे हीनवृत्ति वाले निठल्ले आलोचको की कमी नही है, एक उक्ति है—

ठाढो द्वार न दै सकैं, तुलसी जे जन नीच।
निन्दहिं निमि हरिचद को का कियो करन दधीच॥[4]

(४) लोग मानसिक अथवा शारीरिक व्याधियो से ग्रस्त होने पर आरम्भ मे उपचार के लिए सामान्य कष्ट नही सहते, उचित आलोचना पर ध्यान नही देते, समय रहते सुधारना पसद नहा करते, वही रोग शनै शनै

है। किन्तु वायु, हरिवश, तथा मत्स्य आदि पुराणों मे इसे लोमपाद की कन्या माना गया है।

१ लोकगीत

२ दोहावली, ४१२।

३ वही, १५४।

४ वही, ३८२

बढ़कर असाध्य हो जाता है और तब मरीज को अपने साथ ले डूबता है—

लोकरीति फूटी सहै, आंजी सहै न कोय ।
जो तुलसी आंजी सहै तौ फूटा नहिं होय ॥[1]

प्रकृति किसी को क्षमा नहीं करती ।

व्यावहारिक दृष्टिकोण

व्यक्तिगत रूप से तुलसी सन्त स्वभावानुकूल शान्ति नीति के अनुयायी थे। लड़ाई झगड़े में पड़ना उन्हें पसन्द न था—

सुमति बिचारहिं परिहरहिं, दल सुमनहु संग्राम ।
सकुल गए तनु बिनु भये साखी जादौ काम ॥[2]

किन्तु अत्याचार की सीमा पार करते देखकर लोकमंगल के लिए वे यथा-स्थान दण्ड का समर्थन और आवश्यकता पड़ने पर शक्ति का प्रयोग आवश्यक मानते थे—

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुंदर नीती ॥
ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभिहि सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा । ऊसर बीज बए फल जथा ॥[3]

उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम के स्वभाव में क्रोध के इस लोकोपकारी स्वरूप का बड़ा ही सजीव चित्र प्रस्तुत किया है—

लछिमन बान सरासन आनू । सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू ॥

× × ×

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति ।
मूढ़ भाव मानो नहीं बिनु भय होय न प्रीति ॥[5]

धार्मिक भावना

तुलसी की धार्मिक भावनाएं उनके निजी भावानुभव से पूर्णतया प्रभा

---

१ दोहावली ४२१ ।
२ दोहावली ५११ ।
३ रामचरितमानस ५।५८ २ ३, ४ ।
४ वही ५।५८ १ ।
५ वही ५।५७ ।

वित हैं। उनकी दृष्टि मे साहित्य रचना का मूल उद्देश्य ही लोकहित साधन है—

"कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि सम सबकर हित होई।।[1]

इसीलिए उन्होंने परम्परा से अध्यात्मविद्या तथा तत्वज्ञान निरूपण के प्रतिष्ठित माध्यम सस्कृत भाषा को छोड कर लोकभाषा ब्रजी तथा अवधी म काव्य रचना की।

सस्कृतज्ञ होते हुए भी दुलभ 'कुमाच' का त्याग कर सवसुलभ 'कामरी' को अपनाने वाला कवि हृदय ही लोकमानस को प्रभावित कर सकता है—

का भाषा का सस्कृत, प्रेम चाहिए साच।
काम जो आवै कामरी, का ल करै कुमाच ।।[2]

लोकरुचि की विभिन्नता को ध्यान मे रखने हुए उन्होंने अपने पूव तथा समकालीन साहित्य क्षेत्र मे प्रचलित सभी प्रमुख शैलियो म आराध्य का गुणगान किया। इसके साथ ही प्राचीन परिपाटी के लोगों के परितोष के लिए रामचरित मानस के काण्डो के प्रारम्भ मे सस्कृत के श्लोको की भी योजना की।

वेद-शास्त्र की निन्दा करने वाले निर्गुण पथी सतो तथा प्रेमाख्यानकार सूफी कवियो का रवैया उन्हे देश के परम्परागत सास्कृतिक आदर्शों के प्रतिकूल दिखाई पडा। इसीलिए उन्होंने उसका डटकर प्रत्याख्यान किया—

साखी सबदी दोहरा कहि, किहनी उपखान।
भगति निरूपहि भगत कलि, निदहि वेद पुरान ।।[3]

एक स्थान पर तो वे इसी वग के एक 'अलख' जगाने वाले साधु को फटकारते और रामनाम जपने का उपदेश देते हुए देखे जाते हैं—

"हम लखि लखहि हमार लखि, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखै, रामनाम जपु नीच ।।

इन सामान्य विरोधों के बावजूद उत्तरी भारत मे राम-कथा उस समय भी व्यापक रूप से कही और सुनी जाती थी। सस्कृत और परिनिष्ठित ब्रज तथा अवधी मे ही नहीं ठेठ लोकभाषा मे भी स्त्री-पुरुष रामचरित गाकर परिस्थितिया से जूझने के लिए नई शक्ति और नई प्रेरणा प्राप्त करते थे—

---

१ रामचरितमानस, १।१४ क ६।
२ दोहावली, १६।
३ रामचरितमानस १।१० ख।
४ दोहावली १६।

"स्याम सुरभि पय बिसद अति, करहि गुनद सब पान ।
गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान ॥[1]

किन्तु इससे लोकहृदय मे उस एकान्तनिष्ठा की स्थापना नही हो पाती थी जो उन्हे राम मे अनुरक्त कर उनकी प्रवृत्ति को एक नया मोड दे सके । तुलसी को यह देख कर दुःख होता था कि लोग रामायण पढ़ते तो थे, किन्तु आचरण म महाभारत से ही प्रेरणा प्राप्त करते थे । उनकी कथनी और करनी मे महान् अन्तर था—

रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति ।
तुलसी सठ की को सुनै, कलि कुचालि पर प्रीति ॥[2]

लोग परात्पर ब्रह्म के अवतार रावणातक राम मे श्रद्धा रखत हुए भी आसुरी प्रवृत्ति और आसुरी शासन स आक्रान्त हो रहे थे । स्वय तुलसी ऐसा स्थितप्रज्ञ एव अडिग विश्वासी भी परिस्थिति का इस करालता को देखकर निराश हो चला था—

राम सुजस कर चहुँ निसि होत प्रचार ।
असुरन कह लखि लागत जग अँधियार ॥[3]

लोकनायक तुलसी का सन्देश

अपने समकालीन वैयक्तिक, पारिवारिक सामाजिक तया राजनीतिक जीवन म व्याप्त इस अधकार से मुक्ति पाने का एकमात्र साधन तुलसी की दृष्टि मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम की सर्वतोभावेन शरणागति थी । उन्ही का लोकपावन चरित मानव-जीवन के इन सभी पक्षो का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत कर निराश, हीनभावग्रस्त और किंकर्तव्यविमूढ जनमानस म आशा तथा उत्साह का सचार कर सकता था और इस प्रकार आत्मिक विकास के साथ ही सामाजिक उत्थान, तथा राजनीतिक परिवर्तन सघटित करने म वह प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकता था । अपनी कृतियो मे उन्होने बार बार रामचरित के इस लोकोद्धारक स्वरूप की ओर पाठको का ध्यान आकृष्ट किया है—

मगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।[4]

---

१ रामचरितमानस, १।१०ख ।
२ दोहावली, ५४८ ।
३ बरव रामायण, ५।३९ ।
४ रामचरितमानस १।१० ।

रघुबसभूपनचरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावही।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावही ॥[1]
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपाल तेरे
नाम के प्रभाव न त्रिताप तन दाहिए।[2]
कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दम पाखण्ड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, इंधन अनल प्रचंड ॥[3]

कहने को जहांगीर किन्तु वास्तव में नूरजहाँ के शासन मे अपने अन्तिम दिन व्यतीत करने वाले इस महाप्राण सन्त ने उसी निष्ठा के आधार पर मुगल-साम्राज्ञी की उपेक्षा कर एकमात्र सीता को ही "साहिबिनी" माना—

'मेरी साहिबिनी सदा सीस पर बिलसत।
देवि! क्या न दास को देखाइयत पायजू ॥[4]

और बड़ ही दृढ़ स्वर मे आततायी मुगलतन्त्र के विनाश की भविष्यवाणी की—

'राज करत बिनु काज ही, करैं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकंध ज्यों जैहैं सहित समाज ॥

इस प्रकार सर्वग्रासी शासन तन्त्र से आक्रान्त लोकजीवन का अन्तरंग परिचय प्राप्त करने के बाद ही वे ऐसे रामरसायन के निर्माण में समर्थ हुए जिसके सेवन से रोगग्रस्त राष्ट्र स्वस्थ हो विधर्मी शासन और संस्कृति से आत्मरक्षा करने में सफलता प्राप्त कर सका।

उन्होंने रामभक्ति के ऐसे स्वरूप की प्रतिष्ठा की जिसमें लोकमानस को अंधविश्वास, हीनभाव तथा रूढ़िवाद से मुक्त करने का सामर्थ्य था—

कृपिन देइ पाइअ परो, बिन साधन सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि, जो कीजै सुभ सोइ ॥
नखत मुहूरत जोग बल, तुलसी गनिय न काहि।
राम भये जब दाहिने सबै दाहिने ताहि ॥

और जिसमें कलियुग को सतयुग में बदलने की क्षमता था—

---

१ रामचरितमानस, ७।१३०-२
२ कवितावली, ७।७६।
३ दोहावली, ५६५।
४ वही, ७।१३६।
५ दोहावली, ४१६।
६ रामाज्ञा प्रश्न ४।३।

कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर विस्वास ।
गाइ राम गुन गन विमल, भव तर बिनहिं प्रयास ॥[1]

जनसामान्य मे राममक्ति का प्रचार करने के लिए उन्होंने रामलीला की लोकरंजन पद्धति का आश्रय लिया और स्थान-स्थान पर हनुमान मन्दिरा की स्थापना की। रामोपासना म हनुमान तत्त्व को प्रमुखता देकर उन्होंने अध्यात्म साधना के साथ बलोपासना का मार्ग प्रशस्त किया और जनमानस म यह भावना कूट कूटकर भर दी कि सभी प्रकार की आपत्तिया से त्राण संकट-मोचन केसरी नन्दन ही दिला सकते हैं—

दुजन को काल सो कराल पाल सज्जन को
सुमिरत हरनहार तुलसी की पीर को।
सीयसुखदायक, दुलारो रघुनायक को
सेवक सहायक है मुवन समीर को ॥[2]

तुलसी की अगाध निष्ठा और साधना का बल पाकर महावीर हनुमान लोक-देवता बन गये और दशरथसुत राम लोकब्रह्म। उनके इष्टदेव, जनमत की तो बात ही क्या जनरव तक का आदर करने वाले थे। उन्होंने मात्र लोकध्वनि के आधार पर अपनी अग्नि परीक्षित साध्वी स्त्री सीता को भी बनवास दे दिया था—

चरचा चरनि सो सुनि जानमनि रघुराइ।
दूत मुख सुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी आइ।[3]
झूठे अघ सिय परिहरी तुलसी स्वामि ससक।[4]

लोकवन्द्य महापुरुष राम की भक्तिवीथी को तुलसी ने राजमार्ग के रूप म परिणत कर दिया। यह ऐसा प्रशस्त तथा निरापद पथ बन गया जिस पर धना निधन, गृहस्थ विरक्त निर्गुण-सगुणोपासक, पढे-अपढ, छोटे-बड समाज के सभी वर्गों तथा स्थितिया के लोग सब समय बेखटके चल सकते थे। उनके गुरुदव ने इस मार्ग की महत्ता की ओर इंगित मात्र किया था—

गुरु कह्यो राम भजन नीको
मोहि लग्यो राज डगरो सो।

---

१ रामचरित मानस, ७।१०३ क।
२ कवितावली (हनुमान बाहुक) छं० १०।
३ गीतावली, ७।२७।
४ दोहावली, छं० १६६।
५ विनयपत्रिका, १७३।५।

काल प्रवाह में तुलसी की यह मान्यता उत्तरोत्तर प्रतिष्ठित होती गई और आराध्य के प्रति उनके अन्तस्तल से निकले अर्चना के स्वर लोकहृदय के हार बन गये।

लोकमानस की सूक्ष्मतम प्रवृत्तियों के गहन अध्ययन और लोकजीवन की अन्तर्धाराओं के प्रगाढ़ परिचय के आधार पर ही भगवान बुद्ध की भाँति उन्होंने जन-सामान्य को लौकिकता तथा आध्यात्मिकता के अतिरेक से बचा कर मध्यममार्गी आचार-पद्धति अपनाने का उपदेश दिया और राम के चरित में उस आदर्श की पराकाष्ठा दिखा कर उनकी भक्ति में ही मानव जीवन की सार्थकता प्रतिपादित की। स्विप्नसाकेत के स्थान पर 'रामपुर' की प्रतिष्ठा कर उन्होंने एक प्रकार से आदर्श की अपेक्षा यथार्थ को अधिक महत्व दिया था—

घर कीन्हे घर जात है, घर छाड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच रहु, रामप्रेमपुर छाइ॥

गोस्वामी जी की यह यथार्थवादी दृष्टि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी लक्षित होती है। समाज में प्रतिष्ठाप्राप्त उच्च वर्ग के धनीमानी व्यक्तियों को शोषक और विषाक्त प्रवृत्तियों के प्रसारक तथा अभावग्रस्त और परिश्रमशील किसानों-मजदूरों को लोकपोषक एवं लोकहित साधक बताकर उन्होंने जिस अपार संवेदनशील हृदय और अन्तर्भेदिनी दृष्टि का परिचय दिया है, वह आज की समाजवादी व्यवस्था का मूलाधार कहा जा सकता है। तुलसी का अपना अनुभव इन पंक्तियों में कितनी स्पष्टता से व्यक्त हुआ है।—

अति ऊँचे भूधरन पर, भुजगन को अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, अन्न ऊख अरु पान॥

मानवता के लिए इस क्रान्तदर्शी महाकवि का यही सन्देश था और इसी में उसके लोकानुभव की सार्थकता थी। ●

मीराबाई के रामभक्तिपरक पद

वैष्णव भक्ति आन्दोलन की यह एक उल्लेखनीय विशेषता थी कि उसने समस्त पूर्ववर्ती साधना पद्धतियों को आत्मसात् कर श्रद्धा विश्वास पुरस्सर उपासना का नवीन राजपथ निर्मित किया, जिसमे शास्त्र अथवा परोक्ष ज्ञान की अपेक्षा अनुभव अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया गया था। यही कारण था जिससे विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियो, भाषाओं और आचार-विचार वाले इस विशाल देश के एक छोर से दूसरे छोर तक उसके सिद्धान्तों का समादर हुआ और कालान्तर मे वैष्णवमत लोक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हो सका। अद्वैतियो का ब्रह्मवाद, कौलो तथा सहजयानी सिद्धों की गुह्य साधना, नाथ पथियो का कायायोग तथा सूफियों की विरहासक्ति सबको न्यूनाधिक मात्रा में भागवत धर्म के इस कालजयी प्रवाह मे यथोचित समादर एव प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। इसका मुख्य श्रेय स्वामी रामानन्द के उदार दृष्टिकोण, समन्वयवादी विचारधारा तथा युग प्रवर्तक व्यक्तित्व को है। मध्यकालीन निर्गुण तथा सगुण भक्तिधारा उसी विराट स्रोत से प्रवाहित हुई। नीच-ऊच की भावना का त्याग[1] साधना मे स्त्री पुरुषो के समानाधिकार की घोषणा,[2] अन्य देवोपासकों के प्रति द्वेष भावना का त्याग,[3] अहिंसा व्रत का पालन[4] जैसे लोकोपयोगी सिद्धान्तो के प्रचार से उन्होने सामाजिक जीवन मे सौहार्द्र तथा सदाचार के प्रसार का द्वार उन्मुक्त कर दिया। तत्कालीन परिस्थितियो को देखते हुए यह निश्चय ही एक क्रान्तिकारी कदम था। इसी का परिणाम था कि उनके द्वारा प्रवर्तित तथा शिष्य प्रशिष्यों द्वारा सवर्द्धित रामभक्ति और रामनाम मध्यकाल की निर्गुण तथा सगुण दोनो शाखाओ के अन्तर्गत विकसित विविध सम्प्रदायो मे व्यापक रूप से न्यूनाधिक मात्रा मे ग्राह्य हुआ।

हिन्दी में वैष्णव भक्ति का प्राथमिक उद्रेक नामदेव की रचनाओ मे मिलता

---

१ वैष्णव मताब्जभास्कर—स० भगवदाचार्य, पृ० १५० ।
२ वही, पृ० १५० ।
३ वही पृ० १८३ ।
४ वही, पृ० ११३, ११४, ११५, १८२।

है। रामनाम जप का माहात्म्य,[1] राम की भक्तवत्सलता, दशरथपुत्र राजा रामचन्द्र का शरण्य रूप में वरण,[2] राम के प्रति कांतासक्ति,[3] रामभक्तों के माला-तिलक तथा मुद्रा युक्त वेष में निष्ठा,[4] श्रीरंग और श्रीराम में अभेद भाव की स्थापना विषयक पद उन्हें आलवारों और श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा प्रवर्तित रामभक्ति की प्रवृत्त धारा का साधक सिद्ध करते हैं। एक स्थान पर वे बैरागी[6] को सम्बोधित करते हुए रामनाम गाने का संकल्प व्यक्त करते हैं। कहना न होगा कि यों तो वीतराग या वैरागी साधकों की चर्चा रामानन्द के पूर्व लिखी गयी कृतियों में भी मिलती है किन्तु रामोपासक वैरागियों का एक सम्प्रदाय रूप में संगठन सर्वप्रथम रामानन्द ने ही किया था जिसके फलस्वरूप आगे चलकर 'वैरागी' शब्द मात्र रामभक्त विरक्त संत का बोधक माना जाने लगा। मौलाना रशीदुद्दीन ने 'तजकिरतुलफुकरा' में इसकी चर्चा की है।[7] 'दबिस्तानुल तवारीख' नामक मध्यकाल के एक अन्य ऐतिहासिक वृत्त में रामानन्द द्वारा स्थापित वैरागी सम्प्रदाय के नामकरण कारण, पूजापद्धति, तीर्थाटन तथा वेष के अंतर्गत तुलसीमाला और तिलक का वर्णन करते हुए कबीरदास को उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध बताया गया है।[8] नामदेव पर स्वामी रामानन्द के सिद्धान्तों का इतना गहरा प्रभाव उनमें किसी स्तर पर निकट सम्पर्क का व्यंजक है। डा० मोहनसिंह ने उनके बीच गुरु शिष्य सम्बन्ध की चर्चा की है और अपनी इस उपपत्ति के

१ नामदेव के हिंदी पद, पृ० ७१, ११६, १२०
२ वही, पृ० ११८, ११६
३ हिंदी को मराठी संतों की देन, पृ० २५३,
४ वही, पृ० २५५
५ वही, पृ० २५२, २५४
६ वैरागी रामहि गाऊंगो—वही, पृ० ११४
७ भागवत सम्प्रदाय, प० बलदेव उपाध्याय, पृ० २५५
८ 'बैराग लुगत में तलब के मानी होते हैं। यह तारिक दुनिया होते हैं। इनकी इबादत में वह अशआर होते हैं जो विशुन की तारीफ में कहे जाते हैं। विशुन के मजाहिर राम और किशन और उन्हीं की तरह और दूसरे हैं। इनके अशआर को विशुनपद कहा जाता है और विशुन के जो मुकद्दस मुकामात इनसे मनसूब हैं, वहाँ जाते हैं। तुलसी की तसबीह गरदन में लटकाते हैं और उसको माला-तुलसी कहते हैं हिंदू मुसलमान जो भी चाहे इस सुलूक को अख्तियार कर सकता है इन बैरागियों में सबसे ज्यादा शुहरत कबीरदास को हासिल हुई।
क—दबिस्तानुल तवारीख पृ० १५७-१५८
(मुसलमान हुक्मरानों की मजहबी रवादारी—सय्यद सबाहुद्दीन अब्दुल रहमान, पृ० १५७-१५८ पर उद्धृत)

समर्थन मे स्वामीजी के शिष्य अनन्तानन्द के अन्तेवासी गणेशानन्द द्वारा १५५२ ई० मे मथुरा में लिखी गयी एक पुस्तक का उल्लेख किया है।[1] अपेक्षित प्रमाणो के अभाव मे रामानन्द को नामदेव का गुरु स्वीकार करने में आपत्ति हो सकती है किन्तु दोनो के प्राय समकालीन होने से रामानन्द ऐसे लोकसंग्रही तथा विचरणशील महापुरुष से नामदेव का सम्पर्क लाभ असंगत नहीं कहा जा सकता।

परम्परागत वैष्णवभक्ति साहित्य में बद्धमूल रामोपासना के तत्त्व परवर्ती निर्गुणमार्गी तथा कृष्णोपासक भक्तो को रिक्थ मे प्राप्त हुए। संतों की निर्गुण रामभक्ति के स्वरूप का विवेचन शोध तथा आलोचनात्मक ग्रंथो में विस्तार-पूर्वक हो चुका है। यहाँ 'गिरिधर गोपाल' की अनन्योपासिका मीराबाई की राम निष्ठा पर उनके कुछ नवप्राप्त पदो के प्रकाश में विचार किया जायगा। इसके पूर्व कि उक्त पदो के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषण किया जाय, उनके निर्माण में प्रेरक परिस्थितियो का आकलन कर लेना समीचीन होगा।

मीरा के आविर्भावकाल तक राजस्थान में नाथपंथ का एकाधिकार समाप्त हो चला था। स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य श्रीकृष्णदास पयहारी ने अपनी अलौकिक सिद्धियो और योगबल से तारानाथ योगी को पराजित कर उसकी रही सही प्रतिष्ठा समाप्त कर दी। आमेर के राजा पृथ्वीसिंह ने पयहारीजी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। पयहारीजी की उपस्थिति से गलता गद्दी मुख्य आचार्य-पीठ बन गया। उनके २४ शिष्यो ने उत्तरी भारत मे घूम-घूम कर रामभक्ति के प्रचार-केन्द्र स्थापित किये किन्तु इनका मुख्य कार्य क्षेत्र राजस्थान ही रहा। रामभक्ति में रसिक शाखा के प्रवर्तक अग्रदास और उनके प्रसिद्ध शिष्य भक्त-मालकार नाभादास का साधनास्थल जयपुर के निकट रैवासा नामक आचार्य-पीठ था। अग्रदास पयहारीजी के शिष्य थे। इनके ज्येष्ठ गुरुभ्राता कील्हदास पयहारीजी के बाद गलता गद्दी के अधिकारी हुए। उत्तरी भारत के रामभक्तो की अधिकांश परम्पराएं इन्ही दोनो गद्दियों से सम्बद्ध हैं।

मीराबाई और रामानन्द सम्प्रदाय

सोलहवीं शती मे राजस्थान की इस सर्वाधिक सशक्त तथा व्यापक राम-भक्ति धारा से मीरा के प्रगाढ़ परिचय के अनेक प्रमाण मिलते है। एक स्थान पर वे गुरु रामानन्द का श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए कहती है[2]—

---

१ हिन्दी को मराठी संतों की देन—डा० विनय मोहन शर्मा पृ० १०५।

२ मीरा बृहद् पद संग्रह—स० पद्मावती शबनम, पृ० २२२।

रामजी पधारे धनि आज की घरी।
आज की घरी वो भाव री भरी॥
गुरु रामानन्द अरु माधवाचारज[1] भीमानन्द[2] बिसनहरी।
मीरा के प्रभु हरि अविनाशी पलहि पीवो प्याला प्रेम हरी॥

उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार मीरा के आविर्भाव के बहुत पहले ये तीनों महापुरुष दिवंगत हो चुके थे। अतः इससे यह निष्कर्ष निकालना कि मीरा ने इस पद में उनके अपने घर पधारने का वर्णन किया है, युक्ति संगत न होगा। मीरा ने अपनी कृतियों में कई स्थलों पर श्रद्धेय पुरुषों, सतगुरु तथा इष्टदेव के स्वप्न दर्शन का वर्णन किया है। उपर्युक्त पद उसी भावना से प्रेरित प्रतीत होता है।

मीरा द्वारा स्वामी रामानन्द को गुरु रूप में चर्चा का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र इधर प्रकाश में आया है,[3] जिसका आधार डा० प्रभात की आमेर के 'जगत शिरोमणि मंदिर' के पुजारी पं० गिरिधारी लाल द्वारा दी गयी सूचना है। उसके अनुसार उसमें स्थापित 'गिरिधर' की मूर्ति वही है जो मीरा को पयहारी श्रीकृष्णदास के शिष्य देवाजी से प्राप्त हुई थी और उसे देवाजी को स्वयं स्वामी रामानन्द ने दी थी। देवानन्द और स्वामी रामानन्द के बीच तीन पीढ़ियों का अन्तर है—रामानन्द, अनन्तानन्द, श्रीकृष्णदास पयहारी, देवानन्द। इस दीर्घकालिक व्यवधान को देखते हुए रामानन्द का देवाजी को स्वयं मूर्ति प्रदान करना सामान्यतया संभव नहीं जान पड़ता। मेरी धारणा है कि उक्त सूचना केवल इस रूप में विश्वसनीय मानी जा सकती है कि देवाजी को रामानन्द द्वारा समादृत 'गिरिधर' की मूर्ति गुरु परम्परा से प्राप्त हुई थी। रामानन्द सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा कितनी थी, इसका अनुमान श्री वैष्णव-मताब्ज भास्कर में 'कृष्ण जन्माष्टमी व्रत' के विधि विधान की व्याख्या तथा उनके प्रशिष्य और

---

१ ये वेद भाष्यकार सायणाचार्य के ज्येष्ठ भ्राता थे—मीराबाई—डा० प्रभात, पृ० १६६।

२ ये स्वामी रामानन्द के समकालीन संत थे।

३ वही, पृ० १६५-१६६।

४ मीराबाई (डा० प्रभात), पृ० १९०। एक बार देवाजी गाड़ी में बैठाकर उस मूर्ति को ले जा रहे थे। रास्ते में चित्तौड़ में ठहरे। वहाँ मूर्ति स्थापित की। मीरा वहीं थीं। उन्होंने दासी को भेजा। मीरा उस मूर्ति को महलों में ले गयीं। वही पृ० १९०।

५ वैष्णव मताब्ज भास्कर (सं० भगवदाचार्य) श्रीकृष्ण जन्माष्टमी-व्रत प्रकरण पृ० १२८-३०।

देवाजी के गुरु के श्रीकृष्णदास नाम से ही लगाया जा सकता है।

देवाजी चित्तौडगढ के पुरोहित थे। मीरा से उनकी भेंट चित्तौड में ही हुई थी। वे अपने समय के प्रसिद्ध संत थे। नाभादास ने 'देवाहित सित केस प्रतिज्ञा राखी जन की'[1] लिखकर उनके भगवत्कृपापात्र होने का संकेत दिया है। प्रियादास ने इस सूत्र को पल्लवित कर चित्तौडगढ चतुर्भुजा जी द्वारा अपने केशों को श्वेत करने और राणा को दर्शन न करने की आज्ञा दण्डस्वरूप देने की घटना का उल्लेख किया है। चित्तौड पर विजय के बाद महाराज मानसिंह गिरिधर की यह मूर्ति आमेर ले आये और महल मे भीतर मंदिर बनवा कर उसे स्थापित कर दिया। मानसिंह अग्रदास के शिष्य थे अत गुरु परम्परा में समाहृत श्री विग्रह की सेवा-पूजा के लिये उन्होंने अग्रदास जी के गुरुभाई और उस मूर्ति के पुराने पुजारी देवाजी को चित्तौड मे आमेर से बुला लिया।[2]

रामानन्द सम्प्रदाय से मीराबाई के सम्बद्ध होने का एक अन्य स्रोत उनके द्वारा संत रैदास का अनेक स्थलों पर गुरु रूप मे उल्लेख भी है—

मीरा ने गोविन्द मिल्या जी गुरु मिल्या रैदास।
म्हारो गुरु रैदास है, सजनी म्हारो है।[3]
गुरु मिल्या रैदास जी दीनी ग्यान की गुटकी।
मीरा सरणे राम के म्हाने गुरु मिलिया रैदास।[4]

कुछ समालोचक काल के आधार पर मीरा का रैदास से दीक्षा लेना संभव नहीं मानते और जिन पदों मे ऐसी पंक्तियाँ है उन्हें प्रक्षिप्त घोषित करते हैं। मीरा की सगुण तथा रैदास की निर्गुण साधना पद्धति में सैद्धांतिक विरोध बता कर वे अपने मत का समर्थन करते हैं। किंतु थोडा ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मीरा तथा रैदास की रचनाओं में परम्परागत संत मत की हठयोग, भाव-भक्ति, अनुभव पथ, सगुण-निराकार तथा विष्णु के विभिन्न अवतारों के नाम आदि के प्रति समान रूप से जो आस्था व्यक्त की गयी है और सगुण साकाराश्रित भक्ति के प्रतिपादक होते हुए भी सगुण निर्गुण से परे प्रियतम की जिस अलौकिक छवि का वर्णन उनकी रचनाओं में मिलता है, वह साम्प्रदायिक कृष्णोपासकों की अपेक्षा निर्गुणिया संतों तथा सूफी फकीरों की प्रेमपद्धति के

---

१ श्री भक्तमाल—रूपकला पृ० ४३०।
२ मीराबाई—डा० प्रभात पृ०।६५।
३ मीरा बृहद् पद संग्रह—पद्मावती शबनम पृ० ८।
४ मीराबाई की शब्दावली और जीवन, बेलवेडियर प्रेस पृ० २०।
५ मीरा बृहद् पदावली, पद्मावती शबनम पृ० ६।

अधिक निकट है। ऐसी स्थिति में परम्परया प्रतिष्ठित रैदास और मीरा के गुरु-शिष्य सम्बन्ध को सहसा अमान्य नहीं ठहराया जा सकता।

मीरा का नव प्राप्त निम्नांकित पद इस समस्या के समाधान में सहायक हो सकता है—

आजि म्हारे पांवणीया वैरागी जी । जनम सुधारण सतगुरु आया जी ॥
आजि सखि म्हारे सुपनो री आयो । सत बधाई कोई ल्याया जी ॥
ऊँची चढि हू जोवण लागी । म्हारा सतगुर नजर पराया जी ॥
प्रेम के धारे उतरत देखा । आण पिया राजन आया जी ॥
भगवाँमा कपडा कर में डोरी ॥ दरसण की बलिहारी जी ॥
भाव भगति सूं करूं रसोई । प्रीति की झारी भर ल्याऊँजी ॥
आज सखी हूँ तो हरख फिरू छूं । सतगुर काई म्हाने बगसे जी ॥
सील सतोष क्रिपा करि दीन्हा । मो उर आनन्द कीन्हा जी ॥
पण परसादी म्हाने सतगुरजी दीन्ही । मो उपरि किरपा कीन्ही जी ॥
प्रीति करै न राम पद रज लेस्यु । म्हारो सीस चरणा सर देस्युं जी ॥
चरण धोइ चरणामृत लेस्यू । म्हारा पाप बिनै होइ जासीजी ॥
कर जोड्या रामजी अरज करूं छूं। म्हारो जनम सुधारो सतगुर स्वामीजी ।
मीरा कहै प्रभुहरि अविनासी । जनम-जनम की मैं दासीजी ।[१]

इससे कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं—

१ मीरा ने स्वप्न में वैरागी वेष मे सतगुर का दर्शन किया।

२ उनका अवतरण प्रेम धारा के माध्यम से हुआ।

३ मीरा ने भाव भक्ति रूपी भोजन तथा प्रीतिजल से उनका स्वागत सत्कार किया।

४ सद्गुरु ने प्रसन्न हो उन्हें शील सतोष का वरदान और टेक निभाने का आशीर्वाद प्रसाद रूप में दिया।

५ मीरा ने चरणोदक लिया जिससे सारे पाप नष्ट हो गये।

६ प्रस्थान करते समय गुरु रूप में पधारे हुए रामजी से मीरा ने जीवन सुधारने के लिये हाथ जोडकर प्रार्थना की और उनके साथ अपने जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध का स्मरण दिलाया।

इससे यह स्पष्ट होता है कि मीरा ने स्वप्न मे जिस सतगुरु का दर्शन किया वह वैरागी वेष में था। उसका स्वागत सत्कार भी उन्होंने रामभक्तों की

---

१ भारतीय विद्या मंदिर (बीकानेर) के हस्तलेख सग्रह से सकलित।

परम्परानुमोदित पद्धति से किया।[1] यह सद्गुरु 'रामजी' रहे हों, 'रामानन्द' या रैदास, कोई फर्क नहीं पड़ता। इसमें देशकाल का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।[2] अन्यत्र 'व्रजनाथ' के साथ मीरा ने अपने 'स्वप्न-परिणय' का उल्लेख भी किया है—

माई म्हातो सुपना माँ परण्याँ दीनानाथ।
छप्पन कोट्या जन पधार्‌यां दूल्हो सिरी व्रजनाथ॥
सुपना माँ म्हातो परण गया पायाँ अचल सुहाग।
मीरा रो गिरधर मिल्या दु ख जनम जनम रो भाग।[3]

राममक्ति के प्रवर्तक आलवारों तथा आचार्यों द्वारा सेवित श्रीरंगनाथ ऐक्ष्वाकुओं के इष्टदेव थे। साम्प्रदायिक साहित्य में इनका मुक्तकण्ठ से गुणगान हुआ है। श्रीरंगनाथ लक्ष्मीनारायण के प्रतिरूप हैं।[4] मीरा का एक पद इनकी प्रशस्ति में मिलता है—

श्रीरंगजी की नार देखो थाने साँवरो सेठ बुलावे॥
आज की रन बसाँगाँ समदन हरदे ग्यान विसैख्यो।
कोकिल भास भरे लखमी जी मधुर बैन गवरी को॥
मीरा कहै मिथुलायन वोसर धन्य भाग केवरी को॥[5]

श्री रंगनाथ की साम्प्रदायिक सगुण राममक्ति परम्परा के बाहर भी, अपार प्रतिष्ठा थी। यह मीरा के उपर्युक्त पद के अतिरिक्त नामदेव के निम्नांकित पद से भी विदित होता है—

---

१ वैष्णव मताब्ज भास्कर—श्लोक १४२।

२ वैष्णव भक्तों में 'स्वप्नगुरु' की परम्परा प्रचलित होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध रामभक्त महात्मा बनादास को अयोध्या में साधन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने स्वप्न में दर्शन देकर रामकाव्य रचना की प्रेरणा दी थी। इस घटना का विवरण देते हुए वे लिखते हैं—
मिले हैं स्वप्न माँहि कृपा करि दीने वर बढ़्यो अनुराग सुने सुभ बानी है।
बनादास गुर भाव माने है गोसाई जिये ताते मति मेरी बिनुदाम ही बिकानी है।
—उभय प्रबोधक रामायण, गुरुखण्ड पृ० २१

३ मीरा पदावली—(डाकोर प्रति) पद ३६।

४ तुलसीदास ने भी भगवान श्रीरंग का आदरपूर्वक स्मरण किया है और उन्हें राम का प्रतिरूप माना है—
बार बार बर माँगउ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।
—रामचरितमानस, उत्तर० १४ (ख)

५ रा० शो० सं० चौपासनी जोधपुर, हस्तलेख संख्या—१०५७।

मैं बऊँरी मेरा राम भतार। रचि रचि ताकऊ करऊँ सिंगार॥
भले निंदऊ भले बदऊ लोगु। तनु मनु राम पियारे जोगु॥
वाद विवाद काहू सिउ न कीजै। रसना राम रसायन पीजै॥
असतुति निंदा करै नर कोई। नामे श्रीरंग भेटल सोई॥[1]

श्रीरंग अथवा राम के प्रति नामदेव की यह आसक्ति मीरा और कबीर के तद्विषयक उद्गारों के सर्वथा मेल में हैं।

मीरा के रामभक्ति सम्बन्धी पद प्रतिपाद्य विषय के विचार से निम्नांकित शीर्षकों में रखे जा सकते हैं—

१ रामचरित २ राम की भक्तवत्सलता ३ आत्म प्रबोधन ४ रामशरणागति ५ कैंकर्य निष्ठा ६ रामभजन ७ रूपासक्ति ८ माधुर्य भाव ९ विरह निवेदन।

आलोच्य पदों का अनुशीलन करने से यह विदित होता है कि मीरा के अंतर्जगत में राम के प्रति गूढ़ आसक्ति थी जो समय-समय पर विभिन्न प्रसंगों और विविध रूपों में व्यक्त होती रही। वैष्णवभक्ति के जो संस्कार उन्हें पितृगृह मेड़ता में चतुर्भुज विष्णु के अनन्योपासक अपने बाबा दूदाजी से प्राप्त हुए थे। उनकी प्रेरणा से वैधव्य और राणा द्वारा दी गयी घोर यन्त्रणाओं को झेलते हुए ये सत्संग, पूजा और कीर्तन में लीन रहीं। भाव समाधि में परम तत्त्व से एकात्मता स्थापित कर लेने पर श्रीरंग, राम, और गिरिधर गोपाल का बाह्य स्वरूपगत भेद जाता रहा। उनके पदों में राम, रघुबर और रघुनाथ के साथ गिरधर नागर गोविन्द, श्याम और हरि के अभेद भाव से उल्लेख का यही रहस्य है।

मीरा के कृष्णभक्ति काव्य में, आराध्य को छोड़कर, कृष्णकथा के अन्य किसी का पात्र नाम नहीं आया है, यहाँ तक कि राधा का भी नहीं। किन्तु रामभक्ति विषयक उनकी रचनाओं में राम, सीता, और लक्ष्मण के साथ रावण तथा मंदोदरी की भी चर्चा है। यह इस बात का प्रमाण है कि कृष्णोपासना में एकांतिक भाव को महत्त्व देते हुए भी रामभक्ति के क्षेत्र में वे उसकी परम्परानुमोदित दार्शनिक मान्यताओं तथा लोकसंग्रही प्रवृत्ति की रक्षा में सजग रही हैं। तत्त्व-त्रय—ब्रह्म जीव तथा जगत् के प्रतीक राम, लक्ष्मण और सीता के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति एवं विश्व परितापी रावण की कदर्थना इसी का द्योतक है।[2] ●

---

१ नामदेव के हिन्दी पद—सं० ४१।
२ द्रष्टव्य—मीराबाई के रामभक्तिपरक पद (परिशिष्ट)।

रामभक्ति साधना में योग-तत्त्व

योग अध्यात्म साधना का एक अनिवार्य तत्त्व है। ज्ञाता तथा ज्ञेय अथवा साधक एवं साध्य का तादात्म्य उसके अभाव में हो ही नहीं सकता। यही कारण है जिससे विश्व की सभी धर्म साधनाओं तथा आस्तिक दर्शनों मे उसका महत्त्व स्वीकार किया गया है और उनकी अध्यात्म-चर्चा में किसी-न किसी रूप मे उसकी व्याप्ति पायी जाती है। भारत की वैदिक तथा अवैदिक दोनों प्रकार की विचार धाराओं से प्रभावित शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध जैन आदि मतों ने योग साधना के विभिन्न तत्त्वों को विविध रूप में अपनाया है। तात्पर्य यह कि भारतीय अध्यात्म चेतना अनादि काल से योग के प्रकाश-स्तम्भ से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पथ-निर्देश प्राप्त करती रही और अपने दीर्घकालीन इतिहास के किसी भी युग में उसकी उपेक्षा न कर सकी। यह उसके सर्वातिशायी प्रभाव का ही परिणाम था कि त्रिकाण्ड साधना के सभी अंगों ने उसे अपना कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई और कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग के प्रवाह से सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति आप्लावित हो गयी।

मध्यकालीन वैष्णवमत मे भक्ति को सर्वोपरि मानकर कर्म तथा ज्ञान को उसका साधन स्वीकार किया गया था। ज्ञान प्राप्ति का प्रमुख उपादान होने से योग भी एक परिसीमित साधन के रूप में उसमें स्थान पा सका। परिसीमित इसलिये कि योग का स्वतन्त्र अथवा साध्य मानकर चलने वाले योगिनी-कौल-मतानुयायी तथा सहजयानी एवं वज्रयानी बौद्ध सिद्धों द्वारा धर्म के क्षेत्र में फैलाये गये अनाचार और पाखण्ड से समाज में तिरोहित होती हुई धर्म भावना का ये वैष्णव भक्त प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके थे। गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ-पंथ ने आरम्भ में अपने उच्च यौगिक आदर्शों से इस पतनोन्मुख स्थिति को बहुत कुछ सँभाला था। गोरखनाथ के योग मे हठयोग और राजयोग दोनों सम्मिलित थे। किंतु परवर्ती नाथ सम्प्रदाय मे हठयोग का एकाधिकार सा हो गया। वह ध्यान, धारणा तथा समाधि के अत्यन्त उपादेय तत्त्वों से विरहित हो गया, जो भाव साधना के लिये उपयुक्त आधार प्रस्तुत करते थे। चमत्कार प्रदर्शन में फँस-

कर वे योग शक्ति का प्रयोग लोक सम्मोहन के लिये करने लगे। इससे समाज में योग के प्रति व्याप्त श्रद्धा का स्थान भय और आतंक ने ले लिया। इस प्रकार मध्यकाल के आरम्भ मे योग-मूलक सारे पूर्ववर्ती सम्प्रदाय अपने आदर्शों से गिर कर निर्जीव से हो गये थे। उनमे उस चेतना तथा स्फूर्ति प्रदायिनी शक्ति का स्पन्दन समाप्त हो चला था, जो इस्लामी शासन तथा संस्कृति के प्रबल आक्रमण का प्रतिरोध करता और पतनोन्मुख समाज का उपयुक्त मार्ग-दर्शन कर नवीन आशाकांक्षाओं का सचार करता।

वैष्णवभक्ति आन्दोलन के प्रथम उन्मेष के समय तक प्रतीत होता है कि इन दुर्बलताओं के बावजूद समाज मे योग-साधना को पर्याप्त समादर प्राप्त था। संभव है, इसका कारण उस काल तक पर्याप्त सख्या मे उच्चकोटि के योगियो की उपस्थिति रही हो, जिनके विचारो तथा आचार व्यवहार से समाज का वृहदंश आध्यात्मिक प्रेरणा ग्रहण करता रहा हो।

उत्तरी भारत मे वैष्णव भक्ति आन्दोलन के पुरस्कर्ता स्वामी राघवानन्द और उनके लोक विश्रुत शिष्य स्वामी रामानन्द की उपलब्ध रचनाओ से यह पता चलता है कि उन्होने अपने युग मे लोक धर्म के रूप में प्रचलित नाथ सम्प्रदाय की योग प्रवृत्ति का सत्कार कर रामभक्ति साधना में उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया।

आरम्भिक रामभक्ति काव्यों मे योग

राममक्ति साधना में योग तत्त्व का समावेश संस्कृत मे रचित आरम्भिक रामभक्ति काव्यो म ही हो गया था। इसका विस्तृत साक्ष्य भुशुण्डि रामायण म उपलब्ध है। आचार्य रामानुज द्वारा प्रवर्तित श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत विकसित भक्ति-परक रामकथा काव्यो मे भुशुण्डि रामायण प्राचीनतम है। इसके पूर्व खण्ड म सीता को योगिनी परमाकला कहा गया है,[1] लक्ष्मण को योगी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, ज्ञानयोग की महिमा प्रतिपादित है,[2] योगियो की वैराग्यवृत्ति का राम के चरित्र म उत्कर्ष दिखाकर राम के वैराग्य गुण का वर्णन किया गया है,[3] योग और तन्त्रो मे मान्य 'सहजा शक्ति' के ध्यान का

१ भुशुण्डि रामायण, पूर्व खण्ड ४७।४६।
२ वही, ५४।१८।
३ वही, ४१३।५७।
४ वही,४१६।

[1] उसके पश्चिम खण्ड मे योग, कर्म और ज्ञान साधनाओ म योग श्रेष्ठता प्रतिपादित है।[2] उत्तर खण्ड मे बाह्य कर्मों के द्वारा शरीर और उसके बाद मानसी भक्ति या मानसी सेवा का विधान है।[3] इतना डलिनी-जागरण-विधि और सहस्रार-भेदन का भी उल्लेख किया गया मूलक ग्र थ होने के कारण इसके रचयिता ने योग के मूल आधार को उसकी स्वमत अनुकूल व्याख्या की है। उसने योग के दो भेद किये य और पराश्रय। स्वाश्रय योग ज्ञान है और पराश्रय योग भक्ति। समत्व की साधना का सकेत है। यह समत्वयोग ही महायोग है।[4] मायण पर शाक्त तन्त्रो तथा महायान बौद्ध धर्म की परवर्ती शाखाओ प्रभाव पडा है। सीता को तारा देवी स अभिन्न माना गया है। यह र्ती राम भक्ति काव्यो का मुख्य उपजीव्य है। इसस यह स्पष्ट होता और योग साधनाओ का समावेश रामभक्ति धारा म बहुत पहले ही हो।

त्म रामायण मुख्यत वेदान्त का प्रतिपादन करता है किन्तु इसम भी ग के तत्त्व पर्याप्त रूप मे विद्यमान हैं। मुनि अगस्त्य ने राम को साधु जो लक्षण बताये हैं, वे सबके सब योगियो के हैं। इन लक्षणो मे गुणो का भी उल्लेख है। यहाँ निर्विवाद रूप से योग के आठ अगो की किया गया है। अगस्त्य मुनि कहते हैं—'ससार म जो लोग सम्पद् समान चित्त, स्पृहा रहित, पुत्रवित्तादि की इच्छाओ स रहित इन्द्रिया करने वाले, शान्तचित्त, आपके भक्त, सम्पूर्ण कामनाओ से शून्य, इष्ट ष्ट की प्राप्ति मे समान रहने वाले, सङ्गहीन, समस्त कर्मों का त्याग ले, सवदा ब्रह्म परायण रहने वाले, यम आदि गुणो से सम्पन्न तथा जो जाय उसी म सन्तुष्ट रहनेवाले होते हैं, वे ही साधु हैं। बालकाण्ड

. ६१४।
. पश्चिम खण्ड, पृष्ठ ६८।
. उत्तर खण्ड, पृ० १६।
. पृ० २१।
ण्ड रामायण, उत्तर खण्ड, पृ० २१।
. (सीता सहस्रनाम) पृ० ४६।२६।
ात्म रामायण, अरण्य काण्ड, श्लोक ३६ ३६, पृ० १३०।

के आरम्भ मे अपने अवतार की घोषणा करते हुए भगवान् स्वय सीता को 'योगमाया' कहकर सम्बोधित करते हैं।[1] अरण्य काण्ड म भगवान् राम, लक्ष्मण को मोक्ष के साधन का उपदेश देते हुए कहते हैं—बाह्य और आतरिक शुद्धि रखना, सत्कर्मों में तत्पर रहना, मन वाणी और शरीरिक सयम करना, विषयो म प्रवृत्ति न होना" ज्ञान प्राप्ति के साधन हैं। ये विशेषताएँ योग साधना के अतगत आती हैं। इसी क्रम म आगे चलकर उन्होंने स्पष्ट कहा है—जो पुरुष मेरी सेवा में अनुरक्त-चित्त, निर्मल हृदय, शान्तात्मा, विमल ज्ञान सम्पन्न और मेरे परम भक्त योगिजनो का सग अनन्य बुद्धि से सवदा उनकी सेवा मे तत्पर रहकर करता है, मुक्ति उसके करतलगत रहती है।[2] उत्तरकाण्ड म लक्ष्मण को ज्ञान का उपदेश देते हुए भगवान् राम ने ध्यान और समाधि योग की उत्कृष्ट स्थितियो का उल्लेख किया है। उन्होने लक्ष्मण को समझाया है कि आत्म-चिन्तन करनेवाले पुरुष को चाहिये कि एकान्त देश में इन्द्रियो को उनके विषयो से हटाकर और अन्त करण को अपने अधीन करके बैठे तथा आत्मा में स्थित होकर और किसी साधन का आश्रय न लेकर शुद्ध चित्त हुआ केवल ज्ञान दृष्टि द्वारा एक आत्मा की ही भावना करे। × × × समाधि प्राप्त होने के पूव ऐसा चिन्तन करे कि सम्पूर्ण चराचर जगत् केवल ओंकार मात्र है। इसी काण्ड मे माता कौशल्या को उपदेश देते हुए भगवान राम ने मोक्ष प्राप्ति के साधन रूप 'कर्मयोग', 'ज्ञानयोग और 'भक्तियोग' का उल्लेख किया है। भक्तियोग के सम्बन्ध मे उन्होने कहा है कि जिस प्रकार गगाजी का जल समुद्र में लीन हो जाता है उसी प्रकार जब मनोवृत्ति मेरे गुणों के आश्रय से मुझ अनन्त गुणधाम में निरन्तर लगी रहे तो वही मेरे निगुण भक्तियोग का लक्षण है।[4] इस प्रकार अध्यात्म रामायण से योग साधना के तत्वो को महत्त्व देने क अनेक प्रमग उद्धृत किये जा सकते हैं। यह अवश्य है कि अध्यात्म म 'योग के तात्त्विक रूप—चित्त को शुद्ध, विकार रहित, द्वन्द्वातीत और समत्वबोधयुक्त करनेवाले स्वरूप—को ही महत्त्व दिया गया है।

---

१ अ० रा० बालकाण्ड, सग २, श्लोक २८, पृ० २७।
२ अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सग ४, श्लोक ३३।
३ अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सग, ४ श्लोक ५५।
४ वही उत्तर काण्ड, सर्ग ५, श्लोक ४६ ४८।
५ अध्यात्म रामायण उत्तर, काण्ड सग ७, श्लोक ६४, ६५।

अध्यात्म रामायण के बाद राममक्ति परम्परा मे साधना-तत्त्व एव पूजा विधि की दृष्टि से 'अगस्त्य सहिता' एक महत्वपूर्ण ग्रथ है। इसम परात्पर तत्त्व का ज्योति रूप में ध्यान करने का उल्लेख है।[1] सदाशिव सहिता म कर्णिका युक्त सहस्रार नामक महापद्म के मध्य सीता सहित (शक्ति रूप सीता) राम के रत्न सिहासन पर स्थित होने की बात कही गयी है और यह भी बताया गया है कि राम के इसी रूप का ध्यान रामभक्तो के लिये विहित है। 'सदाशिव सहिता' उपलब्ध नही है, किंतु इसका कुछ अश रामचरणदास जी ने 'रामनवरत्नसार सग्रह' मे उद्धृत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जितना अश रामभक्तो के लिये अत्यत महत्वपूर्ण था वह स्मृति परम्परा में जीवित रह गया। इन साक्ष्यो से यह प्रमाणित होता है कि रामभक्ति साधना एव तत्सम्बन्धी साहित्य मे तत्र एव योग साधना के तत्त्वो का समावेश हिंदी रामभक्ति की परम्परा के आरभ होने स पहले ही हो चुका था और रामभक्तो के सामने उनके उपजीव्य ग्रथ पहले स विद्यमान थे।

साम्प्रदायिक रामभक्ति काव्य मे योग

भक्ति साधना का उद्भव दक्षिण के तमिल प्रदेश व आलवार भक्तों से स्वीकार किया गया है। इन भक्तो मे शठकोप आलवार को रामभक्त अपना प्रथम आचार्य मानते हैं। इनस पूर्व चार आलवार विष्णु के उपासक थे। 'शठकोप' का तमिल नाम 'नम्म आलवार' है। नम्म आलवार ने 'आत्मा की उपलब्धि के लिये योगसाधना का महत्त्व स्वीकार किया है। उनका कहना है कि आत्मा अनिर्वचनीय तत्त्व है जिसे योग द्वारा ही पहचाना जा सकता है। नम्म आलवार ने ही 'सहस्रगीति' की रचना करके सबसे पहले रामभक्ति को साम्प्रदायिक आधार प्रदान किया था। नम्म आलवार को मधुर भक्ति का प्रवतक माना जाता है। इससे प्रकट है कि मधुर भाव की भक्ति के साथ ही योग को उसम समाविष्ट किया गया था। इसी परपरा म आगे चलकर राघवानन्द हुए। इन्होने उत्तर भारत म आकर रामभक्ति का प्रचार किया। राघवानन्द की विचार-धारा पर नाथयोग का प्रभाव स्पष्ट है। इधर स्वामी राघवानन्द रचित सिद्धात पच-

---

१ अगस्त्य सहिता पत्र ८६।

२ सदाशिव सहिता (रामनवरत्नसार सग्रह म उद्धृत)।

३ A History of Indian Philosophy Vol III S N Das Gupta Page 80

मात्रा' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका दान घाटी, गोवर्द्धन के हनुमान मंदिर के महंत एवं रामानुज सम्प्रदाय के साधु श्री रामशरणदास जी से प्राप्त हुई है। पुस्तिका नागरी प्रचारिणी सभा, काशी मे सुरक्षित है। इसकी पुष्पिका मे लिखा है—"ईति श्री राघवानन्द स्वामी की सिद्धात पचमात्रा सपूरण" यह पुस्तिका राघवानन्द के समय की नहा है। इसमे कबीर का उल्लेख है। किंतु यह निश्चय ही उन्ही की साम्प्रदायिक परम्परा के किसी साधु की रचना है। इसके अनुसार स्वामी राघवानन्द का साधना मार्ग योग और प्रेम का समन्वित रूप है जो सनत्कुमार आदि ब्रह्मा के चार मानस पुत्रा द्वारा चलाया गया था।

सनक सनन्दन सनत्कुमार। जोग चलायो अपरमपार ॥
प्रेम सुन सनकादिक चार गुरु भाई। डंड कमण्डल जोग चलाई ॥
पीता म राखे जोगेसुर मतवाला। उपजे ज्ञान ध्यान प्रेम रस प्याला।[1]

इस पुस्तिका स सिद्ध होता है कि राघवानन्द की योग-साधना मे पूर्ण गति थी। इसमे 'सुन 'गगन' 'झुनकार' (अनाहत नाद) आदि योग सम्बन्धी पारिभाषिक पदो का भी प्रयोग हुआ है। इसका रचयिता हठयोग की प्रक्रिया और उद्देश्य दोनो से पूर्ण परिचित है। वह कहता है—

चद्र सुरज जमी असमान तारा मडल भये प्रकास।
अधुन जोगी यह झनकार ॥
सुन गगन म ध्वजा फराई, पुछो सबद भयो प्रकासा।
सुन लो सीधो सबद का वासा।[2]

नाभादास की परपरा म वैष्णवदास के शिष्य मिहीलाल (अनुमानत १७वी शती मे विद्यमान) न अपने 'गुरु प्रकारी' नामक ग्रथ मे राघवानन्द को 'अवधूत वेषधारी' बताया है—

धनि धनि सा मेरे भाग श्रीगुरु आये हैं।
श्री अवधूत वेष को धारे राघवानद सोई।
तिनके रामानद जग जाने कलि कल्यान मई ॥

इसमे भी राघवानन्द पर योगमत के गहरे प्रभाव की सूचना मिलती है।

राघवानन्द के शिष्य और उत्तरी भारत मे रामभक्ति के उन्नायक स्वामी रामानन्द की जो हिन्दी रचनाए प्राप्त हुई हैं, उन्ह देखने स प्रतीत होता है कि वे योगविद्या म पारगत थे। 'रामरक्षा नामक अपनी छोटी सी रचना मे

---

१ रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, परिशिष्ट, पृ० ४२।
२ वही पृ० ४४।

उन्होंने चराचर में व्याप्त श्रीनाथ निरंजन देव को नमस्कार किया है। उनकी रचनाओं से कुछ ऐसे पद नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं जो योग मत के गहन ज्ञान के साक्षी हैं—

रामरक्षा

समदिष्टि सम थर आणी प्राण आन।
उदान व्यान मिलि अनहद शब्द की बर पाई॥
झिल मिला ज्योति रणकार झलकता रहै,
नाद बिंद मिल भया रंगरेला।
× × ×
निरति सो निरति मिलि निरति लागी रहै,
सुरति सूं सुरति मिलि सुरति आवै।
× × ×
चित्त सो चित्त मिलि चित्त चेतन भया,
उनमुनी दिष्टि सो भाव देखै।
× × ×
झुण झुणी रुणरुणी झुमा झुरमी नाद,
सुषमना काछके साज साजा।
चाचरी भूचरी पेचरी अगोचरी उनमुनी,
पाँच मुद्रा साधते सिद्ध राजा।

रामानन्द की यह योग साधना उनकी भक्ति साधना का अंग मात्र थी। अपने 'भगति जोग ग्रंथ' में वे कहते हैं कि भक्ति योग के लिये सबसे पहले सब कुछ त्याग कर दृढ़ वैराग्य धारण करना चाहिये और इष्टदेव के प्रति पूर्ण विश्वास जाग्रत करना चाहिये। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना चाहिये फिर चाहे घर में रहे चाहे बनवास करे।[1] माया-मोह, आशा-तृष्णा कनक-कामिनी को त्याग कर समचित्त होकर अनन्य भाव से निरंजन देव की मानसी पूजा करनी चाहिये। इस मानसी-पूजा-विधि की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं—

ग्यान दीप ले आरती उतारै। घट अनहद सब्द उचारै॥
तन मन सकल अरपन करही। दीन होइ फुनि पायन परही॥

---

१ तुलसीदास ने भी प्रकारान्तर से इसकी पुष्टि की है—
घर कीन्हें घर जात है, घर छाड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीच रह, रामप्रेमपुर छाय॥ दोहावली ३३९

ज्यू पतिव्रता रहै पीव पासा । यू साहिब के ढिग रहै दासा ॥
कोउ देस मूलि मति जावो । पतिवरताऊ पति लै निरबावौ ॥

स्पष्ट है कि श्री रामानन्द ने योग को वैराग्य वृत्ति एव समचित्तता प्राप्ति के लिये आवश्यक माना था और आराध्य के प्रति दृढ एव अनन्य प्रेम की साधना के लिये इसे साधन रूप म स्वीकार करके योग और भक्ति का अद्भुत समन्वय स्थापित किया था ।

हिन्दी निर्गुण राममक्तिधारा मे योग

रामानन्द क बाद हिन्दी साहित्य म निर्गुण और सगुण भक्तिधाराओ का विकास हुआ । रामानन्द दोनो क प्रेरणा स्रोत कहे जा सकते हैं । निर्गुण धारा के प्रख्यात सत 'कबीर में भक्ति के साथ योग का पूण समन्वय है । उन्हो ने भी 'राम' को अपना आराध्य माना है । परमात्मा के अनेक नामों की चर्चा करते हुए वे अन्तत 'राम' को ही महत्त्व देते हैं । वे बार बार राम रस पीने और राम मे मिलकर 'एकमेव' होने की बात कहते हैं । उन्होने योगियो के बाह्याडम्बर का विरोध भले किया हो, किंतु योग के तात्विक रूप को पूणत स्वीकार किया । मन क उन्मन होने, जप के अजपा म समाने, सुरति के विरति मे लीन होने सहज समाधि लगाने, और शिव-शक्ति के मिलने की बात कहकर योग को पूणत समर्थन दिया है । कबीर के पूर्ववर्ती सतों म नामदेव का महत्त्वपूण स्थान है । कबीर ने उनका श्रद्धापूर्वक नामदेव का स्मरण किया है । नामदेव, रामानन्द के समकालीन माने जा सकते हैं । नामदेव या तो विट्ठल भगवान् के उपासक थे, किंतु उनके कइ पदों म 'राम' के प्रति श्रद्धा निवेदन का भाव स्पष्ट लक्षित होता है । अपने एक पद मे वे कहते हैं कि रे मन ! राम के सम्मुख नाच और योग एव वैराग्यवृत्ति धारण करके ज्ञान-चिन्तन कर । राम के सम्मुख ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, शकर, काल, नारद, तैंतीसा करोड देवता आदि सभी नाचते हैं । उन्हें विश्वास है कि मन को सयमित करके राम क सम्मुख कर देने पर परमपद की प्राप्ति होगी ।[1] अपने अनेक पदा म उन्होंने रामनाम की श्रेष्ठता का उद्घोष किया है । व बार बार कहते हैं कि हे सतो ! रामनाम के तुल्य कोई नहीं है । वे स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि मैंने रामनाम की सजीवनी बूटी प्राप्त कर ली है—

पायौं मैं राम सजीवनि मूरी । गुरु मिल्यो बैद बिथा गई दूरी ॥[2]

---

१ सत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १३० ।
२ वही, पद १६८ ।

इसके अतिरिक्त उनके द्वारा की गई श्रीरंग वंदना,[1] श्रीवैष्णव वेष का वर्णन[2] दशरथ पुत्र रामचंद्रजी की स्तुति,[3] रामनाम महामंत्र को जप तथा प्रपत्तिसिद्धांत में एकांतनिष्ठा श्री वैष्णव सम्प्रदाय से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध आदि के साक्षी हैं।

अतः संत नामदेव को भी रामभक्तों में स्थान दिया जा सकता है। कहना न होगा कि नामदेव की साधना में भक्तितत्त्व की प्रधानता होते हुए भी योग की स्वीकृति है। संत नामदेव वारकरी सम्प्रदाय के संत हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत ज्ञानेश्वर नाथ सम्प्रदाय की परम्परा के अंतिम महान् साधक थे। हिंदी निर्गुण संत परम्परा में रामभक्ति धारा का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ है। कबीर के बाद निर्गुण संतों में सर्वाधिक प्रभावशाली नानक ने भी 'अनिभ राम' की भक्ति की है और उनकी यह भक्ति योगकी तात्त्विक विशेषताओं से युक्त है।[4] इधर मीरा के भी रामभक्तिभावित कुछ पद प्राप्त हुए हैं।[5] अन्य अनेक संतों ने भी रामकथा का निर्गुण भावपरक प्रतीकात्मक मत व्यक्त करते हुए अपनी रामभक्ति का परिचय दिया है। इनमें गरीबदास, धनीदास, रज्जब सुन्दरदास, यारी साहब जगजीवन साहब, पलटूदास दरिया साहब, तुलसी साहब देवकी नन्दन साहब, रघुनाथ दास रामसनेही, नवनिधि, लाला शिवदयाल सिंह, शिवव्रतलाल, जगन्नाथदास, भगवान धरमदास, शारदा राम उदासीन आदि प्रमुख हैं। इन संतों में कई ने उसकी योग परक व्याख्या की है। इस प्रकार निर्गुण रामभक्ति धारा में न केवल योग साधना का समावेश है, वरन रामकथा की योग परक प्रतीकात्मक व्याख्या भी की गयी है। निर्गुण संतों में कई ने घट रामायणों की रचना की है। इन रामायणों की सृष्टि निश्चय ही योगदृष्टि के आधार पर की गयी है। कुछ परवर्ती संतों ने तो रामकथा के पौराणिक सगुण रूप को भी स्वीकार कर लिया है। इनमें मलूकदास, जगजीवनदास, शिवनारायण साहब, देवकी नन्दन साहब, रघुनाथदास राम सनेही विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी संतों ने भक्ति के साथ योगसाधना को भी

१ संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २५५।
२ हिन्दी साहित्य को मराठी संतों की देन, पृ० ३५४।
३ वही, पृ० २५३।
४ संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पृ० ३६।
५ नानक की योगनिष्ठा के लिये दे० नानक वाणी, पृ० ५६४।
६ रामभक्ति परम्परा और साहित्य, पृ० १०५।

महत्व दिया है। तात्पर्य यह कि निर्गुण संतों की साधना मे योग-भावना अनिवार्य रूप म उसकी एक तात्विक विशेषता के रूप में समाविष्ट है और इस प्रकार व 'राम' भक्ति से प्रत्यगत जुडे हुए हैं।

रसिक राममक्तिधारा में योग

रसिक राममतिधारा में योग का महत्व निर्विवादरूप म मान्य है। यो तो रसिकमक्ति का उन्मेष नम्मालवार से ही स्वीकार किया जाता है, किंतु उत्तरी भारत म रसिक भाव की भक्ति को एक व्यवस्थित साधना-पद्धति के रूप मे प्रवर्तित करने का श्रेय अग्रदास को है। अग्रदासजी ने भक्त नम्मालवार से लेकर कृष्णदास पयहारी तक रसिक भक्ति साधना क बिखरे सूत्रों को सयोजित कर उसे एक व्यवस्थित साधना पद्धति का रूप दिया। नाथ सिद्धों मे साधनदेह के रूप में योग देह की कल्पना की गयी है। अग्रदासजी ने उस ही साधनदेह भावदेह अथवा दैन्यदेह के रूप मे मानसी ध्यान का मुख्य उपादान निश्चित किया और इसी चिन्मय साधन शरीर को पचमावोपासना का आधार माना। गोरक्षसिद्धांत सग्रह मे भी इस देह का स्पष्ट निर्देश है—

दवैरपि न लभ्यते योगदेहो महाबल।
द्वन्द्वबंधैविमुक्तो सो नानाशक्ति धर पर ॥ (पृ० ५१)
यथाऽऽकाशस्तथा देह आकाशादपि निर्मल ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो देह स्थूलात्स्थूलो जडाज्जड ॥

(गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह पृ०५३)

इतना ही नहीं, इस शरीर के द्वारा ध्येय युगल तत्व भी योग धारा का ही प्रसाद है—

आकार बिन्दु सयुक्त नित्य ध्यायन्ति योगिन ।
तस्मिन् मध्य स्थित तत्व प्रदर्शयति सद्गुरु ॥

(गो० सि०, स० पृ० २७)

अग्रदासजी से पहले रसिक परम्परा मे अनन्तानन्दजी उल्लेख्य हैं। युगलप्रियाजी न रसिक-प्रकाश-भक्तमाल मे उनकी रसिक समाधि का वर्णन करते हुए लिखा है—

आँसू चलत समाधि मे अद्भुत गति विरही लहे।
शिष्य किये बहु विरति रति तिनके गुन गा का कहे।[1]

---

१ र० प्र० भ०, पृ० १२।

यह समाधि, योग युक्त भक्ति साधना का ही परिणाम है। अतिम पक्ति मे अनेक विरक्ति म रति करने वाले शिष्यों को दीक्षा देने की बात कही गयी है, जिसका सीधा सकेत योग साधना की ओर ही है।

अनन्तानन्द के शिष्य कृष्णदास पयहारी थे। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार इनकी रामोपासना सारय योग समन्वित थी।[1] इनकी एक छोटी सी रचना 'राजयोग' प्राप्त हुई है। इसमे शुद्ध स्थान पर बैठकर एकाग्रचित्त स प्राणायाम प्रक्रिया द्वारा अतर्ज्योति दशन की अनुभूति का क्रमबद्ध एव सागोपाग वणन किया गया है।

स्पष्ट है कि योगियो ने जहाँ शिव स्थान मानकर शिव रूप परमतत्त्व मे लीन होने या ब्रह्मलीन होने की बात कही है, वहाँ रसिक भक्तो ने अपने इष्टदेव राम को प्रतिष्ठित कर उनके स्वरूप म लीन होने की अनुभूति की है।

कृष्णदास पयहारी के शिष्य अग्रदासजी थे। अग्रदासजी की 'ध्यान मजरी' रसिक रामभक्तो का एक मान्य ग्रंथ है। इसमे महल महापद्म के मध्य मे सर्वदेव शिरोमणि भगवान राम को सीता सहित शोभित बताया गया है और रसिक भक्तो के लिये उनके इसी रूप का ध्यान विहित माना गया है। अग्रदासजी ने ध्यान मजरी की रचना 'सदाशिव सहिता' के आधार पर की है, जो तन्त्र शास्त्र का एक महत्त्वपूण ग्रथ है। अग्रदासजी की 'ध्यान मजरी'[2] की एतद्विषयक कुछ पक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं—

स्वणवेदिका मध्य तहाँ यक रतन सिंहासन।
सिंहासन के मध्य परम अति पदुम सुआसन॥
ताके मध्य सुदेश कर्णिका सुन्दर राजै।
अति अद्भुत वह तेज वह्नि सम उपमा भ्राजै॥
ता मधि शोभित राम नील इन्दीवर ओभा।
अखिल रूप अभोधि सजल घन तन की सोभा॥
अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानन्द वामदिसि जनक कुमारी॥

अग्रदासजी के बाद उनके शिष्य प्रशिष्यो तथा रसिक भक्तिधारा के अन्य सभी भक्तो ने इस 'ध्यान पद्धति' को स्वीकार करके अपनी साधना म योग एव प्रेम का सामजस्य स्थापित किया।

---

१ र० प्र० भ०, पृ० १३।
२ लेखक के निजी हस्तलेख सग्रह से।

मर्यादावादी राममक्ति में योग

राममक्ति परम्परा मे राम के ऐश्वर्य रूप के उपासक मर्यादावादी भक्त तुलसीदास ने भी योग को महत्त्व दिया है। गीतावली मे जनकजी के व्यक्तित्व की विशेषता का उल्लेख करते हुए विश्वामित्र कहते हैं—

राग्रऊ विराग, भोग-योग जोगवत मन,
जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है।
ताते न तरनि त न सीरे सुधाकरहू तें,
सहज समाधि निरुपाधि निरवही है।[१]

अयोध्या काण्ड के आरम्भ मे शकर की वन्दना के बाद राम के जिस स्वरूप की वन्दना तुलसीदास ने की है, वह योगियो के समतत्व की धारणा के अनुकूल हैं। तुलसी ने सुख-दुःख में एकरस या समरस रहने वाली राम की मुखश्री की वन्दना की है।

प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखत ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मजुल मगलप्रदा ॥[२]

यह समाधिलीन योगी की मन स्थिति के सवथा अनुकूल है—

नाभिजानाति शीतोष्ण न दुख न सुख तथा ।
न मानं नापमान च योगयुक्त समाधिना ॥

लकाकाण्ड के मगलाचरण मे राम की वन्दना करते हुए उन्हे तुलसीदास ने योगीन्द्र कहा है। मानस के ही उत्तरकाण्ड मे ज्ञान तत्त्व निरूपण करते हुए उन्होंने ज्ञानदीपक की जिस अखण्ड ज्योति की कल्पना की है, वही अखण्ड ज्योति योगियो द्वारा ध्येय है—

सोहमस्मि इति वृत्ति अखडा । दीपसिखा सोइ परम प्रचडा ॥[३]

स्पष्ट है कि भक्ति के प्रबल समर्थक होते हुए भी तुलसीदास, योग साधना के तात्त्विक महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

तुलसीदास के बाद राम के ऐश्वर्य रूप के उपासक केशवदास ने भी योग-तत्त्व के महत्त्व को स्वीकार किया है। 'राम' के जनकपुर पहुँचने पर महाराज जनक जो स्वय राजा और योगी दोनो थे, उनके जिस स्वरूप को देखते हैं वह योगियो के चित्त म निवास करनेवाला समाधि दशा मे अनुभूत परम तत्त्व ही है। वे कहते हैं—

१ तुलसी ग्रथावली, ना० प्र० स०, पृ० ३१४ ।
२ मानस, अयो० का०, श्लोक—२ ।
३ मानस, उ० का०, पृ० ६८४ ।

सिद्ध समाधि सजैं अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई।
केशव गाधि के नन्द हमैं वह ज्योति सो मूरतिवन्त दिखाई।[1]

आधुनिक रामभक्ति काव्यों में भी योग साधना के बीज विद्यमान हैं। राम चरित चिंतामणि में रामचरित उपाध्याय ने राम राज्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि राम के राज्य में लोग इंद्रियों पर नियन्त्रण रखते थे।

जहाँ इन्द्रियों को दमते सभी थे,
प्रजा को न राजा सताते कभी थे।[2]

निराला' ने राम की शक्तिपूजा में राम को योग साधनारत दिखाया है। अन्त र्लीन राम का मन षटचक्र को भेदकर सहस्रार तक पहुँचता है। वह समाधिस्थ होते हैं और इसी स्थिति में वे शक्ति की आराधना करते हैं। योगी की उच्चतम भूमि पर पहुँचकर ही राम शक्ति का दृढ़ आराधन करने में समर्थ होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आरम्भिक रामभक्ति काव्यों से लेकर आधुनिक युग के राम काव्यों तक में योग-साधना के तत्त्व अबाधगति से प्रवाहित निहित हैं।

वस्तुतः भारतीय धर्म साधनाओं के मूल में ही योग की सत्ता विद्यमान है। ये समस्त साधनाएं अन्तरावलम्बित हैं। सभी का लक्ष्य जीवात्मा को परमात्मा में लय कर देना है। यह स्थिति चित्त की एकाग्रता और मन की अन्तर्मुखता पर ही निर्भर है। भक्ति साधना भावमूलक है। किन्तु भावात्मक तादात्म्य भी एक प्रकार का योग प्रक्रिया ही है। वैष्णव मत के आधार ग्रंथ 'भागवत' में भी योग को भक्ति साधना में सहायक स्वीकार किया गया है। भक्ति सिद्धान्तों का सूक्ष्म अध्ययन करने से उसमें योग तत्त्वों का समावेश स्पष्ट लक्षित होता है। वैधी भक्ति के पाँच अंगों—उपासक, उपास्य, पूजाद्रव्य, पूजाविधि और मंत्र-जप पर विचार करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा। उपासक के लिये हृदय शुद्धि और शरीर-शुद्धि दोनों ही आवश्यक हैं। शरीर शुद्धि के लिये स्नान, तिलक, माला, आसन, पादुका इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है, हृदय-शुद्धि के लिये प्राणायाम गायत्री जप आदि की। इनमें प्राणायाम और गायत्रीजप योग की ही प्रक्रियाएं हैं। रसिक सम्प्रदाय में प्रभु प्राप्ति के लिये जिन साधनों का विधान किया गया है, उनमें योग की स्वीकृति स्पष्ट है। इस साधना में पाँच उपायों से प्रभु प्राप्ति संभव मानी गई है—१ कर्म, २ ज्ञान, ३ भक्ति, ४ प्रपत्ति

---

१ रामचंद्रिका, छठवां प्रकाश पृ० ७६।
२ रामचरित चिंतामणि, २३ सर्ग, पृ० २१२।

और ५ आचार्याभिमान। इनमें कर्म साधना के अन्तगत यज्ञ, दान, तप, हवन, सयम, अध्ययन, सन्ध्योपासना, जप, पवित्रता, चातुर्मास्य व्रत, अष्टांग योग, उपवास, अर्घ्य, वाद्य, तपण, तीर्थाटन आदि का विधान है। इस प्रकार रसिक रामभक्तो के लिये अष्टागयोग की साधना प्रथम आवश्यकता है। शुभ कार्यों के अनुष्ठान से ही ज्ञान का प्रकाश सभव है। ज्ञान का प्रकाश होने पर साधक को अपने मानस मे दिव्य-सिंहासन पर आसीन मणिमय वस्त्राभूषणा से अलकृत युगलस्वरूप का ध्यान करना चाहिये। यह भक्तिमय ध्यान, योग तथा ज्ञान साधना का सहकारी है।

भारतीय साधनाओ का विकास-क्रम कुछ इस प्रकार का है कि एक साधना मे विकृति आने पर दूसरी साधना उसके मूल एव तात्त्विक स्वरूप को आत्मसात् करके अपने को विकसित करती है या अपने तात्त्विक आधार को इतना व्यापक बना लेती है कि अन्य समानान्तर प्रतिष्ठित साधनाओ के उपयोगी एव अनिवार्य तत्त्व उसकी सीमा म आ जाते हैं। इसीलिये हम देखते ह कि भक्ति साधना मे योग, कर्म और ज्ञान और साधनाओं के बीज सन्निहित हैं। रामभक्ति धारा म भी यह विशेषता विद्यमान है। योग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तात्त्विक महत्त्व का कभी भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसीलिए रामभक्ति-साधना मे उसका समर्थन सवत्र लक्षित होता है। 'गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग, निगम नियोग सा सो कलि ही छरो सोहै'—वाली तुलसी की उक्ति के आधार पर कुछ लोग रामभक्ति को योग साधना का विरोधी समझते हैं। किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि प्रस्तुत सन्दर्भ म गोस्वामीजी का आक्रोश योग साधना के तत्कालीन विकृत रूप के प्रसारक योगियो पर है, परपरया प्रतिष्ठित योग-दर्शन पर नहीं।

तुलसी विषयक शोध का मूल्यांकन

तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व का व्यापक प्रभाव उनके जीवनकाल में ही समाज पर पड़ने लगा था। इसके बाह्य प्रमाण तो उपलब्ध हैं ही, तुलसी साहित्य में भी ऐसे अनेक आत्मोल्लेख हैं जो कवि की एतद्विषयक सजगता द्योतित करते हैं। जहाँ तक व्यवस्थित अनुशीलन का प्रश्न है तुलसी सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधान का सूत्रपात निश्चय ही पाश्चात्य विद्वानों द्वारा हुआ, जिसमें पहला नाम एच० एच० विल्सन का है। विल्सन ने सन् १८३१ (सं० (१८८८) में 'ए० स्केच आव दि रेलिजस सेक्टस आव दि हिंदूज' नामक निबन्ध ऐशियाटिक रिसर्चेज में प्रकाशित कराया था। इस निबन्ध में तुलसी की जाति, जन्म स्थान, कार्यक्षेत्र गुरु-परम्परा, जन्म तिथि, मृत्यु तिथि और रचनाओं पर प्रकाश डाला गया था। इनकी सूचनाओं का आधार सम्भवत नाभादास का छप्पय उस पर प्रियादास की टीका तथा अन्य अनुश्रुतियाँ थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास की सर्वप्रथम रूपरेखा प्रस्तुत करने वाले फ्रांसीसी विद्वान् गार्सा द तासी ने 'इस्त्वार द ला लितरेत्योर इन्दुइ ए इंदुस्तानी' के प्रथम खण्ड (सन् १८३९ ई०) में तुलसीदासजी का जो जीवन परिचय दिया है वह बहुत कुछ विलसन की सूचनाओं पर ही आधृत है। उस क्रम में एफ० एस० ग्राउज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ग्राउज ने सन् १८७६ से लेकर १८८१ तक अथक परिश्रम करके रामचरितमानस का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया था। इस अनुवाद से पाश्चात्य देशों में तुलसी के काव्य-गौरव का प्रसार हुआ। इसकी भूमिका में तुलसीदास का जो जीवन परिचय दिया गया है उसमें विल्सन द्वारा प्रस्तुत सामग्री का विवेकपूर्ण उपयोग करते हुए उनकी भूलों की ओर भी कुछ संकेत हैं।

तुलसी सम्बन्धी अनुसंधान, कार्य में युगान्तर उपस्थित करने वाले विद्वान् जार्ज ए० ग्रियर्सन हैं। सन् १८८६ ई० में उन्होंने वेन की अन्तर्राष्ट्रीय आरियण्टल कांग्रेस में 'हिंदुस्तान का मध्यकालीन साहित्य विशेष रूप से तुलसीदास' शीर्षक महत्वपूर्ण निबन्ध पढ़ा था। तब से लेकर सन् १९२१ ई०

तक वे बराबर तुलसी विषयक अनुसधान मे प्रवृत्त रहे। पहली बार उन्होंने ही कवि के जीवन-वृत्त एव रचनाओ के निर्माण काल से सम्बद्ध तिथियो को ज्योतिष के मान्य सिद्धान्तो के आधार पर गणना कराई, कृतियों की प्रामाणिकता पर विचार किया, कवि के जीवन-वृत्त से सम्बंधित अनुश्रुतियो का सग्रह किया, उसके आन्मादगारो की ऐतिहासिक परीक्षा की, कवि और सुधारक रूप का मूल्यांकन किया और 'रामचरितमानस' की मौलिकता का प्रतिपादन कर विद्वानो का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया। इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानो मे विलसन के आरम्भिक प्रयास को प्राच्यविद् ग्रियसन ने पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

भारतीय विद्वानो मे तुलसी के जीवन-वृत्त तथा कृतियो के अनुसधान का सूत्रपात करने वालो मे श्रीमहेशदत्त शुक्ल और श्रीशिवसिंह सेगर उल्लेखनीय हैं। इनसे पूर्व नाभादास के भक्तमाल, उसकी विविध टीकाओ तथा सस्कृत-हिन्दी के अनेक कवियो द्वारा किये गये प्रशस्तिपरक उल्लेख तुलसी के व्यापक प्रभाव के साक्षी होने पर भी आधुनिक ऐतिहासिक-वैज्ञानिक अध्ययन की कोटि मे नही आते। श्री सेगर ने सन् १८७७ मे अपने 'सरोज' मे कवि के सक्षिप्त जीवन-वृत्त और रचनाओ का उल्लेख करने के साथ ही पसका (जिला गोडा) निवासी बेनीमाधवदास रचित 'गोसाइचरित' की सूचना दी और इस प्रकार तुलसी के जीवन-वृत्त के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की। सन् १८८५ ई० से 'रामचरितमानस' के सम्पादन का इतिहास आरम्भ होता है। श्री भागवतदास खत्री ने सन् १६६४ ई० और १७०५ ई० की हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर 'रामचरितमानस' का सम्पादन किया। सन् १६०२ मे चिन्तामणि घोष ने प० सुधाकर द्विवेदी, बाबू राधाकृष्णदास, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू कार्तिक-प्रसाद खत्री और बाबू अमीरसिंह द्वारा सम्पादित कराकर विस्तृत भूमिका के साथ उसका प्रकाशन कराया। त्रुटियो के बावजूद यह सस्करण एक महत्वपूर्ण प्रयास के रूप मे समादृत है।

उन्नीसवी शती के अन्त तक तुलसी सम्बन्धी अनुसधान की मुख्यत तीन दिशाए थी—(१) जीवन-वृत्त का अनुसधान, (२) व्यक्तित्व का मूल्यांकन और (३) कृतियो की प्रामाणिकता का निश्चय तथा पाठ-शोध। तुलसी की टीकाओ की परम्परा का आरम्भ बहुत पहले ही हो चुका था। इन टीकाओ से तुलसी की निष्ठा के अध्ययन मे सहायता मिलती है। टीकाकारो ने तुलसी की कृतियो की व्याख्या करते हुए उनके मूल मन्तव्य को प्रकाशित करने का दावा किया है। प्रमुख टीकाकार निम्नलिखित हैं—

(१) महात्मा रामचरणदास—'आनन्द लहरी' टीका, १८२१ ई०
(२) सतसिंह पजाबी—भाव प्रकाश टीका, १८२१ ई०
(३) शिवलाल पाठक—श्रीम मानस अभिप्रायदीपक
(४) काष्ठजिह्वा स्वामी—मानस परिचया १८६८ ई०
(५) ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह—मानस परिचर्या परिशिष्ट, १८६८ ई०
(६) सीतारामीय हरिहरप्रसाद— रामायण परिचया परिशिष्ट प्रकाश, १८८८ ई०
(७) नाना सतसिंह—१८८८ ई०
(८) बैजनाथ कूमवशी—'मानस भूषण, १८६० ई०
(९) प रामेश्वर भट्ट—१८६६ ई०
(१०) बाबू श्यामसुदर दास—१६०२ ई०
(११) मुशी शुकदेव लाल—१६१२ ई०
(१२) प० विनायक राव—'विनायकी टीका, १६१४ ई०
(१३) प० महावीरप्रसाद मालवीय—१६२५ ई०
(१४) अजनानन्दन शरण— मानस पीयूष टीका १६३४ ई०
(१५) प० विजयानन्द त्रिपाठी—विजया टीका
(१६) हनुमानप्रसाद पोद्दार—गीता प्रेस, मानसाक टीका, १६४० ई०
(१७) श्रीकातशरण— सिद्धात तिलक, १६४४ ई०

इन प्रयासो के बाद तुलसीदास और उनकी रचनाओ के सम्बन्ध म सुनियोजित अनुशीलन नियोजित हुआ जिसके फलस्वरूप विभिन्न दिशाओ म अब तक शताधिक अध्ययन किये गय ह। सुविधा के लिए इन्हें निम्नलिखित वर्गों म रखकर विचार किया जा सकता है—

(१) प्रेरणा स्रोतो का अध्ययन, (२) जीवन-वृत्त का अध्ययन (३) रचनाओ की सख्या, तिथिक्रम और प्रामाणिकता का अध्ययन, (४) धर्म और साधना का अध्ययन, (५) विचारधारा का अध्ययन (६) काव्य-शास्त्रीय मूल्याकन, (७) भाषा-शास्त्रीय अध्ययन, (८) मनोवैज्ञानिक अध्ययन और व्यक्तित्व विश्लेषण, (९) पाठालोचन, (१०) अर्थानुसधान और टीकापरक अध्ययन, (११) तुलनात्मक अध्ययन, (१२) सास्कृतिक अध्ययन, (१३) प्रभावपरक अध्ययन, (१४) समग्र अध्ययन और (१५) आधुनिकता के सदर्भ म किये गये अध्ययन।

स्रोतो के अध्ययन म सबसे अधिक विचार और अनुशीलन रामचरित मानस को लेकर किया गया है। इस सन्दर्भ मे श्यामकुमार कृत 'मानस बालकाण्ड के स्रोत (१६५७ ई०), शार्लोत वान्वील कृत 'तुलसीदास रचित रामचरितमानस

का मूलाधार व रचना विषयक समालोचनात्मक अध्ययन' (१९५९ ई०) तथा श्री सीताराम कपूर कृत 'रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत' आदि उल्लेखनीय प्रयास हैं। मानस के अतिरिक्त तुलसी की अन्य कृतियों में विनय पत्रिका, गीतावली आदि के आधार ग्रन्थों का भी अध्ययन हो सकता है। किन्तु इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण प्रयास अभी तक देखने में नहीं आया।

जीवन-वृत्त सम्बन्धी अनुसंधान में विद्वानों ने अपेक्षाकृत अधिक उत्साह दिखाया है। इस सन्दर्भ में आरम्भिक प्रयासों के अतिरिक्त इन्द्रदेवनारायण, सिंह, शिवनन्दन सहाय, रामकिशोर शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, रामनरेश त्रिपाठी, प० रजनीकान्त शास्त्री, रामबहोरी शुक्ल, डा० माताप्रसाद गुप्त, प० चन्द्रबली पाण्डेय, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामदत्त भारद्वाज, डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह तथा डॉ० गोवर्द्धननाथ शुक्ल के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। किन्तु इन अनुशीलनों में तुलसी के जन्म एवं गुरुभूमि के निर्धारण में जितना श्रम किया गया है, उतना उनकी जीवनी के अन्य तत्वों एवं घटनाओं की प्रामाणिकता की जाँच में नहीं। इनसे तुलसी के जीवनवृत्त सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं तथापि कतिपय विशिष्ट प्रसंगों में उत्तरोत्तर उलझाव बढ़ता ही गया है। मात्र जन्मभूमि के विषय में देखा जाय तो अयोध्या, काशी, हाजीपुर (चित्रकूट), हस्तिनापुर (गढ़मुक्तेश्वर के पास), राजापुर, तारी, सोरो (रामपुर) और बलिया जैसे अनेक स्थानों का उनके पक्षधरों द्वारा गौरव प्रदान करने की चेष्टा की गयी है। भविष्य में और कौन सा स्थान इसका दावेदार हो जायेगा, नहीं कहा जा सकता। यही स्थिति उनकी आध्यात्मिक शिक्षास्थली की भी है—सूकरखेत (गोण्डा) और सोरों दोनों ही उन्हें अपनाने में सक्रिय हैं। जीवन-वृत्त सम्बन्धी अन्य तथ्यों में जन्म-संवत् जाति और आस्पद, माता-पिता, मूल नाम, बचपन, गुरु और शिक्षा, गार्हस्थ्य जीवन, वैराग्य, गुरु परम्परा, विरक्त जीवन, निधन-तिथि आदि के निर्णय का प्रयत्न किया गया है, किन्तु इनमें से किसी के भी सम्बन्ध में सर्वसम्मत निर्णय नहीं हो सका है। इस सन्दर्भ में तुलसी के पर्यटन और उस क्रम में अनेक व्यक्तियों से उनके सम्पर्क तथा विभिन्न स्थानों में उनके टिकने के प्रमाण भी मिलते हैं। सम्बन्धित कागजपत्रों तथा जनश्रुतियों की व्यापक जाँच होनी अभी शेष है।

जीवन-वृत्त की भाँति ही तुलसी की कृतियों के अनुसंधान की ओर भी विद्वानों का ध्यान आरम्भ से ही रहा है। कृतियों की संख्या, रचना तिथि, रचनाक्रम तथा प्रामाणिकता सम्बन्धी अनेक अनुसंधान हुए हैं, जिनमें डॉ० ग्रियर्सन, प० रामगुलाम द्विवेदी, मिश्रबन्धु प० रामनरेश त्रिपाठी, सद्गुरुशरण अवस्थी, डा०

रामकुमार वर्मा डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। इस सन्दर्भ में मतभेदों के बावजूद तुलसी की ६ कृतियाँ—रामचरितमानस, जानकी मंगल, पार्वतीमंगल, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय-पत्रिका, दोहावली, बरवै रामायण तथा कवितावली की प्रामाणिकता सर्वमान्य है और तीन कृतियाँ—वैराग्य सन्दीपनी, रामाज्ञा रामलला नहछू की प्रामाणिकता बहुमान्य है। 'तुलसी सतसई' को अद्ध प्रामाणिक माना गया है। इन कृतियों के रचनाक्रम एवं रचना-तिथियों के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है और अन्तिम निर्णय आज तक नहीं हो सका है।

तुलसीदास की विचारधारा के अध्ययन को मुख्यतः दो वर्गों में रखकर देखा जा सकता है—(१) दार्शनिक विचारधारा और (२) सामाजिक नैतिक विचार-धारा। दार्शनिक विचारधारा में सम्बन्धित अध्ययनों में डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्रकृत 'तुलसी दर्शन (१९४८), डॉ० उदयभानुसिंह कृत तुलसीदर्शन मीमांसा (१९६१ ई०), श्रीरामकुमार कृत 'रामचरितमानस का तत्व दर्शन' रामदत्त भारद्वाज-कृत 'तुलसी दर्शन (१९७१ ई०) आदि प्रायः महत्वपूर्ण हैं। कुछ विद्वानों ने स्फुट निबन्धों में तुलसी के दार्शनिक विचारों का अध्ययन किया है। इनमें प० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तुलसी के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में अभी तक अंतिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सका है। कुछ विद्वान् उनकी कृतियों में अद्वैतवाद की व्याप्ति बताते हैं किन्तु बहुमत उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी मानता है। कुछ लोगों ने उन्हें दार्शनिकसमन्वयवादी भी कहा है। इधर तुलसी को एकात्मवादी भी सिद्ध किया जा रहा है। यह मतभेद जहाँ एक ओर तुलसी के चिन्तन की गहराई और अध्ययन की व्यापकता प्रमाणित करता है वहीं दूसरी ओर अध्येताओं के अध्ययन की सीमा को भी रेखांकित कर देता है। वस्तुतः तुलसी के दर्शन की व्याख्या किसी पूर्वागत सिद्धान्त की सीमा में नहीं की जा सकती। उसके स्वतन्त्र अनुशीलन की आवश्यकता है।

तुलसी की सामाजिक, नैतिक विचारधारा सम्बन्धी अनुसंधानों में महेशप्रसाद चतुर्वेदी कृत 'तुलसी का समाज दर्शन (१९६१ ई०), श्री विष्णुशर्माकृत 'तुलसी का सामाजिक दर्शन (१९६२ ई०) श्रीवैजनाथसिंह कृत मानस का सामाजिक दर्शन' (१९६४ ई०) श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी कृत 'तुलसीदास की दृष्टि में नारी (१९६७ ई०) तथा श्री चरणदास शर्मा कृत तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य (१९७१ ई०) उल्लेखनीय हैं। इन अध्ययनों में कहीं कहीं आधुनिक सामाजिक आदर्शों का आरोपित करने की चेष्टा भी मिलती है जो बहुत उचित नहीं

हैं। ये अध्ययन इस तथ्य के साक्षी हैं कि तुलसीदास लोककल्याण की भावना स समग्र जीवन दृष्टि अपनाकर साहित्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे।

'धर्म एव साधना' की विवेचना करने वाले शोधग्रन्थो मे जे० ए० कारपेण्टर कृत 'थियोलाजी आव तुलसीदास' (१६१८ ई०), जे० एम० मैक्फीकृत 'दी रामायण आव तुलसीदास' (१६३० ई०), डा० सत्य नारायण शर्मा कृत 'रामचरितमानस मे भक्ति' (१६७० ई०) डॉ० वचनदेवकुमारकृत 'तुलसी के भक्त्यात्मक गीत' विशेष रूप स उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त श्रीराम अवतार कृत 'राम भक्ति और हिन्दी साहित्य म उसकी अभिव्यक्ति' (१६६० ई०) तथा श्री रामनिरजन पाण्डेय कृत 'राम भक्ति शाखा (१६६० ई०) जैसे अध्ययन भी इस दृष्टि से उपादेय हैं। इनमे तुलसी की भक्ति को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। आनुषगिक रूप से तुलसी की धर्मभावना एव भक्तिसाधना का अध्ययन प्रस्तुत करने वाली कृतियाँ अनेक हैं। इन ग्रथो के ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय ब्योरे को अलग करके देखा जाय तो सबका प्रतिपाद्य प्राय एक सा ही है। सभी ने यह निर्णय देने की चेष्टा की है कि तुलसी को व्यक्ति और लोक धर्म की सच्ची पहचान थी और उन्होंने उसके मर्यादावादी, शास्त्रसम्मत एव उदार स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। तुलसी की भक्ति भावना उनकी सम न्वयशील दृष्टि का परिणाम है और उन्होंने सभी प्रकार क विरोधो मे सामजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है।

तुलसी की कृतियो के काव्यशास्त्रीय अनुशीलन दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के अध्ययन वे हैं, जिनमे काव्यशास्त्र के विशिष्ट अगो अथवा पक्ष-विशेष को सामने रख कर तुलसी की कृतिया का मूल्याकन किया गया है। दूसरे प्रकार के अध्ययनो मे तुलसी की कृतियो के आधार पर उनके काव्य-सिद्धान्तो को विवेचित करने की चेष्टा की गयी है। प्रथम वर्ग मे डॉ० राजकुमार पाण्डेय कृत 'रामचरितमानस का य का शास्त्रीय अध्ययन' (१६६३ ई०), डॉ० भाग्यवती सिंह कृत 'तुलसी की काव्य कला (१६६२ ई०)। डा० रागेय राघव कृत 'तुलसी का कथा शिल्प, डा० विनयकुमार कृत 'तुलसी का प्रगीत काव्य (१६६२ ई०), डा० हरिहरनाथ हुक्कू कृत 'रामचरितमास की काव्य कला' (१६७३ ई०), श्री नरेन्द्रकुमार कृत 'तुलसी की अलकार योजना और डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का रामचरितमानस वाग्वैभव' विशेष उल्लेखनीय हैं। द्वितीय वर्ग मे डा० रामलाल सिंह कृत 'तुलसी का य-दर्शन, डा० योगेन्द्रप्रताप सिंह कृत 'हिन्दी वैष्णव भक्ति-का य काव्यादर्श तथा काव्य सिद्धान्त' प्रमुख हैं। वैसे इनका सम्बन्ध पूरे भक्ति काल से है फिर भी इनमे तुलसी की रचनाओं के सम्बन्ध मे पर्याप्त विचार किया गया है।

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त आनुषंगिक रूप से तुलसी की रचनाओं का काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करने वाली निबन्धात्मक कृतियाँ अगणित हैं। अध्येताओं ने यह प्रतिपादित किया है कि तुलसीदास को काव्यशास्त्र का पूर्ण ज्ञान था और उन्होंने 'कवित्त विवेक एक नहिं मोरे' की घोषणा के बावजूद सूक्ष्मतम एवं पूर्ण काव्य-विवेक का परिचय दिया है।

हिन्दीतर रामकथाओं से तुलसी की कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा बहुत पहले से चली आ रही है। सन् १९११ ई० में श्री एल० पी० टेसीटरी ने 'रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण की कथा का तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत किया था। इधर यह प्रवृत्ति बढ़ी है। इस सम्बन्ध में डा० रमानाथ त्रिपाठी कृत 'कृत्तिवास का बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९५७ ई०) श्रीमती कमला सांकृत्यायन कृत 'महाकवि भानुभक्त के नेपाली रामायण और तुलसीदास के रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९५९ ई०), श्री शिवकुमार शुक्ल कृत 'रामायणेतर संस्कृत काव्य और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६१ ई०), श्री जगदीशनारायण कृत 'रामचन्द्रिका और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६२ ई०), श्री एम० जाजकृत 'तुलसीदास और रामभक्ति सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मलयालम कवि एडुत्तच्छन का तुलनात्मक अध्ययन (१९६२ ई०), डा० रामप्रकाश अग्रवाल कृत 'वाल्मीकि और तुलसी का साहित्यिक मूल्यांकन' (१९६६ ई०), श्रीमती विद्या मिश्र कृत 'वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६३ ई०), श्रीमती तुलसी मिश्र कृत 'वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस में नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। इन विस्तृत तुलनात्मक अध्ययनों के अतिरिक्त तुलसी का मूल्यांकन प्रस्तुत करने वाली अन्य कृतियों में भी कथातत्त्व, विचारधारा, भाव सौंदर्य प्रसंग कल्पना, चरित्र-चित्रण आदि का विवेचन करते हुए प्रसंगवश तुलसी कृत रामायण की अन्य रामकाव्यों से तुलना की गयी है। इस प्रकार के अध्ययनों से तुलसी की मर्यादावादिता, काव्यमर्मज्ञता, समन्वय-शक्ति, रामनिष्ठा एवं नाटकीय प्रसंगों की उद्भावनाशक्ति उभर कर सामने आयी है और प्रकारान्तर से यह अध्येताओं के हृदय में आलोच्य कवि के प्रति आदर भाव की वृद्धि में सहायक हुई है।

तुलसीदास के काव्य का अनुसंधानपरक मनोवैज्ञानिक विवेचन तथा उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण अभी बहुत कम हुआ है। इस सन्दर्भ में श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी की 'तुलसीदास के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' (१९६२ ई०),

डा० श्रीधर सिंह की 'तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा (१६६६ ई०) और देवेन्द्रसिंह की 'तुलसी का अन्तर्जगत' उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त डा० हरद्वारीलाल शर्मा और डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने भी स्फुट निबंधो में तुलसीदास के काव्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष का विश्लेषण किया है। तुलसी सम्बन्धी शोध का यह क्षेत्र अभी तक अपेक्षाकृत उपेक्षित रहा है। 'विनयपत्रिका', 'गीतावली' और 'कवितावली' के गम्भीर मनोवैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। तुलसी की कथा-योजना, पात्र-परिकल्पना, सौन्दर्य-चित्रण, संवाद-योजना तथा अन्य सभी काव्योत्कर्ष विधायक तत्वों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अपेक्षित है। मध्ययुग के इस सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि के काव्य में वैयक्तिक तथा सामाजिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित प्रभूत सामग्री निहित है। उसके अनुसंधान तथा विश्लेषण का कार्य मूल्यवान सिद्ध होगा।

तुलसी की कृतियो, विशेषत रामचरितमानस के पाठशोध का कार्य उन्नीसवी शती के मध्य से ही आरम्भ हो गया था। इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक प्रयासो का उल्लेख पहले किया जा चुका है। परवर्ती प्रयास दो प्रकार के हैं सन्तो और भक्तो के द्वारा सपादित ग्रन्थ और साहित्यिक विद्वानो के द्वारा सपादित पाठ शोध प्रक्रिया से निर्णीतपाठयुक्त ग्रथ।

सन्तो और भक्तो के द्वारा किये जाने वाले पाठ शोध का आधार निष्ठा और अर्थसुकुमारता रहा है। साहित्यिक विद्वानो के प्रयत्न दो प्रकार के हैं: प्रथम वे जिनमे वैज्ञानिक पाठशोध पद्धति का अनुसरण करते हुए भी अर्थ सगति को वरीयता दी गई है तथा द्वितीय वे जिनमे वैज्ञानिक पाठ शोध-पद्धति को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इस सदभ मे लाला सीताराम, बाबू श्यामसुन्दरदास, बाबू ब्रजरत्नदास, लाला भगवानदीन, पडित रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प० शम्भूनाथ चौबे तथा प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रभृति विद्वानों की सेवाए चिरस्मरणीय हैं। सन्तो और भक्तो मे कोदवराम, भागवतदास, अजनीनन्दनशरण, रामबालकदास, श्रीकान्तशरण, प०विजयानन्द त्रिपाठी आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इस सदभ मे यह उल्लेख्य है कि तुलसी के द्वादश ग्रन्थो में अभी तक विशेष बल 'रामचरितमानस' के पाठशोध पर ही दिया गया है। अन्य कृतियो मे से कुछ के ही पाठशोध के स्फुट प्रयास हुए हैं, जिनमे श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, डा० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० रामकुमार वर्मा, प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, श्री वियोगी हरि आदि के कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है। किंतु अभी तुलसी की कृतियो के पाठानुसधान का कार्य अधूरा ही है और इस क्षेत्र मे बहुत सम्भावनाए हैं।

प्रभाव लक्षित करने वाले अध्ययनों की सख्या भी सीमित है। स्रोतपरक तथा तुलनात्मक अध्ययनो में यथावसर तुलसी पर पूववर्ती कृतियो के प्रभाव का भी उल्लेख किया गया है। किंतु प्रभाव लक्षित करना स्रोत और समता लक्षित करने से भिन्न प्रकार का कार्य है। कोई भी व्यक्ति प्रभाव उससे ग्रहण करता है, जिसके प्रति वह श्रद्धालु होता है। तुलसी ने उन कृतियो एव कृतिकारो से प्रभाव ग्रहण किया होगा जो किसी अश मे उनकी विचारधारा, निष्ठा, जीवन दृष्टि एवं आदर्शों के प्रतिमान रहे होगे। भुशुण्डि रामायण के प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत करने के क्रम में इन पक्तियों के लेखक ने अनुभव किया कि अनेकश स्थलो पर भुशुण्डि रामायण की उक्तियाँ और वाक्यांश ही नही, प्रसग तक अविकल रूप मे मानस मे प्राप्त हैं। इस सम्बध में यह ध्यान देने की बात है कि पूववर्ती कृतियो से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी तुलसीदास ने अपने आदर्शों के अनुकूल प्रभावित प्रसगों मे कुछ न-कुछ परिवतन अवश्य कर दिया है और वे परिवतन अनेक स्थलो पर मूल से भी अधिक आकर्षक बन पडे हैं। विभिन्न प्रकार के पुष्पों से रस ग्रहण कर उसे विलक्षण स्वादयुक्त मधु का रूप देने मे ही तुलसी के मृगत्व की सार्थकता है।

इसके अतिरिक्त तुलसी ने राम भक्त कवियो को प्रभावित भी किया है। अभी तक उनके प्रभाव क्षेत्र का अनुशीलन तो दूर, उसका सम्यक सर्वेक्षण भी नही हुआ है। निगुण एव सगुण धारा के उत्तर मध्यकालीन काव्य पर तुलसी की गहरी छाप है। रामभक्तिधारा का समग्र परवर्ती काव्य तो तुलसीरस से सर्वांग सिक्त है ही, १८वीं तथा १९वी शती के राधा या कृष्णभक्त कवियो की रचना शैली पर भी तुलसी का व्यापक प्रभाव पाया जाता है। तुलसी के काव्य एव जीवन-दृष्टि पर जिन कृतियो एव कवियो का प्रभाव है और तुलसी ने जिनको प्रभावित किया है ये दोनों ही प्रकार के अध्ययन विवेकसदभ एव अध्यवसाय साध्य हैं। इस दिशा मे अभी भी शोध की पर्याप्त गुजाइश है।

तुलसी की भाषा का अनुशीलन यो तो उनके कृतित्व के अध्ययन के साथ ही आरम्भ हो गया था, किन्तु उसके भाषा शास्त्रीय वैज्ञानिक काव्यशास्त्रीय एव सांस्कृतिक पक्षों का विस्तृत विवेचन बहुत पीछे आरम्भ हुआ। इस दिशा मे सर्वप्रथम डा० बाबूराम सक्सेना ने 'अवधी भाषा के विकास' का ऐतिहासिक विवेचन करते हुए तुलसी द्वारा प्रयुक्त अवधी के स्वरूप पर भी विस्तारपूवक विचार किया था। डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने 'तुलसी की भाषा' (१९५७ ई०) का समग्र अध्ययनप्रस्तुत किया है। श्री शिवपूजन सहाय ने अपने एक निबध मे तुलसी द्वारा प्रयुक्त क्रियारूपो पर उपयोगी प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'बुद्ध चरित' तथा 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिकाओं में प्रसंगवश तुलसी की भाषा का संक्षिप्त किंतु गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया है। तुलसी और जायसी के समय में बहुत कम अंतर है। रामचरितमानस और पद्मावत के रचना स्थल भी पास पास हैं। दोनों की भाषा भी प्रायः एक ही क्षेत्र की है। किंतु जहाँ तक उनमें प्रयुक्त अपभ्रंश शब्दों के स्वरूप एवं मात्रा का प्रश्न है, दोनों में पर्याप्त अन्तर दिखायी देता है। पद्मावत पर अपभ्रंश का जितना गहरा प्रभाव है, उतना मानस पर नहीं। इन दोनों कवियों की भाषा का तुलनात्मक अनुशीलन करके इसके कारणों की मीमांसा होनी अभी शेष है। तुलसी द्वारा प्रयुक्त शब्दों के कोशनिर्माण के भी छिट पुट प्रयत्न हुए हैं। इस संबंध में पहला उल्लेखनीय कार्य डा० सूर्यकान्त शास्त्री का है। डा० शास्त्री ने सन् १९३७ ई० में 'इंडेक्स वर्बोरम ऑव दि तुलसी रामायण' प्रस्तुत किया था। न्यूनताओं के बावजूद यह ग्रंथ आज भी उपयोगी है। डा० भोलानाथ तिवारी का 'तुलसी शब्दकोश' भी एक सत्प्रयास है। मानस के शब्दों की गणना करके उसका प्रकाशन ओरछा नरेश की आज्ञा से टीकमगढ़ के पं० बालकृष्ण देव तैलंग ने किया था। इसके अनन्तर पं० रामनरेश त्रिपाठी ने गीता प्रेस की प्रति के आधार पर मानस की शब्द संख्या निश्चित की। दोनों में बहुत अन्तर है। इधर श्री वागीशदत्त पाण्डेय का 'मानस सदम कोश' प्रकाश में आया है। तुलसी साहित्य के अनुशीलन में इसकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। मोहिनी श्रीवास्तव ने 'रामचरितमानस की वर्णानुक्रमणिका' प्रस्तुत की है। इन सभी कार्यों में तुलसी की भाषा की प्रकृति की अवधारणा में सहायता मिल सकती है। वस्तुतः भाषा-प्रयोग की दृष्टि से भी तुलसी ने युग विधायक का कार्य किया है। उनके भाषा प्रयोग के पीछे समस्त वैष्णव भक्तिआंदोलन का संस्कार निहित है। वैष्णव भक्ति आंदोलन के प्रभाव स्वरूप परिवर्तित युगचेतना के परिप्रेक्ष्य में उनकी भाषा के अध्ययन की आवश्यकता है।

तुलसी की कृतियों के अर्थानुसंधान और टीकापरक अध्ययन की परंपरा भी पर्याप्त प्राचीन और समृद्ध है। इस क्षेत्र में दो प्रकार के प्रयत्न हुए हैं— साम्प्रदायिक और साहित्यिक। साम्प्रदायिक टीकाएँ प्रायः साधनागत निष्ठा के आधार पर लिखी गयी हैं। इनमें सर्वाधिक संख्या तुलसी की लोकविश्रुत कृति 'रामचरितमानस' की टीकाओं की है। महात्मा रामचरणदास, पं० शिवलाल पाठक, काष्ठजिह्वा स्वामी, पं० रामकुमार, महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह, हरिहरप्रसाद, बैजनाथ कूर्मवंशी, ज्ञानी संत सिंह, मुंशी शुकदेव लाल, पं०

रामेश्वर भट्ट, रामप्रसाद शरण, प० विनायक राव, बाबू श्यामसुन्दरदास, अजनीनन्दन शरण श्रीकांतशरण, प० विजयानन्द त्रिपाठी, हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि मानस प्रेमियो द्वारा तुलसी का मर्म उद्घाटित करने की दिशा में किया गया अशदान अपना विशिष्ट महत्व रखता है। इनमे म मर्मा वत दृष्टि म लिखी गयी टीकाओ में श्री अजनीनन्दन शरण की 'मानस पीयूष' और 'विनय पीयूष' टीकाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। तुलसी की अन्य कृतिया की साहित्यिक टीकाओ म लाला भगवान दीन, बाबू श्यामसुन्दर दास, श्री वियोगी हरि, श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, श्री देवनारायण द्विवेदी, श्रीकान्तशरण तथा प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा प्रस्तुत व्याख्याओ का नाम लिया जा सकता है। इनका अध्ययन भी तुलसी साहित्य के अनुशीलन का एक आनुषगिक पक्ष है। श्री त्रिभुवननाथ चौबे ने मानस की टीकाओ का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो अभी तक अप्रकाशित है। वस्तुत टीकाओ का अध्ययन स्वय म एक महत्वपूर्ण कार्य है। इस दिशा म अभी बहुत कुछ करना शेष है। अभी तक मात्र 'रामचरितमानस' को केन्द्र म रख कर ही टीकाओ का अध्ययन किया गया है। अन्य कृतियो की टीकाओ का अनुशीलन अवश्य ही उपादेय होगा।

तुलसी साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन अधिक नही हुआ है। प्राय मध्यकालीन काव्यो के सांस्कृतिक मूल्याकन के सदर्भ म तुलसी का अध्ययन भी आनुषगिक रूप मे किया गया है। स्वतत्र रूप मे तुलसी साहित्य के सांस्कृतिक अनुशीलन के सदर्भ में डा० रघुराजशरण शर्मा कृत 'तुलसीदास और भारतीय संस्कृति' (१९६१ ई०) उल्लेखनीय कृति है। तुलसीदास की रचनाओ मे मध्यकालीन संस्कृति का अक्षय कोष निहित है। पूर्व मध्यकालीन साधनाओ, विशेषत तात्रिक नाथपथी एव निर्गुण सप्रदाय ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप म तुलसी साहित्य को कहाँ तक प्रभावित किया है, इसका सम्यक आकलन होना चाहिये। तुलसी साहित्य पर समसामयिक सामती संस्कृति का प्रभाव भी कम नहीं है। उनकी कृतियो के विषय तथा शैली दोनो पक्षो पर लोक संस्कृति का सर्वाधिक प्रभाव है। तुलसी का मन जातीय सस्कारो के वर्णन म बहुत रमा है। उनकी प्रवृत्ति एव प्रेरणा स्रोतो को हृदयगम किये बिना मगल काव्यो की मीमासा हो ही नही सकती। रामलला नहछू के मूल्याकन म गण्यमान्य विद्वानों द्वारा प्रबन्ध दोष, ठेठ शृङ्गारिकता आदि को लेकर तुलसी की काव्य प्रतिभा पर किये गये आक्षेप बहुत-कुछ इस खंडित दृष्टि के ही प्रतिफल हैं।

तुलसी साहित्य के अध्येताओ मे कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं, जिन्होने उसका समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनमे मिश्रबन्धु, बाबू श्यामसुन्दर दास, प०

रामनरेश त्रिपाठी, प० रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डा० राजपति दीक्षित, डा० उदयभानु सिंह प्रमुख हैं। आलोच्य कवि की रचनाओ का जितना अध्ययन हुआ है, वह उस अकूत सम्भावना को देखते हुए नगण्य कहा जा सकता है जिसको तुलसी साहित्य अपने म छिपाये हुए है। प्रस्तुत सदभ में इस बात की ओर ध्यान बरबस जाता है कि तुलसी साहित्य के मर्मज्ञा मे एक ऐसा व्यक्ति भी रहा है, जिसका तथ्यपरक शोध का कोई मुखर दावा तो नही है, किन्तु तुलसी के जन्म-स्थान, उनके माता-पिता, कृतियो की सख्या, पाठ आदि के सम्बन्ध म प्रसगत किये गये उसक सकेत बडे-से-बडे शोध प्रयत्न की प्रेरणा बन सकते हैं, और बनत रहे हैं। इसी प्रकार भारतीय धम साधना की सुदीर्घ परम्परा मे तुलसी का स्थान रेखांक्ति करने से लेकर उनक अन्तजगत् का विशद उद्घाटन करने तक का काम उसी एक व्यक्ति क द्वारा सर्वाधिक गौरवास्पद रूप मे सम्पन्न हुआ है। कहने की आवश्यकता नही कि यह नाम आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का है। इस प्रकार के आलोचनात्मक प्रयासो मे तुलसी सम्बन्धी अध्ययनो का विश्लेषण और तुलसी साहित्य के अध्ययन के आधारो की परीक्षा के साथ ही उनके जीवन-वृत्त, कृतियो का पाठ, कृतियो का काल-क्रम, शैली, दशन, युग-प्रभाव, काव्य सिद्धान्त, भाषा, समाज-दशन आदि विभिन्न तत्वो पर विचार किया गया है। आलोचको का निर्भ्रान्त मत है कि तुलसीदास महाकवि थे। सौन्दर्य और मगल का, प्रेय और श्रेय का, कवित्व और दशन का सामजस्य उनके साहित्य की महती विशेषता है। यह सतोष का विषय है कि जहाँ तुलसी के जीवन-वृत्त सबधी तथ्यों मे किसी पर भी विद्वानों का मतैक्य नही है, वहाँ उनके काव्य गौरव के सम्बन्ध मे सभी एकमत हैं।

तुलसी साहित्य का अध्ययन आधुनिकता के सन्दभ म भी किया जा रहा है। अनेक गोष्ठियों में तुलसी की प्रासगिकता का प्रश्न उठाया गया है। यह शुभ लक्षण है। इस प्रकार के प्रसगो का उठाया जाना ही तुलसी की प्रासगिकता का सबसे बडा प्रमाण है। आधुनिकता के सन्दभ में किये गये अध्ययनो में डा० चन्द्रभान रावत कृत 'तुलसी साहित्य बदलते प्रतिमान', डॉ० रमेश कुन्तल मेघ कृत 'तुलसीदास आधुनिक वातायन से तथा डा० युगेश्वर कृत 'तुलसीदास आज के सन्दभ में' उल्लेखनीय हैं। आलोचको का नवीन काव्य-दृष्टि से प्रभावित होना स्वाभाविक है और नवीन काव्य-दृष्टि स प्रभावित होने पर प्राचीन कृतियो को भी उसी दृष्टि स देखना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि इस प्रकार के अध्ययनो से तुलसी साहित्य के वे तत्व असगत प्रमाणित हो जायें जिनका समावेश तत्कालीन परिस्थितियो के आग्रह से किया

गया था किन्तु यह भी सम्भावित है कि उसमे निहित धानजयी तत्व इन अभिनव प्रकाश किरणो से और भी आलोकित हो जाएँ।

तुलसी के व्यक्तित्व विश्लेषण के प्रसग मे कुछ अनुसधित्सुओ ने उनके अद्यावधि उपलब्ध विभिन्न चित्रो की प्रामाणिकता पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। इस क्षेत्र मे वीरेन्द्र वर्मा तथा प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के प्रयास विशेष महत्व के हैं। नागरी प्रचारणी सभा, (काशी) द्वारा प्रचारित भद्रवेश वाला चित्र अब प्राय सर्वमान्य हो गया है किन्तु अवधूत वेष वाला किशनगढ शैली का जटायुक्त चित्र भी आकृति साम्य के कारण स्वीकार्य हो सकता है। रामानन्दीय वैष्णवों मे भद्र तथा अवधूत दोनो वेष विहित माने जाते हैं। तुलसी के सन्दर्भ में उक्त दोनो वेषो के चित्रो को मान्यता इस आधार पर दी जा सकती है कि एक मध्य वय का और दूसरा परिणत वय का प्रतीत होता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका मूल उद्देश्य तुलसीदास और उनके साहित्य से सम्बन्धित अनुसधान कार्य की विविध दिशाओ की ओर संकेत मात्र रहा है। इस महाकवि के विराट व्यक्तित्व एव कृतित्व के आकलन का प्रयास अत्यन्त व्यापक तथा दीर्घकाल व्यापी रहा है। सब का मूल्याकन इस छोटे-से निबन्ध की सीमा मे सम्भव नहीं है। विभिन्न पक्षो से सम्बद्ध शोध-कार्यों का निर्देश करते हुए सक्षेप मे उनकी उपादेयता और महत्व की ओर भी इगित कर देना अपना लक्ष्य रहा है।

अन्त मे तुलसी साहित्य के उन पक्षो की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा जिनमे शोध के लिए पर्याप्त अवकाश है।

तुलसी के जीवन-वृत्त पर आग्रहमुक्त होकर विचार करने की आवश्यकता है। उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में निर्णय करते हुए ऐसे भाषा प्रयोगो पर ध्यान देना अपेक्षित है जो परिनिष्ठित अवधी या ब्रजी के रूप मे न होकर ठेठ बोली के प्रयोग हैं। ऐसे प्रयोग उनकी आरम्भिक कृतियो मे लक्षित किये जा सकते हैं। बोली मे क्षेत्रीय सस्कारो की गध होती है। इस गध को पहचानकर तुलसी की जन्मभूमि और बाल्यकालीन निवास स्थान के सम्बन्ध मे निर्णय किया जा सकता है। तुलसी साहित्य के समस्त स्रोतो की खोज अभी पूरी पूरी नहीं हो सकी है। तुलसी के व्यक्तित्व, उनकी रचना प्रक्रिया और उनकी कृतियो में परम्परा और प्रयोग के स्वरूप का यथोचित विश्लेषण भी अभी तक नहीं हुआ है। तुलसी का परवर्ती हिंदी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव की मीमांसा होनी चाहिए। तुलसी के सम्बन्ध में परवर्ती कवियो ने जो प्रशस्तियाँ लिखी हैं, वे उनके व्यापक प्रभाव की सूचना देती हैं। इन प्रशस्तियो का सक-

लन एवं विवेचनात्मक अनुशीलन अपनेआप में एक स्वतंत्र शोध कार्य का विषय है। तुलसी की प्रेरणा से रामलीला साहित्य की एक अलग परम्परा ही चल पड़ी थी। कुछ ने तुलसी मानस को ही लीला के अनुसार रूपान्तरित कर लिया और कुछ ने उनके द्वारा संयोजित घटना-क्रम को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करके स्वरचित छन्दों के माध्यम में रामलीला काव्य की रचना की। तुलसी के सामाजिक संघटन सम्बन्धी कार्यों का मूल्यांकन इन लीलाओं के स्वरूप और इतिहास के अध्ययन के आधार पर ही किया जा सकता है।

तुलसी की रचनाओं के सम्बन्ध में भी अभी शोध की आवश्यकता है। 'गीतावली', 'दोहावली', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' आदि कृतियों को अन्तिम रूप कब मिला, इसका निर्णय अभी तक नहीं किया जा सका है। तुलसी के साहित्य पर तत्त्व-दृष्टि से भी विचार और अनुसंधान हो सकता है। इस महाकवि ने न केवल भारतीय काव्य-सिद्धान्तों के श्रेष्ठ उपादानों से अपनी रचनाओं को अलंकृत किया है वरन् अपनी प्रतिभा के बल पर काव्यशास्त्र के निर्माण की प्रचुर सामग्री भी प्रस्तुत की है। उनकी कृतियों को दृष्टि में रखकर लक्षण-निर्माण करने से एक संश्लिष्ट काव्यशास्त्र तैयार किया जा सकता है। इस दिशा में कुछ प्रयास हुआ भी है। तात्पर्य यह है कि तुलसी साहित्य के सम्बन्ध में शोध के अगणित वातायन अब भी खुले हैं। कृतसंकल्प, अध्यवसायी और विवेकशील अनुसंधाताओं के लिये आज तुलसी का साहित्य एक चुनौती है। तुलसी विषयक खोज को वृत्ति के लिये स्वीकार करने के स्पृही अर्थार्थी अनुसंधित्सुओं की एक लम्बी कतार दिखायी दे रही है, किन्तु प्रवृत्ति के रूप में उसे अपनाने वाले जिज्ञासु साधक विरल हैं। तुलसी ने भक्ति साहित्य के शोधार्थियों के निमित्त स्वयं कुछ अर्हताएँ निश्चित की हैं। मेरे विचार से उनके अभाव में तुलसी के व्यक्तित्व तथा साहित्य के अन्तः एवं वाह्य स्वरूप का मर्मोद्घाटन हो ही नहीं सकता—

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोदै जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥

भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी इस क्रान्तदर्शी कवि के भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन की गहराइयों में निहित असंख्य तत्त्वरत्न अब भी इन उपकरणों से सुसज्ज खोजी की बाट जोह रहे हैं।

बिहार के रसिक संत

रसिक-रामभक्ति को यद्यपि साम्प्रदायिक रूप राजस्थान में मिला, किंतु उसका सर्वाधिक प्रसार बिहार में ही हुआ। आराध्या सीता की जन्म-भूमि होने के कारण माधुर्योपासक संतों ने इस प्रदेश को विशेष महत्त्व दिया। शृंगारी साधना में सख्य एवं दास्यभाव की प्राप्ति मिथिला के ही सम्बन्ध पर आधारित होने से इस प्रदेश में निवास करना रामोपासना का एक अनिवार्य तत्त्व माना जाने लगा। रसिक भावना की भाँति ही संबंध-रूपा भक्ति की भी परंपरा प्राचीन काल से ही चली आ रही थी।[1] श्री सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामानुजाचार्य के शिष्य पराशरभट्ट ने जनकभावापन्न होकर 'दामाद' रूप में राम के सामीप्य-लाभ की आकांक्षा व्यक्त करते हुए लिखा था—

मातर्लक्ष्मि यथैव मैथिलजनस्तेनाध्वना ते वयं
त्वद्दास्यैकरसाभिमानसुभगैर्भावैरिहामुत्र च।
जामाता दयितस्तवेति भवती सम्बन्धदृष्ट्या हरिं
पश्येम प्रतियाम याम च परीचारान् प्रहृष्येम च ॥[2]

रसिक संतों ने साम्प्रदायिक रामभक्ति का प्रासाद इसी सम्बन्ध भावना की नींव पर खड़ा किया। तीर्थरूप में मिथिला की प्रतिष्ठा पौराणिक युग से ही चली आ रही थी, परन्तु रामोपासकों की अखंड परम्पराएँ इस भू-भाग में १६वीं शती के उत्तरार्ध में स्थापित हुई। इस काल में रसिक राम-भक्तों का यह मुख्य केंद्र बन गया। देश के सुदूरस्थ प्रदेशों से आकर रामभक्तों ने इस प्रदेश के विभिन्न भागों में अपनी गद्दियाँ स्थापित कर ली। इसका एक राजनीतिक कारण भी था। अकबर के परवर्ती मुगल सम्राटों की विद्वेषपूर्ण नीति से हिंदुओं की स्थिति अरक्षित और अशांतिमय हो गई थी। औरंगजेब के शासनकाल में हिंदू-दमन पराकाष्ठा को पहुँच गया था। अयोध्या, मथुरा और काशी के प्रसिद्ध

---

१ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० १०५ १०६।

२ गुणरत्नकोष, छं० ५०।

देवालय इसी समय ध्वस्त किये गये।[1] मैदानो मे स्थित तीर्थों मे भजनो-पासना मे इतने प्रतिबंध लगा दिये गये थे कि वे साधको के लिए सर्वथा अनुपयोगी हो गये थे। ऐसी स्थिति मे रामोपासको की दृष्टि वन्य प्रदेशो में स्थित चित्रकूट और मिथिला जैसे रामतीर्थों की ओर गई। बिहार दिल्ली से काफी दूर पडता था। उसका प्रमुख रामतीर्थ जनकपुर घने जगलो से आच्छादित था। अत रामभक्तो को इस आपत्ति-काल में वही एक मात्र शरण्य प्रतीत हुआ। राजस्थान छोडकर महात्मा सूरकिशोर ने इसीलिए मिथिला म आश्रय लिया था। उनके निम्नांकित छंद से तत्कालीन स्थिति का यथार्थ बोध होता है—

कलिकाल बढो दल साजि चढो सब वेद पुरान भए सिथिला।
साधु के ठौर असाधु बसैं सुथलाऊ ठौर भए कुथला॥
बरनाश्रम धर्म विचार गए द्विज तीरथ देव भए निथला।
रही ठौर न ओर कहूँ जग मे तब 'सूरकिसोर' तकी मिथिला॥

एक स्थान पर तो उन्होंने स्पष्ट रूप से इस देशव्यापी आध्यात्मिक अराजकता का कारण मुसलमानो द्वारा हिंदू-तीर्थस्थानो का आक्रांत होना बताया है—

जहँ तीरथ तह जमन बास पुनि जीविका न लहिए।
असन बसन जहँ मिले तहाँ सतसग न पैए॥[2]

इस स्थिति म एकांतप्रिय साधक धीरे-धीरे अयोध्या और काशी को छोडकर मिथिला और चित्रकूट म एकत्र होने लगे। कुछ ही दिनो मे ये निर्जन स्थान सतो की छावनियो स भर गये। १७वी शती स १६वी शती के प्रसिद्ध रामभक्त काशी-वासी काष्ठजिह्वास्वामी 'देव' के समय तक यही स्थिति रही। जनकपुर मे तब तक अधिकाश संत छोटी छोटी कुटियो म ही स्थापित आराध्य युगल की अचना करते थे। विशाल मन्दिरो का प्राय अभाव था। सभवत इसीलिए वह तत्कालीन शासन की शनि दृष्टि से बचा रहा। देवस्वामी ने अपने समकालीन मिथिलावासी रसिक भक्तो की जीवन-चर्या का बडा ही सजीव विवरण प्रस्तुत किया है—

तिन संतन की बलिहारी जे सियाजू को नगर बसत।
छोटी कुटिन मे सियाराम की जोरी रुचिर पधारी।
राति दिवस परिचरन प्रेम स बारहि बार निहारी।

---

१ दि रिलीजस पालिसी आफ मुगल एम्परर्स, पृ० ४२१।
२ मिथिला विलास, छ० ६२।
३ वही, छ० ६१।

सरल सुमील भाव के भूखे धरम नेम व्रत धारी।
नाचत गावत परम हर्ष से बैठि बजावत तारी।
कोऊ पखारत कोऊ सिंगारत कोऊ चँवर कर ढारी।
कोऊ गावत कोउ अरथ बतावत ललित कथा विस्तारी।
चरण शरण सब विधि से जिनके भइ अन्दर उजियारी।
आन 'देव' इनके आँगन मे देखत धरम विचारी।[1]

इससे मिथिला के विस्थापित सता के उत्साह का अनुमान लगाया जा सकता है।

राम-भक्तो का कार्य-क्षेत्र मिथिला तक ही सीमित नही रहा। प्रान्त के अन्य भागो मे भी उनका प्रसार हुआ। जहाँ तक ज्ञात हो सका है, बिहार मे सर्व-प्रथम रसिकाचार्य अग्रदास क शिष्य श्यामदास का पदार्पण हुआ था।[2] इन्होंने रैवासा (राजस्थान) से आकर चिरान (सारन) म गगातट पर अपनी कुटी बनाई थी। प्रसिद्ध है कि बाल्यावस्था म ये सन्यासियो के साथ हिंगलाज गये, वहाँ देवी ने स्वप्न में दर्शन देकर इन्ह पुष्कर (राजस्थान) जाकर पयहारी श्रीकृष्णदास की कृपा प्राप्त करने की प्रेरणा दी थी। इसी तीर्थ में इन्होंने अग्र दास विरचित 'ध्यानमजरी का पाठ सुनाकर पयहारीजी को प्रसन्न किया, जिसके फलस्वरूप इन्हें अविरल राम-भक्ति प्राप्त हुई। इसके बाद ये रैवासा आये और सारा वृत्तान्त गुरुचरणो मे निवेदन किया। अग्रदास से अनुमति प्राप्त कर इन्होंने अयोध्या होते हुए मिथिला की यात्रा की। इसी यात्रा मे इन्होंने गगा-तटवर्ती 'चिरान को अपनी साधना-भूमि बनाने का निश्चय किया। मिथिला से लौटकर य इसी स्थान पर बैठ गये। कहा जाता है, गुफा बनाकर इन्होने यहाँ एक वर्ष की अचल समाधि ली थी। थोडे ही दिनो म अपनी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति से इन्होंने उस प्रदेश मे बडी ख्याति प्राप्त कर ली। यही इनकी गद्दी स्थापित हो गई।

इनके शिष्यो मे प्रमुख थे—मनोहरदास और चिंतामणिदास। मनोहरदास के शिष्य ऐनीराम का नाम अबतक इस प्रदेश में बड़ी श्रद्धा क साथ लिया जाता है। ये किसी 'बादशाह क कर्मचारी थे। कहते हैं, एक बार राजाज्ञा से किसी विद्रोही सामत का दमन करने क लिए जब ये दल-बल सहित जा रहे थे, तब चिरान के समीप कही इनकी नाव भवर मे पड गई। उस समय इन्होने श्याम-

१ मिथिलाबिन्दु (काष्ठजिह्वास्वामी 'देव') से उद्धृत।
२ रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ १०१।

दासजी की गद्दी की पूजा मानी। नाव सकुशल पार हो गई। शत्रु को पराजित करके ऐनीराम चिरान की गद्दी का दर्शन करने गये। इसी समय उन्हें पुत्र की मृत्यु का दुःखद समाचार मिला। उनके मन में इस समाचार ने तीव्र विरक्ति उत्पन्न कर दी। सेना को उच्च कर्मचारियों के साथ विदा करके वे चिरान में रह गये। बादशाह ने इनकी कार्य-कुशलता पर प्रसन्न होकर भरण-पोषण के लिए जलपुर और जलालपुर नामक दो गाँव दिये। ऐनीराम ने उन्हें, गद्दी को, संत-सेवा के लिए समर्पित कर दिया। इनके दो पट्टशिष्य थे—भगवानदास और कृपाराम अथवा मगनीराम। मँगनीराम के शिष्य मौजीराम गद्दी के उत्तराधिकारी हुए। बिहार में कतिपय रसिक-परंपराओं के संस्थापक रामगुलेला इन्हीं के शिष्य थे।

श्यामदासजी के प्रशिष्य और चिंतामणिदास के शिष्य तेजाराम ने खलपुरा में अपनी अलग गद्दी स्थापित की। सूरदास इन्हीं के शिष्य थे। इन्होंने चरणदास को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। चरणदास के प्रथम शिष्य रामेश्वर खनपुरा के पीठाचार्य हुए और द्वितीय शिष्य ब्रजमोहन चिरान के। इनके शिष्य एवं प्रशिष्य क्रमशः देवाराम और गंगादास भी यहीं बस गये।

बिहार में द्वितीय रसिक गद्दी की स्थापना मिथिला में हुई। इसके प्रवर्त्तक महात्मा सूरकिशोर थे। मिथिला के लुप्तप्राय तीर्थों के उद्धार का श्रेय इन्हीं को है। जीवाराम जी ने इन्हें अग्रदासजी के बड़े गुरु-भ्राता कील्हदासजी का पौत्र शिष्य बताया है। किन्तु इनकी मिथिला स्थित गद्दी की जो परंपरा इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुई है, उसमें ये कील्हदास की पाँचवीं पीढ़ी में आते हैं।[1] ग्रियर्सन महोदय ने इन्हें सं० १७०३ के आसपास वर्तमान माना है।

इनका जन्म जयपुर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। तत्कालीन जयपुर नरेश रामसिंह द्वारा गलता के आचार्य मधुराचार्य के प्रति किये गये दुर्व्यवहार से खिन्न होकर ये सीकर चले गये और संतों की किसी जमात में रहने लगे। जानकीजी के प्रति इनकी वात्सल्य-निष्ठा थी। भावावेश में पुत्री के विग्रह को साथ लिये हुए बाजारों में ये प्रायः उनके लिए खिलौने, मिठाइयाँ आदि खरीदने निकल जाया करते थे। इनके सहवासी साधुओं को जगन्माता में पुत्री का भाव रखकर उन्हें साथ लिये इनका घूमना अच्छा न लगा। एक दिन उन लोगों ने वह मूर्ति गायब कर दी। सूरकिशोरजी 'पुत्री' की वियोग व्यथा से उद्विग्न होकर

---

१ कील्हदास—परमानंददास—माधवदास—खेमदास—सूरकिशोर। (मिथिला विलास का परिशिष्ट।)

मिथिला चले आये और यहाँ साधनामय जीवन व्यतीत करने लगे। साम्प्रदायिक ग्रंथों के अनुसार जानकीजी की वह मूर्ति मिथिला में एक वट-वृक्ष के नीचे पुनः प्रकट हुई। उन्होंने उसे अपनी कुटी में स्थापित किया, उनके एक छंद में इस घटना का संकेत मिलता है—

मिथिला कलि काल भ्रमी सगरी तब जानकी जू प्रगट है उधरी।
सतसंग विलास कथा चरचा नित आनंद मंगल होत खरी॥
अनसोधन सो पट भूषन सो भुसमपति मंदिर आन धरी।
कहै 'सूरकिशोर कृपा सिय की यकबारहिं बात सबै सुधरी॥'[1]

जनक-भावापन्न होने के कारण ये जब कभी अयोध्या जाते, तब वहाँ का अन्न-जल नहीं ग्रहण करते थे। सम्बन्ध गौरव का निर्वाह ये आजीवन करते रहे। कहते हैं, एक बार इष्टदेव द्वारा वर-याचना का अनुरोध करने पर इन्होंने 'दामाद से कुछ माँगना कुल-परम्परा के विरुद्ध बताते हुए कहा था—

निबही तिहुँ लोक में 'सूरकिसोर' बिजै रन में निमि के कुल की।
जस जाइ लग्यो सत दीप लौं कान कथा कमनीय रसातल की॥
मिथिला बसि औध सहाय चहै तौ उपासक कौन कहैं भल की।
जिनके कुल बीच सपूत नहीं करैं आस दमादन के बल की॥[2]

इनकी एक मात्र उपलब्ध रचना 'मिथिला विलास' है। इसके सरस छंदों में वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति के साथ ही तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति की झलक मिलती है।

सूरकिशोरजी के उत्तराधिकारी एवं सर्वाधिक ख्यात शिष्य प्रयागदास थे। रसिकसाधना में ये 'जनकपुर के सखा भाव' के प्रवर्तक माने जाते हैं।[3] गुरु के सम्बन्धानुकूल ये भाव में अपने को निमिवंशी और सीताजी का भाई मानते थे। इस नाते राम इनके बहनोई थे। इस सम्बन्ध का निर्वाह इन्होंने आजीवन किया। इनकी जन्मभूमि का पता नहीं चलता। रसिकप्रकाश भक्तमाल के अनुसार बाल्यावस्था में ही ये विरक्त होकर ये प्रयाग तथा काशी होते हुए जनकपुर पहुँचे और महात्मा सूरकिशोर से शृङ्गारी उपासना का रहस्य प्राप्त किया। इसके पश्चात् ये कुछ दिनों तक नर्मसखा के रूप में मिथिला के गाँवों में बालकों के साथ खेलते रहे। बड़े होने पर

१ मिथिला विलास, छं० ६३।
२ वही, छं० ५८।
३ रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय, पृ० ४०३।

सूरकिशोरजी ने इन्हें करवा लेकर 'पुत्री' का हाल-चाल लेने के लिए अयोध्या भेजा। यहाँ इनका मन रम गया। अयोध्या के दास्य-भावना के भक्तों तथा अन्य नागरिकों में ये 'मामा प्रयागदास' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इनकी विरक्ति भावना इतनी तीव्र थी कि अयोध्या वास करते समय ये सर्वथा निःसंग और निर्लिप्त रहे। किसी के आश्रय में रहना इन्हें पसंद न था। गुरु का दिया हुआ करवा ही इनके पास एकमात्र पात्र था, नीम के वृक्ष की छाया ही अकेला आश्रय और आकाशवृत्ति ही एकमात्र उदर-पूर्ति का साधन। उसी के नीचे बारहो महीने इनकी चारपाई पड़ी रहती थी। ये मौज में आकर गाया करते थे—

नीम के नीचे खाट पड़ी है खाट के नीचे करवा।
'परागदास' अलबेला सोवै रामलला के सरवा॥

अयोध्या में कुछ वर्षों तक इस प्रकार मेहमानी करके प्रयागदास पुनः मिथिला लौट गये। वहाँ से गुरु की अनुमति लेकर ये प्रयाग आये और त्रिवेणी-संगम पर रहने लगे। एक दिन रामचरितमानस की कथा में इन्होंने व्यास के मुख से रामवन गमन का प्रसंग सुना। बहन और बहनोई के वनवास का समाचार समाचार सुनते ही ये व्याकुल हो गये। कहते हैं, इन्होंने तत्काल ही राम लक्ष्मण और सीता के लिए तीन जोड़े जूते और तीन चारपाइयों की व्यवस्था कराई और उसे सिर पर लादकर चित्रकूट की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर कुछ विनोदी साधुओं ने इनसे कहा कि अब वे चित्रकूट छोड़कर पंचवटी की ओर चले गये हैं। एक क्षण की भी देर किये बिना प्रयागदास ने पंचवटी की राह ली। संतों का विश्वास है कि दोनों वनवासी राजकुमारों और अपनी 'बहन' से उनकी भेंट मार्ग में ही हो गई। प्रयागदास के अनुरोध से आराध्य युगल ने चारपाई पर बैठकर जूता पहना। इस प्रकार अपनी साध पूरी कर वे अयोध्या होते हुए मिथिला चले गये। इनकी कोई स्वतंत्र कृति नहीं मिलती। संतों में इनके कुछ छंद प्रचलित हैं, जिनकी भाषा ठेठ अवधी है। इससे पता चलता है कि ये पढ़े लिखे नहीं थे। प्रयागदास के पश्चात् सूरकिशोर द्वारा स्थापित गद्दी पर जनकविहारी आसीन हुए। इनकी परम्परा अब तक जनकपुर में चली आ रही है।

रामप्रियाशरण

महात्मा रामप्रियाशरण सूरकिशोरजी के प्रायः समकालीन थे। इनका आत्मसम्बन्धी नाम 'प्रेमकली' था। ये माधोपुर (मिथिला) में रहते थे। इनके गुरु 'नेहकली' नामक कोई रसिक महात्मा थे, जो उसी प्रदेश के निवासी थे।

रामप्रियाशरण सखी-भाव के उपासक थे। इन्होंने मानस के आदर्श पर सं० १७६० में 'सीतायन' नामक एक विशाल प्रबन्ध काव्य की रचना की। यह सात काण्डों में विभक्त है—बालकाण्ड, मधुरमालकाण्ड, जयमालकाण्ड, रसमालकाण्ड, सुखमालकाण्ड, रमालकाण्ड और चन्द्रिकाकाण्ड। रसिक संतों के सिद्धांतानुसार इसके अन्तर्गत जानकीजी की केवल बाल्य एवं कैशोर लीलाओं का ही वर्णन है। वन गमन का प्रसंग छोड़ दिया गया है। इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर मंदिर (अयोध्या) में सुरक्षित है।

रामलला

बिहार में रसिक साधकों के साम्प्रदायिक संगठन में सर्वाधिक योग महात्मा रामलला ने दिया। ये लश्करी शाखा के प्रवर्तक बालानन्द (जयपुर) के बड़े गुरुभाई थे। मिथिला की अधिकांश गद्दियाँ इन्हीं की चेताई हुई हैं। नरघोघी, मटिहानी, मिर्जापुर, रामपट्टी बघनगरी, बमहिया, बराही, बिकरक, सिमरदेही, बिसनपुर, निपनिया पुलरैतो पिपरा आदि की स्थापना इन्हीं की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा से हुई। इन गद्दियों के आचार्यों तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा बिहार में रसिक साधना का व्यापक प्रसार हुआ।

शंकरदास

पश्चिमी बिहार में शताब्दियों पूर्व महात्मा श्यामदास ने रामभक्ति की जो स्रोतस्विनी बहाई थी, उसी के परिणामस्वरूप कालान्तर में अनेक पहुँचे हुए संतों का प्रादुर्भाव हुआ। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' के रचयिता जीवारामजी के पिता महात्मा शंकरदास ऐसे ही महापुरुष थे। इनका जन्म छपरा जिले के 'हमुआपुर' नामक गाँव में हुआ था। पिता का नाम पं० शोभाराम चतुर्वेदी था। वे उस क्षेत्र के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे और उसी वृत्ति से अपने कुटुम्ब का भरण पोषण करते थे। बाल्यावस्था में ही पिता का देहान्त हो जाने से इनकी शिक्षा-दीक्षा माता की देख रेख में हुई। जीविका का कोई अन्य साधन न होने से माता गायें पालकर कुटुम्ब का निर्वाह करती थीं। दुर्भाग्यवश, इसी समय बिहार में एक भीषण अकाल पड़ा। अयोध्या से आनेवाले किसी साधु से ज्ञात हुआ कि वहाँ सुकाल है। अतएव, गाँव के कुछ लोगों के साथ माता और बहन को लेकर ये अयोध्या चले गये। कुछ दिनों बाद माता का वहीं देहावसान हो गया। बहन को एक निकट सम्बन्धी के यहाँ भेजकर ये बद्रीनाथ चले गये। चारों धाम की की यात्रा करके ये नैमिषारण्य आये और व्यास वृत्ति से रहने लगे। यहीं इनका

विवाह रमन दुबे नामक किसी ब्राह्मण की पुत्री से हुआ। कुछ समय तक वहाँ रहकर ये स्त्री सहित जन्मभूमि को चले गये और खेती तथा पडिताई द्वारा जीवन यापन करने लगे। इनके चार पुत्र हुए—रामकिंकर, प्रयागदत्त, गगा-गोविन्द और जीवाराम। यही जीवाराम आगे चलकर 'युगलप्रिया' के नाम से प्रसिद्ध हुए। घर पर कुछ दिनो तक रहकर ये सपरिवार आरा जिले के 'बोध-छारा' गाँव को गये और वहाँ किसी महात्मा से दीक्षा ग्रहण की। जब पुत्र घर का काम काज सभालने योग्य हो गये, तब शकरदास गृह त्याग कर गगातट पर (छपरा) जाकर रहने लगे। कुछ दिनो बाद जीवाराम भी विरक्त होकर पिता के पास चले आये और उन्ही के शिष्य हो गये। इसी स्थान पर इन्होने अपनी ऐहिक लीला सवरण की। शकरदासजी दास्य भाव के उपासक थे। इनकी केवल एक रचना 'रामनाममाला' है जो स० १६०१ म इनकी गद्दी क तत्कालीन आचार्य महात्मा जानकीचरण क प्रयत्न से प्रकाशित हुई थी। इसकी भाषा मगही-मिश्रित भोजपुरी है।

जीवाराम 'युगलप्रिया'

शकरदासजी के पुत्र जीवाराम रसिक-परम्परा के प्रमुख साहित्यकार माने जाते हैं। पच भक्ति-भावो के पूर्ववर्ती एव समकालीन रामोपासक सतों का वृत्त 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' म सकलित कर इन्होने साहित्य तथा सप्रदाय की स्मरणीय सेवा की। इस दृष्टि से रसिक सतो मे ये विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। आरम्भ मे पिता की इच्छा इन्हे पडित बनाने की थी। अत इन्हे व्याकरण और ज्योतिष की शिक्षा दी गई। किंतु इनका मन पडिताई सीखने मे नही लगा। इसी समय छपरा जिले के सरोन्द गाँव निवासी मसाराम के सपर्क मे आकर इन्होने अष्टांगयोग और स्वरोदय की क्रियाएँ सीखीं। शकरदासजी को जब इसका पता चला, तब उन्होंने इन्हें योग-साधना से विरत होकर भक्ति मार्ग का अवलब लेने की सलाह दी। पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके ये चिरान चले आये और उन्हीं का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। शकरदासजी ने रामोपासना में इनकी प्रवृत्ति देखकर अग्रदास विरचित 'ध्यानमजरी' का पाठ करने की आज्ञा दी। आगे चलकर उन्ही की अनुमति से शृगारी साधना की प्रक्रिया सीखने क लिए ये अयोध्यावासी रसिकाचार्य रामचरणदास की शरण में गये। कुछ काल तक अवध वास करके ये पुन चिरान लौट आये और टिकारी राज्य (गया) की सहायता से पिताजी के आश्रम पर एक मठिया बनवाई तथा गद्दी स्थापित की। इनकी गणना चन्द्रकलापरत्व के मुख्य आचार्यों में होती है। कहते हैं, इनके

गुरु रामचरणदासजी की निष्ठा चारुशीला परत्व में था, किन्तु उन्होंने विशेष परिस्थिति में इनकी भाव सिद्धि को देखकर चन्द्रकला-परत्व की अनुमति दे दी थी। युगलप्रियाजी ने 'शृंगार रस रहस्य दीपिका' में इस घटना की ओर संकेत किया है। इस प्रकार रसिक-सम्प्रदाय में जीवारामजी के समय से ही उपर्युक्त घटना के अनुसार दो पृथक्-पृथक् परम्पराओं में हनुमदवतार श्रीचारुशीलाजी तथा भरतावतार श्रीचन्द्रकलाजी को प्रधानता दी जाने लगी। रसिक-साहित्य के प्रणयन और माधुर्य-भक्ति के प्रसार में आजीवन व्यस्त रहकर सं० १९१४ में युगलप्रियाजी ने साकेत-यात्रा की।

उत्तरी भारत के रसिक सन्तों में इनकी शिष्य-परम्परा सर्वाधिक समृद्ध हुई। उत्तर प्रदेश और बिहार में इनके गृहस्थ तथा विरक्त शिष्य प्रशिष्यों ने सैकड़ों गद्दियाँ स्थापित कीं। जीवारामजी की चार कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पदावली, शृंगार रस रहस्य और अष्टयाम-वार्तिक।

जनकराजकिशोरीशरण

श्रीजनकराजकिशोरीशरण 'रसिक अली' जीवाराम के गुरुभाई थे। मिथिला इनकी साधना भूमि थी। इनका जन्म काठियावाड़ में सुदामापुरी के पास एक नागर ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। लड़कपन में ही किसी साधु के साथ ये अयोध्या चले आये। यहाँ इन्होंने महात्मा रामराघवदास से दीक्षा ले ली। ये मधुर दास्य-भाव के उपासक थे। जनकराजकिशोरीशरण की आस्था शृंगारी भाव में थी अतः गुरु ने उन्हें रामचरण दासजी से माधुर्य भाव का सम्बन्ध लेने के लिए भेजा। संयोगवश उसी दिन विरान से जीवारामजी भी जानकीघाट पर आ गये। रामचरणदासजी ने दोनों शिष्यों को एक साथ ही माधुर्य भक्ति की दीक्षा दी। रसिक अली नाम इसी समय पड़ा। इसके अनंतर ये रस साधना में दृढ़तापूर्वक प्रवृत्त हुए और अष्टयाम तथा नित्यभावना में मग्न रहने लगे। इन्हीं दिनों रामचरणदासजी की प्रेरणा से टिकारी के राजा इनके शिष्य हो गये। रसिकअलीजी ने उन्हें शिष्य कनक-भवन के स्वरूप का उपदेश किया। राजा साहब ने माधुर्य भावना के अनुसार नव वनों तथा अष्ट कुंजों सहित कनक-भवन का निर्माण कराने की इच्छा प्रकट की। रसिक अलीजी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। राजा साहब ने दस हजार रुपये कनक-भवन के निर्माण के लिए दिए। रसिक अलीजी ने बड़े समारोह के साथ कार्य आरम्भ किया। कारीगरों को मुँहमाँगी मजदूरी देने उन्हें भावनानुकूल वस्त्रों से विभूषित और व्यंजनों से तृप्त करने, साधुओं में मधुर प्रसाद वितरण करने आदि में आय से अधिक रुपये व्यय

हो गये। शेष रामविवाह के आयोजन में लग गये। बड़ी मुश्किल से दस हजार रुपये में अष्ट कुंजों में से एक कुंज का केवल एक द्वार निर्मित हो पाया। महात्मा राजराघवदास इस अपव्यय से बहुत अप्रसन्न हुए। राजा साहब भी हिम्मत हार बैठे। अर्थाभाव के कारण काम बन्द हो गया। इससे रसिक अलीजी बहुत खिन्न हुए। उनका मन अयोध्या से उचट गया। वे जालौन चले गये। वहाँ उन्होंने एक निर्जन स्थान में बारह वर्ष तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए भक्ति का प्रचार किया। इस प्रदेश में उनके हजारों शिष्य हो गए। इन्हीं में एक लाडलीलालशरण थे। उन्हें साथ लेकर वे पुनः अयोध्या चले आये। कुछ दिन गुरु-सेवा करके वे यहाँ से मिथिला चले गये और फिर आजीवन वहीं रहे। जनकपुर में बिहारकुंड से दक्षिण और बलवाटोल से पूर्व दिशा में स्थित 'रसिक-निवास' आश्रम की स्थापना इन्होंने ही की थी। इसी स्थापना पर सं० १९०९ की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को पार्थिव शरीर त्याग कर इन्होंने प्रियतम की दिव्य लीला में प्रवेश किया।

मौलिकता तथा विचार स्वतन्त्रता की दृष्टि से १९वीं शती के शृंगारी संतों में इनका स्थान अन्यतम है। इन्होंने रसिकों के परम्परागत तत्सुखी सिद्धान्त के विपरीत स्वसुखी सिद्धान्त का प्रवर्तन किया था। अब तक इनकी २४ रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं, उनमें प्रमुख हैं—सिद्धान्त मुक्तावली, आत्म-सम्बन्धदर्पण, राम रास-दीपिका, मिथिला-विलास और अमर रामायण। अयोध्या तथा मिथिला में इनके द्वारा स्थापित गद्दियों की परम्पराएँ आज तक चली आ रही हैं।

रामशरण

रसिक अलीजी की ही भाँति महात्मा रामशरण ने भी अन्य प्रदेश के निवासी होते हुए भी अपना मुख्य कार्य-क्षेत्र बिहार को ही बनाया और इसी पुण्यभूमि को अपना शरीर अर्पित किया। इनका जन्म अवध के तिलोई राज्य में तमसा नदी के तट पर पंडितपुरवा नामक ग्राम में सं० १८६४ की आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को हुआ था। इनके पिता, पं० रामस्वरूप ज्योतिषी थे। ये शैशवावस्था में ही मातृहीन हो गये। दादी ने पालन पोषण किया। पिता ने रामदत्त नामक पंडित द्वारा इन्हें कुछ शिक्षा दिलाई। किन्तु, इनका मन पढ़ने में न लगा। सोलह वर्ष की आयु में ही घर बार छोड़कर ये विरक्त हो गये। प्रयाग होते हुए अयोध्या आये और सुग्रीवटीला पर गरीबदास नामक किसी साधु से मन्त्र दीक्षा ले ली। इसके पश्चात् कई वर्षों तक ये भारत के विभिन्न तीर्थों

का पर्यटन करते रहे। इसी यात्रा में इन्होंने चित्रकूट, पंचवटी, श्रीरंगपुरी, कन्याकुमारी, तिरुपति और जगन्नाथपुरी के दर्शन किये। पुरी में ही इन्होंने सीतारामीय हरिहरप्रसाद से सख्य-रस का सम्बन्ध लिया। यहाँ से ये भृगु आश्रम होते हुए बक्सर गये। बक्सर के निकट पचारी नामक गाँव में भी कुछ दिनों तक इनके रहने का प्रमाण मिलता है। यहीं पर सुरसरि के बाबू राम-उग्रारसिंह इनके दर्शन को आये। सेवकों के अनुरोध करने पर इस स्थान से ये नौआही गये। इसके पश्चात् ये जनकपुर चले गये और वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे। यहीं वैशाख कृष्ण चतुर्दशी (संवत् अज्ञात) को इनकी परधाम-यात्रा हुई।

इनके रचित दो ग्रंथ हैं—रामतत्त्व सिद्धान्त संग्रह और मैथिली रहस्य पदावली। प्रथम, सिद्धान्त ग्रंथ है और दूसरा समय समय पर लिखे गये भावात्मक छन्दों का संग्रह। जीवन का अधिकांश बिहार में व्यतीत करने के कारण, मूलतः अवधवासी होते हुए भी इनकी कृतियों में भोजपुरी का पुट अधिक मिलता है। इनकी रचनाएँ प्रायः सोहर छन्द में हैं, जिनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है—जनक का हल यज्ञ जानकी जन्म फुलवारी लीला आदि।

युगलानन्यशरण 'हेमलता'

महात्मा युगलानन्यशरण की साधना भूमि अयोध्या थी, किन्तु जन्म तथा गुरुभूमि दोनों बिहार ही थी। इसलिए, इनकी गद्दी के अनुयायियों का अधिकांश बिहार में ही पाया जाता है। इनका आविर्भाव सं० १८७५ की कार्तिक शुक्ला सप्तमी को फल्गु नदी के निकट पटना जिले के इस्लामपुर गाँव के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता का देहान्त हो गया। घर पर ही कृष्ण नामक विद्वान् से इन्होंने शास्त्राध्ययन किया। फारसी भाषा बिना किसी शिक्षक के स्वतः सीखी। इसी समय इन्होंने मल्लयुद्ध और संगीत का भी अभ्यास किया। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही ये विरान के महन्त 'युगलप्रियाजी' से मन्त्रदीक्षा लेकर विरक्त हो गये। कुछ काल तक काशी और चित्रकूट में निवास कर अयोध्या आये और १४ महीने तक मौन धारण करके घृताची-कुण्ड पर तपस्या की। इसके अनन्तर ये पुनः चित्रकूट गये और जानकीघाट पर ठहरे। रीवाँ के महाराज विश्वनाथसिंह इनकी ख्याति सुनकर दर्शनार्थ उपस्थित हुए। युगलानन्यशरणजी ने शृङ्गारी उपासना के रहस्यों की व्याख्या कर उनकी जिज्ञासा निवृत्त की। चित्रकूट से ये पुनः अयोध्या लौट आये और निर्मली-कुंड पर रहने लगे। इसी समय १८५७ ई० की प्रसिद्ध क्रांति हुई। इनके आश्रम

के समीप ही गोरी पल्टन की छावनी थी। शिष्यों के अनुरोध करने पर भी इन्होंने वहाँ से तत्काल हटना स्वीकार न किया। कुछ ही दिनों में आश्रम के निकट बड़ी संख्या में गोरे सैनिकों के कैम्प पड़ गये। इससे अपवित्रता बढ़ गई अतः, उस स्थान को छोड़कर ये अयोध्या नगर में आ गये और लक्ष्मण किला पर आसन लगाया। आजीवन ग्रंथ-रचना और धर्मोपदेश करते हुए इसी स्थान पर सं० १९३३ की मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को ये आराध्य की दिव्य साकेत-लीला में प्रविष्ट हुए।

युगलानन्यशरणजी संस्कृत और हिंदी के तो अधिकारी विद्वान् थे ही, अरबी और फारसी में भी उनकी अद्भुत गति थी। सूफी साहित्य के वे मर्मज्ञ विद्वान् माने जाते थे। उनकी वेष भूषा भी सूफियों जैसी ही थी। उनकी रचनाओं की संख्या ९० के लगभग है। पूरे सम्प्रदाय में किसी अन्य कवि की इतनी विपुल राशि में रचना नहीं मिलती। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—रघुवर गुण दर्पण, मधुरमंजुमाला, श्रीसीताराम नाम-प्रताप प्रकाश, उज्ज्वल-उत्कंठा विलास, अर्थ-पंचक, सीताराम नेह-वाटिका, पारस-भाग और संत-वचनावली।

सीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला'

रूपकलाजी का जन्म सारन (छपरा) जिले के मुबारकपुर गाँव में श्रावण कृष्ण ६, सं० १८९८ में कायस्थ-कुल में हुआ था। इनके पिता मुंशी तपसीराम और चाचा मुंशी तुलसीराम रामानंदीय वैष्णव थे। उनके सम्पर्क से भगवद्भक्ति के बीज इनके हृदय में बाल्यावस्था में ही अंकुरित हो गये। आरम्भ में इन्हें कुल परम्परानुसार फारसी की शिक्षा दी गई। इसके पश्चात् प्राइमरी परीक्षा पास कर ये छपरा के राजकीय स्कूल में अंगरेजी पढ़ने के लिए भेजे गये। यहाँ से इन्होंने एण्ट्रेंस परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी समय शिक्षा-विभाग में नौकरी के लिए इन्होंने आवेदन पत्र दे दिया। साक्षात्कार के समय इनकी योग्यता से प्रभावित होकर तत्कालीन शिक्षा विभाग के इंसपेक्टर डॉ० फ्लेन ने इन्हें सब इंसपेक्टर के पद पर नियुक्त कर लिया। सं० १९२४ में डिप्टी इंस्पेक्टर बनाकर ये पूर्णिया भेजे गये। नौकरी करते हुए भी इनका भजन भाव चलता रहा। इनकी रुचि माधुर्य भाव में थी। इस संबंध में परसा (जिला सारन) के महात्मा रामचरण-दास से इन्हें विशेष पथ-निर्देश प्राप्त हुआ। कालान्तर में ये उन्हीं के शिष्य हो गये। सं० १९३८ में इन्होंने गुडहट्टा ठाकुरवाडी (भागलपुर) में महात्मा 'हंस कला' से शृंगाररस का संबंध ग्रहण किया। इनके साधना-शरीर को 'रूपकला' की संज्ञा इसी समय प्राप्त हुई। भागलपुर से बदलकर ये पटना आये। यहाँ कुछ

अलौकिक घटनाएं घटीं जिनसे प्रभावित होकर इन्होंने दो बार सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दिया। किंतु दोनों ही बार शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर तथा खड्गविलास प्रेस के अध्यक्ष बाबू रामदीन सिंह के अनुरोध से इन्हें इस्तीफा वापस लेना पड़ा। सं० १९५० के आश्विन मास में सेवावधि समाप्त करके ये अयोध्या चले आये और हनुमत् निवास में महात्मा गोमतीदास के साथ रहने लगे। सं० १९८७ में प्रमुख शिष्यों तथा प्रेमियों ने इनके लिए नयाघाट पर रूपकलाकुंज का निर्माण कराया। इस वर्ष की जानकी नवमी के एक मास पूर्व वे हनुमत निवास से आकर सरयू-तट पर स्थित इस नये आवास में स्थायी रूप से रहने लगे। यहीं पर ४० वर्ष अखण्ड अवध-वास करके ९५ वर्ष की आयु में सं० १९८९ की पौष शुक्ला द्वादशी को नश्वर शरीर छोड़कर इन्होंने प्रियतम का चिरकैंकर्य प्राप्त किया।

रूपकलाजी की लिखी हुई कुल १७ पुस्तकें मिली हैं। इनमें से ७ लौकिक शिक्षा संबंधी है शेष १० भक्ति-विषयक। इनकी सर्वाधिक ख्यात कृति नाभादास-जी के भक्तमाल की टीका है। प्रसिद्ध तुलसीमर्मज्ञ सर जार्ज ग्रियर्सन ने इसे अपना मुख्य संदर्भ ग्रंथ माना है। इसी से इसका महत्त्व आंका जा सकता है। 'हरिनाम-संकीर्तन और जानकी जयंती में रूपकलाजी की बड़ी निष्ठा थी। इनके अनुयायी अब तक प्रतिवर्ष उक्त उत्सवों को बड़े समारोह के साथ मनाते हैं।

रामाजी

रामाजी छपरा जिले के निवासी थे। इनकी जन्मभूमि बिटाय नामक ग्राम सिवान के निकट स्थित है। यहीं के एक कायस्थ परिवार में सं० १९२८ को भाद्र कृष्णा सप्तमी को इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम मुंशीराम लाल और माता का रामप्यारी देवी था। मुंशीजी पटना की किसी अदालत में नकलनवीस थे, यहाँ वे बाकरगंज मुहल्ले में बाबा भीषमदास के स्थान पर रहते थे। वे रामाजी को अपने साथ पटना ले गये और वहीं इनकी शिक्षा हुई। छोटी आयु में ही राम के दूलह रूप में इनकी भावासक्ति हो गई। अतः, खेलने और पढ़ते समय निरंतर ये विवाह लीला के ही ध्यान में मग्न रहने लगे। धीरे धीरे इनका मन पढ़ाई से उचटता गया। इसके परिणामस्वरूप एण्ट्रेंस की परीक्षा में असफल होने के साथ ही शिक्षा समाप्त हो गई। पिता ने इन्हें नौकरी करने को कहा, किंतु इनका मन उसमें भी न लगा। विवश होकर उन्होंने इनको घर भेज दिया। वहाँ कुछ दिनों तक रहने के बाद एक समीपवर्ती गाँव बगौरा में इनका विवाह हुआ। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी इनकी भाव साधना

में कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ। उस प्रदेश मे रामविवाह-लीला को स्थायी रूप देने के उद्देश्य से इन्होंने मठवा ग्राम में रामरक्षाप्रसाद तिवारी के द्वार पर एक विशाल मण्डप बनवाया। इसी प्रकार अपने इष्टदेव की जन्मभूमि तथा विवाह-लीला से सम्बद्ध स्थानो—अयोध्या, बक्सर, सीतामढी और जनकपुर—की स्मृति को स्थायित्व देने के विचार से इन्होंने सरयाँ (छपरा) ग्राम मे चार विवाह-मण्डप बनवाये। इसके अतिरिक्त अपने जीवन-काल मे ये प्रतिवर्ष अयोध्या मे श्रीरामचरितमानस का विवाहोत्सव बडे धूमधाम से करते रहे। इनकी स्मृति को चिरंतन बनाने के लिए बाद को पुजारी रामशंकरशरण ने तुलसी-उद्यान (विक्टोरिया-पार्क) के समीप वियहुती भवन स्थापित किया। यहाँ अब तक रामविवाह के अवसर पर संतो का विशाल भोज दिया जाता है। चालीस वर्ष तक पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा बिहार के लोक-जीवन को राम की माधुर्य लीलाओं से अनुरंजित कर सं० १९८५ को ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया को रामाजी ने दिव्य दूलह की नित्यलीला मे प्रवेश किया।

आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने पर भी रामाजी ने उपास्य की मधुर लीलाओ का वर्णन करने के लिए ग्राम गीतो की ही शैली अपनाई। इनकी लिखी कोई स्वतंत्र रचना नही मिलती। विवाह लीला के अवसरो पर इनके द्वारा गाये गए भोजपुरी के कुछ स्फुट गीत ही उपलब्ध हैं। रसिको मे ये मधुर दास्य-भाव के आदर्श भक्त माने जाते हैं।

इन रससिद्ध साधको के अतिरिक्त बिहार-प्रदेश के विभिन्न भागो मे ऐसे अनेक रामोपासक हुए हैं जिनके अब केवल नाम शेष रह गये है। साम्प्रदायिक साहित्य मे इनका जो वृत्त सुरक्षित है, वह सिद्धियो और चमत्कारो के गहरे कुहासे से आच्छादित है। उसके आधार पर उनके जीवन की धुंधली रूप रेखा भी प्रस्तुत नही की जा सकती। ऐसी दशा मे हमे उनके यथोपलब्ध निम्नांकित वृत्त से ही संतोष करना पडता है—

१ कृपासखी—ये रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक अग्रदासजी के शिष्य थे। गुरु की अनुमति लेकर ये परमाराध्या की जन्मभूमि का दर्शन करने मिथिला गए। वहाँ कौशिकी नदी के तट पर जानकीनगर में इन्होने अपनी गुफा बनाई और कई वर्षों तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत किया। कहते हैं, सीताजी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हे कृतार्थ किया था। इनकी गद्दी अब तक स्थापित है।

२ रघुनाथदास—ये जनकपुर मे रत्नसागर पर कुटी बनाकर रहते थे। प्रसिद्ध है कि एक दिन इन्होने सखियो-समेत समीपवर्त्ती धान के खेत मे विचरती हुई स्वामिनी का साक्षात्कार किया था। इस घटना की चर्चा इन्होने अपने शिष्य

हरेराम जीवन से की थी।

३ सीताप्रसाद—ये मिथिलावासी महात्मा दयाराम के शिष्य और सीता-मढ़ी का गद्दी के आचार्य थे। चित्रकूट से 'मिथिला माहात्म्य' लाकर सर्वप्रथम इन्होंने ही उसके आधार पर जनकपुर की परिक्रमा स्थापित की थी। इसके अतिरिक्त ज्ञानकूप तथा सीताराम-ब्याहवेदी जैसे अनेक गुप्त तीर्थों के पुनरुद्धार का भी श्रेय इन्ही को है।

४ सूरदास—इनकी भी गणना मिथिला के लुप्तप्राय महत्व के पुन स्थापकों मे की जाती है। ये पिपरा मे निवास करते थे। कहा जाता है, सूरकिशोरजी के मिथिला-विलास के अनुसार इन्होंने उस पुरी की बृहत् परिक्रमा की रूपरेखा निश्चित की थी।

५ हरिजनदास—ये नरघोघी गद्दी (मिथिला) के महत थे। इनके गुरु सभवत रामललाजी थे। नरघोघी गद्दी की साम्प्रदायिक परम्पराओ मे निर्दिष्ट हरिकृष्णदास से ये अभिन्न जान पडते हैं। मानसी साधना अथवा ध्यान-योग के ये निष्णात आचार्य माने जाते हैं। इनके शिष्य अलखरामदास भी अपने समय के प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। विवाह-लीला मे इनकी बडी निष्ठा थी। कहते हैं, रामचरितमानस म वर्णित विधान के अनुसार एक बार इन्होंने जनकपुर मे बडे समारोह के साथ राम विवाह का आयोजन किया था।

६ भिक्षुकराम—ये कोल्हस्वामी के द्वारे के शिष्य और मैथिल ब्राह्मण थे। विमला नदी के तट पर बलहा नामक गाँव इनकी जन्मभूमि था। युगलप्रियाजी से रसिक भावना का सम्बन्ध लेकर ये आजीवन जनकपुर में साधना-रत रहे। भिक्षावृत्ति स जीवन यापन करने के कारण ये भिक्षुकराम नाम से प्रसिद्ध थे। हरेराम और बूढीराम इनके दो पुत्र थे। इन्होंने गाँव मे ही रामजानकी मदिर स्थापित करके आजीवन युगलसरकार की सेवा करते हुए काल-यापन किया था।

७ नरपूदास—ये पटना के किसी रामजानकी-मदिर के महन्त थे। इष्टदेव की माधुर्य-लीलाओ के आयोजन म इनकी दक्षता लोक प्रसिद्ध थी। भागवत कथा के मर्मज्ञ व्यास प० जगन्नाथदास इनके शिष्य थे। नरपूदासजी के द्वितीय शिष्य रसिक जानकीदास थे। इन्होंने रामानुजदास नामक किसी रसिक महात्मा से शृगारी रामोपासना का सम्बन्ध लिया था। प्रसिद्ध है कि रैपुरा ग्राम की विवाह-लीला में इन्ह अली भाव की उपलब्धि हुई थी।

८ जनगोविन्द—ये रामानन्दजी के शिष्य सुरसुरानद की परम्परा मे आविर्भूत हुए थे और बिहार मे गगातट पर वरग्राम मे निवास करते थे। कहते

हैं कि एक बार ये मंदिर की व्यवस्था का भार शिष्य पूर्णदास को सौंपकर दर्शनार्थ जगन्नाथपुरी गये। इनके जाने के कुछ ही दिनों बाद बिहार के सूबेदार ने किसी कारणवश रुष्ट होकर उस गाँव पर चढ़ाई कर दी। पूर्णदास ने इसकी सूचना गुरु के पास भेजी। जनगोविन्द ने पत्रोत्तर में एक साखी लिख भेजी। उसे पढ़ते ही शाही सेना में आग लग गई। इससे घबराकर सारे सैनिक भाग खड़े हुए। पूर्णदास के शिष्य सहजराम और प्रशिष्य मोहनदास क्रमश उस गद्दी के आचार्य हुए।

९ रामदास कायस्थ—ये मिथिला-प्रदेश के सैदपुर ग्राम में रहते थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम तिरहुत में रामचरित-मानस का प्रचार किया था। प्रसिद्ध संतसेवी भगनीराम इन्हीं के पुत्र थे, जो घर में उत्पन्न मोटा अन्न बेचकर संतों की सेवा के लिए गेहूँ-चावल खरीद लाते थे। सुना जाता है, एक बार इन्होंने इस कार्य के लिए अपनी स्त्री के आभूषण बेच डाले थे जिन्हें भक्तवत्सल भगवान् ने स्वयं आकर छुड़ाया था।

१० रामसेवक—ये प्रमादराम के शिष्य थे और समस्तीपुर के निकट किसी गाँव में रहते थे। विवाह लीला के आयोजन में ये बड़ी रुचि रखते थे।

११ श्रीभगवान—इनकी गद्दी आरा में थी। कुटी में कोई संपत्ति नहीं लगी थी। अतः आकाशवृत्ति ही जीविका का एकमात्र साधन थी। इनके शिष्य महन्त बालकृष्णदास बड़े संतसेवी थे।

१२ रामघन—ये जाति के क्षत्रिय थे। कुछ काल तक गृहस्थ-जीवन व्यतीत कर इन्होंने विरक्त वेष धारण कर लिया था। पहले इन्हें संगीत में बड़ी दिलचस्पी थी। चित्रकूट में कई वर्षों तक सत्संग करने के पश्चात् ये मिथिला लौट आये और यहीं राम की माधुर्य लीलाओं पर छन्द-रचना करते हुए रहने लगे। परसा के महात्मा प्रसादीराम इन्हीं के शिष्य थे।

१३ मिथिलादास—ये जीवारामजी के साधक शिष्य थे। मिथिला में कमला नदी के तट पर इनकी गुफा थी। कहा जाता है, उस प्रदेश के गौरव की पुनः स्थापना में इनका विशेष हाथ था।

बिहार के रसिक संतों द्वारा परिवर्धित रसिक भक्तिधारा ने उस प्रदेश की रामोपासक जनता को ही प्रभावित नहीं किया—शैवों और कृष्णभक्तों के भी हृदय में रामोपासना के बीज आरोपित किये। इसके परिणामस्वरूप १८वीं और १९वीं शताब्दी में इन सम्प्रदायों के अनेक अनुयायी रसिक-संप्रदाय में दीक्षित हो गये। रामचरित-मानस और राम-भक्ति में ये सभी बड़ी आस्था रखते थे। नीचे इनका पृथक् रूप से संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

क शैव (दशनामी) रामभक्त

१ सुखरामगिरि—ये शालिग्रामी नदी के तट पर मोरिया ग्रामवासी शैव थे।

२ ततगिरि—इनकी गद्दी मठिया गाँव मे थी।

३ केसरिगिरि—ये अगोथरि (मिथिला) के दक्षिण मडुवा नामक गाँव मे रहते थे। इनके गुरुभाई कस्तूरीगिरि भी रामोपासक थे।

४ मणिगिरि—ये सिमिनी नामक गाँव म निवास करत थ।

५ हयभारती—इनकी कुटी कवनारि ग्राम म थी। इनके दादागुरु पयहारीजी अपने समय म सिद्धि के लिए प्रख्यात थे।

६ गुरु बखभारती—ये जनकपुर मे अमनौरि गाँव के निवासी थे।

ख कृष्णापासक रामभक्त

१ रामदयाल—ये गास्वामी हितहरिवश की परम्परा क महात्मा वशीलाल क शिष्य थे। इनकी जन्मभूमि भोजपुर-प्रदेशातगत जमिरा गाँव थी। ये राम-कृष्ण म अभेद भावना रखत थ।

२ अभयसिह—ये भी हित-वश मे ही दीक्षित थे।

३ सतोषमणि—ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण और हितहरिवश की परम्परा के शिष्य थे। भागवत क व्यास-रूप में इनकी बडी ख्याति थी।

४ हरिलाल—ये पटना स्थित राधाकृष्ण-मन्दिर मे रहते थे। मलूकजी क द्वारे क शिष्य पटना-वासी हरेराम इनके अभिन्न मित्र थे। उन्हीं के प्रभाव स य रामभक्ति की ओर आकृष्ट हुए थ।

५ घनश्यामदास—ये हरिव्यासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। राघवदास नामक एक अन्य महात्मा के साथ ये गडकी के तट पर मुजफ्फरपुर मे निवास करते थे। मिथिला भूमि म इनकी अगाध निष्ठा थी।

इन महात्माओ के अतिरिक्त कुछ ऐस भी रसिक सत है, जो न तो बिहार क निवासी थे और न यह प्रदेश जिनका साधना क्षेत्र ही था। किन्तु, उन्हे सिद्धि इसी भूमि म प्राप्त हुई थी। रसिकाचार्य कृपानिवास प्रेमसखी और जानकीचरण इसी श्रेणी म आते हैं। साम्प्रदायिक साहित्य म जो वृत्तात वर्णित है, उससे ज्ञात होता है कि हनुमानजी ने मिथिला म श्रीप्रसादसखी क रूप मे प्रकट होकर कृपानिवासजी को दिव्य लीला का दशन कराया था। इसी समय से उन्होने प्रसादसखी को अपना गुरु माना और उन्ही के द्वारा निर्दिष्ट पद्धति से

साधना की ।[1]

इसी प्रकार शृंगवेरपुर-वासी महात्मा प्रेमसखी ने दंडवत करते हुए चित्रकूट से मिथिला की यात्रा की थी, उस समय जानकीजी ने उनकी निष्ठा पर मुग्ध होकर प्रत्यक्ष रूप में उन्हें अपनी सखी कहकर अपनाया था । युगलप्रियाजी ने इस घटना का स्पष्ट उल्लेख किया है । अयोध्यावासी महात्मा जानकीचरण को भी रंगभूमि की दिव्य झाँकी का दर्शन यहीं हुआ था । यह आश्चर्य की बात है कि इन्होंने साम्प्रदायिक परम्परा के अनुसार रसिक भाव का सम्बन्ध प्राप्त करने के पहले ही इस प्रकार की भावसिद्धि प्राप्त कर ली थी । महात्मा दयाराम से शृंगारी उपासना का सम्बन्ध इन्होंने इस घटना के बाद ग्रहण किया था ।[2]

इन संतों के द्वारा बिहार में स्थापित पीठ आज भी शृंगारी रामोपासना के प्रमुख केन्द्र रूप में प्रतिष्ठित हैं । इस प्रदेश के निवासी शृंगारी रामभक्त स्नेहलता मोदलता तथा की वाणी में रसिक-साहित्य की धारा अब तक अविरल, श्री सीतारामशरण रूप में प्रवाहित है । समाज के सभी वर्गों के सहस्रों जिज्ञासु आज भी रसिक संतों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा प्राप्त कर आध्यात्म-पथ पर अग्रसर होते हैं ।

• •

---

१ इनको विलोकि बड़ इष्ट को प्रभाव काहू कियो न जनाव उठि गए चलि भोर ही ।
गुरु अपमान को विषाद जिय जानि उर आनि हनुमान चले मिथिला के ओर ही ।।
बीच बीच वास करि सीतामढ़ी आए भूमि देखे सुख पाये कुसलता नित मोर ही ।
आगे चलि पुरी छवि ननन प्रत्यक्ष देखी धनुष बरस बरसावत किसोर ही ।।
रही कछु वासना उपासना की दृढ़ता मे करत ही ध्यान प्रगटे हैं हनुमान जू ।
श्रीप्रसाद रूप निज अलख लखाओ उर ताप को मिटायो जन जानिके नवान जू ।।
कनक भवन को स्वरूप दरसायो भयो मिथिला मे तसोई अयप परमान ज ।
इस्ट के मिलाइवे मे हमहीं को गुरु मानो आलिन के गुल्य चारुशील हैं प्रयान जू ।।
—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० ३५ ।

२ रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० ६४ ।

तुलसीमत और वर्तमान जीवन-सघर्ष

जीवन सघर्ष मानव की नियति है। अनादि काल से मनुष्य अपने को स्थापित करने के प्रयत्न में सघर्ष करता आया है। यह सघर्ष दो स्तरों पर होता रहा है। एक तो प्राकृतिक शक्तियो को अपने अनुकूल बनाने के लिए मनुष्य अपनी बौद्धिक एव शारीरिक क्षमता के सहारे उनसे जूझता आया है, दूसरे मानव समाज के बीच अपनी स्थिति दृढ करने, समाज का व्यवस्थित करने और मर्यादा और मूल्य को स्थापित करने के लिए भी वह बराबर सघर्ष करता रहा है। ये दोनो ही सघर्ष भौतिक स्तर पर होते आये हैं। एक दूसरे प्रकार का सघर्ष मनुष्य आध्यात्मिक स्तर पर भी करता आया है। यह सघर्ष अपने मन का उन्नयन करने अपने शुद्ध स्वरूप को पहचानने और अपने को विश्व की केन्द्रीय चेतना (ब्रह्म) से एकाकार करने के लिए किया जाता रहा है। ये दोनों ही स्तरो पर किये जानेवाले सघर्ष एक दूसरे के पूरक रहे हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत मनुष्यो ने (सत महात्मा आदि) सामाजिक मर्यादा एव नैतिक मूल्यो के लिए भी अधिक व्यापक सार्थक और प्रभावी सघर्ष किये हैं।

जिस समय तुलसीदास का आविर्भाव हुआ, सघर्ष के दोनो स्तरो पर विघटन, अनास्था और अवमूल्यन की स्थिति थी। आध्यात्मिक सघर्ष के क्षेत्र मे, प्रवचना, अहकार आडम्बर और पाखण्ड का बोलबाला था। अनेक मत और सम्प्रदाय प्रचलित थे। उनकी दृष्टि सकीर्ण थी। अध्यात्म साधना का क्षेत्र वचको से भर गया था। भौतिक जीवन व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गयी थी। वर्ण और आश्रम दोनो की मर्यादाए टूट गयी थी। सारा समाज अनेक जातियो उपजातियो में बट गया था। समाज की जीवनी शक्ति का ह्रास हो गया था। व्यक्ति के लिए निरन्तर टूटते रहने के अतिरिक्त कोई चारा नही था। तुलसीदास ने रामचरितमानस के आरम्भ मे उत्तरकाण्ड के कलियुग प्रसग मे और कवितावली के उत्तरकाण्ड में तत्कालीन विघटन और मूल्यहीनता का यथार्थ चित्र अकित किया है।

आज का जीवन सघर्ष भी लगभग उसी कोटि का है जिस कोटि का तुलसी

कलियुग-वर्णन के प्रसंग में तुलसीदास ने निश्चित रूप से अपने समय की सामाजिक स्थिति एवं संघर्ष को ही प्रकट किया है—

लोभ की प्रधानता

भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।

शिक्षाहीनता

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा।

अव्यवस्था एवं विशृंखलता—

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोई नहिं मान निगम अनुसासन॥

आर्थिक विपन्नता—

कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥

उच्चवर्ग में दुराचार और पाखंड की वृद्धि—

धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥

कवितावली के उत्तरकाण्ड में भी तुलसीदास ने अपने युग जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। उस समय भी बेरोजगारी ऐसी ही थी जैसी आज है। देखिए—

खेती न किसान को भिखारी न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी।

तात्पर्य यह कि आज के जीवन संघर्ष की छाया तुलसी के आविर्भाव काल में भी विद्यमान थी। तुलसी ने 'रामचरितमानस' तथा अन्य रचनाओं के माध्यम से सभी प्रकार की वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने मत का उद्घोष किया। अब देखना यह है कि उनका मत क्या है और आज के जीवन में वह कहाँ तक समाधान के रूप में स्वीकार्य हो सकता है?

केन्द्रीय आस्था : राम में विश्वास

तुलसी की जीवनसाधना की चरम उपलब्धि राम हैं। राम ही उनके जीवनाधार हैं। सारे संसार को वे राममय मानते हैं। जीवन की प्रत्येक विषम परिस्थिति में वे राम का ही आश्रय लेते हैं। राम के बलपर वे कलियुग के

समस्त विरोधो एव अनीतियो को चुनौती देते हैं। वे राम से ही याचना करते हैं। वे ससार के सारे सम्बन्धो को राम के नाते ही स्वीकारते हैं। दोहावली मे राम के प्रति अखण्ड विश्वास व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्बान।
ज्ञानवंत अपि सो नर, पसु बिनु पूँछ बिषान॥
जरउ सो सपति, सदन, सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ॥
पुन्य, पाप, जस, अजस के, भावी भाजन भूरि।
सकट तुलसीदास को, राम करहिंगे दूर॥

तुलसी की सारी साधना इस लक्ष्य को केन्द्र मे रखकर आगे बढी है कि वे राम के हो जाएँ और राम को अपना मान लें।

सबै कहावत राम क, सबहि राम की आस।
राम कहैं जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास॥

राम के प्रति इस अखड आस्था का रहस्य क्या है ? वस्तुत 'राम' भारतीय मनीषा के चिन्तन की चरम उपलब्धि हैं। वह एक ऐसा 'तत्त्व' है जिससे ऊची धारणा मनुष्य की बौद्धिक एव आध्यात्मिक चेतना की सीमा के बाहर की बात है। राम से ऊँची सत्य की धारणा नहीं हो सकती। शुभ की चरम कल्पना भी राम हैं। सौन्दर्य का चरम रूप भी राम हैं। जिसके जीवन मे 'राम' आ जाता है, वह सत्यनिष्ठ हो जाता है वह सारे संसार की कल्याण कामना म भर उठता है, उसकी वाणी, विचार और कार्य सब कुछ सुन्दर हो जाता है। राममय होकर हम सारे विकारो से परे हो जाते हैं। राम में आस्था जीवन के सर्वोच्च मूल्यों में आस्था का ही नामान्तर है। राम परम तत्त्व है। राम ज्ञानियो का ज्ञेय, ध्यानियो का ध्येय, उपासकों का उपास्य और कर्मयोगियो की प्रेरणा का मूल स्रोत है। जीवन सघर्ष तो बराबर रहेगा। पहले भी था आज भी है और आगे भी चलेगा। किसी केन्द्रीय विश्वास से प्रेरित होकर उस में कूदने पर मनुष्य हार-जीत एव आशा निराशा के द्वन्द्व को मनुष्य झेल लेता है किन्तु आस्था विहीन होकर सघर्ष करता हुआ व्यक्ति टूट जाता है, बिखर जाता है। इसीलिए आज के जीवन सघर्ष मे भी किसी आस्था-बिन्दु के प्रति अर्पित होना श्रेयस्कर होगा।

सत्यनिष्ठा

जीवन के सघर्षों को झेलने और जीवन को सार्थक परिणति देने के लिये

सत्यनिष्ठ होना आवश्यक है । रामकथा का प्रत्येक पात्र सत्यनिष्ठ है । राम तो सत्यसंध (सत्यप्रतिज्ञ) हैं ही । गुरु वशिष्ठ के शब्दों में—

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू । राम जनम जग मंगल हेतू ॥

महाराज का दशरथ महत्त्व भी इसीलिए है कि वे 'सत्य' को सर्वोपरि 'धर्म' मानते थे—

तुलसी जान्यो दसरथहिं धरमु न सत्य समान ।
राम तजे जेहि लागि, बिनु राम परिहरे प्रान ॥

भरत के चरित्र की महिमा सर्वविदित है । वे सत्य के उपासक थे । जिस 'सत्य' की रक्षा के लिए राम वनवास कर रहे थे उसी सत्य की रक्षा के लिए भरत नंदि ग्राम में पर्णकुटी बनाकर निवास कर रहे थे ।

कहत सुनत सति भाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ॥

आज हमारे जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि हम 'झूठ' को व्यावहारिक सफलता का सूत्र मान बैठे हैं ।

मर्यादाप्रियता—व्यावहारिक जगत् विविध नामरूपात्मक पदार्थों का पुंज है—जहाँ अनेक प्रकार के जीव जन्तु निवास करते हैं, अनेक स्तरों पर जीनेवाले लोग हैं । जहाँ अनेक प्रकार की सीमाओं में मनुष्य बंटा हुआ है, वहाँ जीवन की सार्थकता इसी में है कि सब लोग एक-दूसरे की मर्यादा का ध्यान रखें । व्यावहारिक स्तर पर सबको एक या समान कर देने का स्वप्न अभी विश्व के किसी भूखण्ड में साकार नहीं हो सका है । ऐसी स्थिति में सबको मर्यादा का ध्यान रखकर सह अस्तित्व के सिद्धान्त को वरीयता देना उचित होगा । तुलसी का मर्यादावाद ही आज सह-अस्तित्व के रूप में प्रचारित हो रहा है । तुलसी द्वारा चित्रित आदर्श समाज में राजा प्रजा ऊंच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री पुरुष, सभ्य-असभ्य जड़ चेतन सभी अपनी मर्यादा के भीतर अनुशासित हैं । जिसने मर्यादा भंग की है उसी का मान मर्दन हुआ है । राम राज्य की मर्यादानिष्ठ समाज व्यवस्था का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय सोक न रोग ॥

× × ×

लता विटप मांगे मधु चवहीं । मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥

× × ×

सरिता सकल बहहिं बर बारी । सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥
सागर निज मरजादा रहहीं । डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ॥

विधु महि पुर मयूखन्हि, रवि तपि जेतनहि काज ।
माँगे वारिद देहि जल रामचन्द्र के राज ॥

जब प्रकृति अपने स्वभाव में स्थित है तो मनुष्य का मर्यादित न होना असंभव है । 'मर्यादा' अपने स्वभाव में स्थित होना ही है । आज हम इतने व्यग्र, आकुल, त्रस्त और उद्विग्न हैं कि सीमा और स्वभाव के सम्बन्ध में सोचना ही नहीं चाहते, आचरण तो दूर की बात है । तुलसी का मर्यादावाद आज के जीवन संघर्ष में भी सार्थक समाधान दे सकता है ।

धर्मशीलता—तुलसी ने वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर धर्म को सर्वोपरि महत्व दिया है । तुलसी की धर्म चेतना सर्वव्यापी और शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित है । रावण जैसे दुर्घर्ष शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए भगवान् राम के जिस धर्म रथ का वर्णन किया गया है, उसके संयोजक तत्त्वों पर ध्यान देना आवश्यक है । शौर्य और धैर्य धर्मरथ के पहिये हैं । सत्य और शील उसकी ध्वजा और पताका हैं । बल विवेक, दम (इन्द्रियों का वश में होना) और परोपकार उसके चार घोड़े हैं । ये घोड़े क्षमा कृपा और समता की रज्जुओं से धर्मरथ से जुड़े हुए हैं । ईश्वर का भजन ही धर्म रथ का चतुर सारथी है । वैराग्य ढाल और संतोष कृपाण है । दान परशु और बुद्धि ही प्रचण्ड शक्ति है । विज्ञान ही धनुष है । निर्मल और स्थिर मन ही तरकस है । समता, यम, नियम आदि उस पर सज्जित अनेक प्रकार के बाण हैं । ब्राह्मण और गुरु के चरणों में पूज्य भाव रखना ही अजेय कवच है । इस प्रकार श्रेष्ठ मानवीय गुणों तथा शाश्वत जीवन-मूल्यों के श्रेष्ठ तत्त्वों से उस धर्मरथ की रचना हुई है, जिस पर आरूढ होकर राम रावण जैसे लोकपीडक और प्रचण्ड शत्रु का संहार करने में समर्थ होते हैं । धर्मारूढ होने से ही राम विजयी होते हैं और धर्म रहित होने के कारण ही रावण पराजित होता है । तुलसी ने समग्र रामकथा में एक ही बात पर बल दिया है कि धर्माचरण सभी प्रकार से कल्याणकर है । भरत के चरित्र की महिमा का उद्घाटन करते हुए तुलसी ने बार बार उन्हें सभी प्रकार के धर्मों की धुरी कहा है ।

होत न भूतल भाउ भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥

तुलसी की कृतियों में व्यक्ति परिवार समाज, प्रजा, सभी के धर्म पर प्रकाश डाला गया है । यह धर्म भाव मिथ्याडम्बर नहीं विवेक पुष्ट है । आज की यथार्थवादी जीवनदृष्टि भी सहसा इसका विरोध नहीं कर सकती । इसकी व्यावहारिकता और ग्राह्यता के संदर्भ में मतभेद हो सकता है किन्तु इसकी धारणा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । आज के व्यापक भ्रष्टाचार को

धर्म भाव के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। धर्म जीवन की बहुत बडी प्रेरणा है। तुलसी ने अपनी कृतियो में इसके मम को स्पष्ट करके मानवता का सच्चा पथ प्रदशन किया है।

लोक व्यवहार एव नीतिमत्ता

किसी भी युग म जीवन को सुचारु रूप से सचालित करने के लिये 'नीतिमत्ता' एव लोक व्यवहार का पूण ज्ञान आपश्यक है। इसके अभाव म ऊँचे-स-ऊँचा आदश भी आचरण मे नही आ पाता। तुलसी की कृतियो मे नीतिमत्ता एव व्यवहार ज्ञान के अनेक सूत्र लक्षित होते हैं। इन सूत्रो को दो प्रकार से उपलब्ध किया जा सकता है। एक तो रामकथा के पात्रो क आचरण से और दूसरे तुलसीदास की स्फुट उक्तियो से। तुलसी की कुछ प्रेरक उक्तियाँ उद्धृत हैं

ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडबना, कीन्ह न यहि ससार।।
सहवासी कायो गिलहिं पुरजन पाल प्रबीन।
कालक्षेप केहि मिलि करहिं, तुलसी खग मृग मीन।।
मृगनयनी के नयनसर को अस लाग न जाहि।
अति ऊँचे भूधरन पर, भुजगन को प्रस्थान।।
× × ×
तुलसी अति नीचे सुखद, अन्न ऊख औ पान।।
कोउ विश्राम कि पाव तात सहज सतोष बिनु ?
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिय।।
न्दिये पीठि पाछे लगे, सनमुख होत पराय।
तुलसी सपति छाह-ज्यो, लखि दिन बैठि गवाय।।
बचन वेप ते जे बनै, ते बिगरैं परिनाम।
तुलसी जे निज ते बनैं, बनी बनाई राम।।
माखी, काक, उलूक, बक, दादुर से भए लोग।
भल ते सुक पिक मोर से, कोउ न प्रेम पथ जोग।।
मिथ्या माहुर सज्जनहिं, खलहिं गरल सम साँच।
तुलसी छुवत पराइ ज्यो, पारद पावक आच।।

तुलसी की कृतियों के आधार पर लोक-व्यवहार एव नीति बोधक सूत्रो का एक कोप बनाया जा सकता है। ये सूत्र आज भी जीवन सघप में हमारी सहा-

यता कर सकते हैं। इनमें मानव जीवन के अनुभव का सार तत्व एकत्र किया गया है। अनुभव से प्राप्त सत्य ही यथार्थ है। अत इन अनुभूत सूत्रों की उपादेयता आज भी निर्विवाद है।

जहा तक राम कथा के पात्रो की नीतिज्ञता का प्रश्न है वह पद पद पर लक्षित की जा सकती है। राम, भरत, वशिष्ठ, हनुमान, जामवत, विभीषण सभी नीतिज्ञ हैं। इनके कथन एव आचरण दोनो से ही हम बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। राम कथा के अतगत आने वाले वे स्थल जहाँ इन नीतिज्ञो के सवादो की योजना की गयी है, इस दृष्टि से विशेष उपयोगी हैं। चित्रकूट की सभा में लोक-व्यवहार एव नीतिमत्ता के श्रेष्ठ उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के अन्य अवसर भी हैं। जहाँ कही जीवन की विषम परिस्थिति के बीच से पात्रो को गुजरना पडा है वहाँ उन्होंने बडी सूक्ष्म बूझ और नीतिमत्ता का परिचय दिया है। आज के जीवन सघर्ष म भी हम इन स्थितियो मे मानस के पात्रो द्वारा लिये गये निर्णयो से लाभ उठा सकते हैं।

सतुलित जीवन-दृष्टि

राम चरित मानस मे सतुलित जीवन दृष्टि पर विशेष बल दिया गया है। तुलसी के पूर्व धर्म साधना एव साहित्य रचना दोनो क्षेत्रो मे सतुलित दृष्टि का अभाव लक्षित होता है। साधना के क्षेत्र म ज्ञान-साधना, कर्म-साधना, योग-साधना सभी का विकास अलग-अलग हुआ था। सभी की अपनी सीमाएँ बन गयी थीं। ज्ञान साधना ने साधको के बीच अहकार एव दभ का विकास किया। कर्म-साधना मिथ्याडम्बर की ओर ले गयी थी। योग साधना प्रदर्शन की वस्तु बन गयी थी। स्वय उपासना के क्षेत्रों म भी अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गयी थीं। तुलसी ने इन सभी का सामजस्य करते हुए श्रुति सम्मत एव विरति विवेक-युक्त हरि भक्त पथ पर बल दिया। उनकी जीवन दृष्टि एक पूर्ण जीवन पद्धति का निर्माण करने म समर्थ है। उसमे ज्ञान है, किन्तु अहकार नही, श्रद्धा है, किन्तु अध विश्वास नही, योग है, किन्तु प्रदर्शन नही, कर्म है, किन्तु आडम्बर नही। इस प्रकार उन्होंने सारी विकृतियो स अलग शुद्ध एव पूर्ण साधना पथ का निर्माण किया है। आज के जीवन सघर्ष में यह जीवन दृष्टि की पूर्णता हमारे लिये अत्यन्त श्रेयस्कर हो सकती है।

उपर्युक्त प्रमुख बातों के अतिरिक्त स्पष्टवादिता, तेजस्विता, आत्मविश्वास, दृढ़ता, आत्मालोचन, सामान्य जन के प्रति स्नेह, अनासक्ति आदि अनेक ऐसे तत्व हैं, जो तुलसी की विचारधारा एव जीवन दृष्टि के अभिन्न अग हैं। किसी

भी युग के संघर्षशील मानव के लिए इन गुणों की आवश्यकता पड़ सकती है। इनके अभाव में न हम अच्छे नेता बन सकते हैं, न अच्छे अनुयायी।

चेतना का परिष्कार

आध्यात्मिक स्तर पर किया जाने वाला संघर्ष मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना के परिष्कार का मूल आधार रहा है। आज की वैज्ञानिक एवं यांत्रिक सभ्यता से ऊबा हुआ मनुष्य अध्यात्म के प्रति जिज्ञासु हो रहा है। विश्व के ऐसे राष्ट्र जहाँ वैभव की कमी नहीं है, किन्तु जो भौतिक सुख सुविधाओं से ऊब चुके हैं आज अध्यात्म तत्व के रहस्य को समझना चाहते हैं। ऐसा समझा जा रहा है कि आज के संघर्षशील मानव के लिये अध्यात्म ही एकमात्र विश्राम केन्द्र बन सकता है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे ऋषियों और धर्मसाधकों ने बहुत पहले इस रहस्य को समझ लिया था। अध्यात्म के स्तर पर चलने वाला संघर्ष चेतना का जड़ता से सूक्ष्मता का स्थूलता से और निम्नतर मनोभूमि का उच्चतर मनोभूमि से होने वाला संघर्ष है। तुलसीदास ने विनयपत्रिका में इस संघर्ष की सभी स्थितियों को व्यक्त किया है। दैन्य की सारी भूमिकाएँ इसी संघर्ष को स्पष्ट करती है। इस संघर्ष की समाप्ति उनके पूर्ण मनोन्नयन के साथ हो जाती है। इसकी पहचान मात्र इतनी ही है कि संघर्षशील साधक का मन प्रभु के चरणों में लीन हो जाता है। वह संसार से विमुख हो जाता है। उसका सारा कल्मष मिट जाता है। वह हानि-लाभ, सुख-दुःख, उभय स्थितियों में अविकृत रहकर समरसत्व प्राप्त कर लेता है। विनय पत्रिका में तुलसी ने कहा है—

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाव विषयनि लग्यौं, तेहि सहज नाथ सों नेह छाडि छल करिहै॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि लाभ दुख सुख सबै सम चित हित अनहित, कलि कुचाल परिहरिहै॥

मनका यह उन्नयन ही तुलसी का लक्ष्य नहीं था। वे मनके इस परिष्कार के बाद उससे प्रभु के प्रति पूर्ण रागात्मक समर्पण भी चाहते थे। वे आगे कहते हैं।

प्रभु गुन सुनि मन हरषिहै नीर नयननि ढरिहै।
तुलसीदास भयो राम को विस्वास प्रेम लखि आनन्द उमगि उर भरिहै।

राम के प्रति यह पूर्ण समर्पण ही तुलसीदास के आध्यात्मिक संघर्ष की चरम स्थिति है। मनका उन्नयन चेतना का परिष्कार और समरसत्व प्राप्त करने के

बाद किसी उच्चतम मूल्य क प्रति समपण को आज भी आध्यात्मिक स्तर के सघर्ष की चरम उपलब्धि माना जा सकता है।

तात्पय यह कि तुलसी ने जिन जीवनादर्शों का प्रतिपादन किया है, और जिन जीवन मूल्यों को अपने मत का मूलाधार माना है, वे आज भी हमे प्रेरणा और शक्ति द सकते हैं। तुलसी का मत गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर आज भी प्रासगिक है। अत एव बाह्य द्वन्द्व अथवा सघष जीवन की प्रक्रिया है, लक्ष्य नही। इस सघर्ष की अनिवार्यता स्वीकारी जा सकती है। इसक सातत्य की बात कही जा सकती है, किन्तु इसे जीवन की उपलब्धि या लक्ष्य नहीं माना जा सकता। श्रद्धा और विश्वास क बिना किसी सघष में विजय नही प्राप्त की जा सकती। वह श्रद्धा और विश्वास ही तुलसी का सम्बल था। उनके मत के मूल में, उनकी जीवनपद्धति के केन्द्र मे और उनक समस्त जीवन सघर्षों की प्रेरणा भूमि के रूप मे श्रद्धा और विश्वास को सर्वोपरिता को अस्वीकार नही किया जा सकता। श्रद्धा ही आनन्द की भूमिका तक ले जाती है। आज का सशयग्रस्त मानस भी अन्तिम निणय क लिये श्रद्धा और विश्वास का सहारा लेता है। उसे लेना पडता है। भले ही यह श्रद्धा किसी परोक्ष, पूण का अखण्ड, अनादि, अनन्त, सत्ता म न होकर कोटि-कोटि जना क प्रति हो इतिहास के प्रति हो या किसी व्यवस्था-विशेष के प्रति हो।



मामा प्रागदास के कुछ नवप्राप्त छंद

मामा प्रागदास[1] सखाभाव के रामोपासक थे। उनकी सख्यासक्ति विलक्षण थी। भक्तिशास्त्रों में निर्दिष्ट नर्म, प्रिय और सुहृद् भावों के कगार उसकी वेगवती धारा को बाँध रखने में समर्थ न हो सके। तिरहुत के लुप्तप्राय तीर्थस्थलों के उद्धारक, जनक-भावापन्न महात्मा सूरकिशोर से दीक्षा ग्रहण कर निमिवंशी कुमार के रूप में रघुवंशी रामचन्द्र से साले-बहनोई का सम्बन्ध जोड़ इन्होंने मिथिला अवध के पुराने नाते को अपने भावामृत से सींचकर फिर से हरा कर दिया। सम्बन्ध की पुष्टि के लिए ही ये यात्रा के अनेक कष्ट सहते हुये अयोध्या आये और कनक-भवन में अपनी दिव्य बहन का नित्य दर्शन करते हुए उसी के समीप एक नीम के पेड़ के नीचे कई वर्षों तक कठोर साधना की। 'रामलला के सरवा' होने से अयोध्यावासी इन्हें मामा कहते थे। इनके जीवन-काल में ही यह उपाधि इनके नाम के साथ जुड़ गई और ये सर्वत्र मामा प्रागदास के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

युगलप्रियाजी ने रसिकप्रकाश भक्तमाल में इनकी लोक यात्रा के विषय में केवल इतना लिखा है कि ये महात्मा सूरकिशोर के शिष्य थे और सखाभाव से सीताराम की उपासना करते थे। इनकी विरक्ति-भावना इतनी तीव्र थी कि लोक सपर्क की दूषित प्रवृत्तियों से बचते हुए ये आजीवन नीम के पेड़ के नीचे आसन जमाये रहे। लेटने के लिए एक चारपाई और पानी पीने के लिए एक

---

१ 'रामभक्ति में रसिक संप्रदाय' (पृ० ४०२-४०३) में इनका परिचय प्रयाग दास नाम से दिया गया है, किन्तु इधर इनकी जो रचनाएं प्राप्त हुई हैं, उनमें प्रागदास नाम आया है। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' में इनके नाम का यही रूप उल्लिखित है। लोक-व्यवहार में भी तीर्थराज प्रयाग को 'प्रागराज' अथवा 'परागराज' कहा जाता है। संभवत, इसीलिए मामा 'प्रयागदास' ने अपनी ठेठ रचनाओं में परागदास' छाप रखी है और साहित्यिक कृतियों में छंदानुरोध के कारण 'प्रागदास'।—ले०

करवा के अतिरिक्त इन्होंने कभी अपने पास कोई अन्य वस्तु रखी ही नहीं। (किसी रामायणी से) राम वनवास के प्रसंग में युगल राजकुमारों के सीता सहित नंगे पाँव वन जाने का वृत्तांत सुनकर इन्हें बड़ा दुःख हुआ। भावावेश में इन्होंने तीनों पथिकों के लिए जूते बनवाये और उन्हें सिर पर रखकर अपने अलौकिक सम्बन्धियों को ढूँढते हुए पंचवटी जा पहुँचे। वहाँ आराध्य ने साक्षात प्रकट होकर इनके द्वारा अर्पित जूते पहने।[1] वासुदेवदास ने पाद-टिप्पणी में छप्पय की टीका में इन प्रसंगों को स्पष्ट करते हुए कुछ नये तथ्य प्रस्तुत किये हैं। उनसे ज्ञात होता है कि एक बार प्रयाग में त्रिवेणी-तट पर निवास करते हुए इन्होंने कई शैवमतावलम्बियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर अपना शिष्य बनाया था।

'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' के लिए सामग्री संकलित करते समय इन पंक्तियों के लेखक को बहुत प्रयत्न करने पर भी, इनकी कोई लिखित रचना उपलब्ध न हो सकी थी। अयोध्या और मिथिला के संतों में मौलिक परंपरा से प्रचलित केवल चार छंद मिले थे। अतः उक्त ग्रंथ में इनकी काव्य-शैली के उदाहरणस्वरूप उन्हें ही उद्धृत कर संतोष करना पड़ा था। इनकी भाषा ठेठ अवधी है। प्रागदास की काव्य प्रतिभा के विकासात्मक अध्ययन के लिए वे चारों छंद नीचे दिये जाते हैं—

नीम के नीचे खाट पड़ी है खाट के नीचे करवा।
'परागदास' अलबेला सोवै रामलाल के सरवा॥

---

१ भाविक सुरकिशोर के प्रागदास साधक विशद।
प्रिय संबंध उदार सख्यपद निमि वसो हैं।
नीमतरे नवखाट बिछी करवा बिलसी हैं॥
तीव्र त्याग अनुराग अवधि पनहीं सिरधारी।
पंचवटी वन कुंजगली भेंटे पिय प्यारी॥
बचन भावयुत कहि सरस पहिराई पनही सुखद।
भाविक सुरकिशोर के प्रागदास साधक विशद॥
—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० २२।

२ रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ २३।

मुडियो ने परपच रचा है हमें काम का मेलो म ।
'परागदास रघुबर को लैके पडे रहैंगे ढेला म ॥'[1]
'परागदास' जो पीपर होते राघौ होते भुतवा र ।
आठ पहर छाती पर रहते वै दसरथ के पुतवा रे ॥
घुनि घुनि केसवा कहैं महेसवा पार न पावै ससवा ।
'परागदास पहलदवा के कारन रघवा होइगे बघवा ॥

मेरी यह धारणा थी कि प्रागदासजी की अन्य कृतियाँ इनके फक्कडपन और भ्रमणशीलता के कारण नष्ट हो गई होगी । किंतु इधर अकस्मात् निम्बाचार्य रामसखे की रचनाओं के प्राचीन हस्तलेखो म प्रागदास के तीन छद प्राप्त हो गये हैं, जिनमे दो सवैये हैं और एक पद । वे इस प्रकार हैं—

दामिनी सी सिय सग विराजति मोती हिए रग पाँनि छए हैं ।
हेम जनेऊ मनौं धनुइन्द्र को पीत पिछौरी के रूप जए हैं ॥

---

१ मामा प्रागदास मेलों को वैरागियों द्वारा भोली भाली जनता को ठगने के लिए रचा हुआ प्रपच कहते थे । इसलिए, अयोध्या मे जब कार्तिक पूर्णिमा तथा रामनवमी के अवसर पर लाखों की भीड होती थी, तो ये नगर छोडकर रामघाट के आगे सरयू नदी के कछार मे जाकर रहा करते थे । उस समय राम का एक चित्र इनके साथ रहता था । मेला समाप्त होने पर ये पुन अपने पुराने आसन पर नीम के पेड़ के नीचे चले जाते थे । —ले०

२ इन्हीं के साथ इनके गुरु सूरकिशोरजी का भी निम्नांकित छद मिला है

आसपास सहचरी नूपुर झनकार कर,
चपा कसी कली मानो फूली बेसमान की ।
सोंधे की लपट दपटें भरि भवरन की,
बीनादिक बजन लागे उघटि कलगान की ॥
गोखन झरोखन के परदा उघारि दीन्हे
ततत सुभाइ सखी कोटि सतभान की ।
मिटिगो अमगल भयो मगल 'किसोर सूर'
जगमगाइ उठयो महल जागी जब जानकी ॥

दैन कहैं मुक्तें अमीधार सो दीनन कौं बरसाइ दए हैं।
भावैं सदा 'प्रागदास' मयूर कौं रामलला घन स उनए हैं॥

न्याही छिताई ललाई लिए जहा जात निछावर मैन घन हैं।
कुडन लाल लसैं जनकें ढिग पीनें कपोल सुधा सने हैं॥
मोती विराजति नासिका में बरनौं कहा रूप के तंतु तने हैं।
सोहैं सदा 'प्रागदास' कौं भावत रामलला जू के नैन बने हैं॥

आछे प्यारे रामजी लला। तुम्हारे बदन पर अनत कला॥
मुख म बीरी नैना बिसाल। जित चितए चित करे निहाल॥
जहाँ पड भक्तन पे भीर। हरषत आवैं सिय रघुबीर॥
छोटी सी धनुय्या छाटी छोटी तीर। खेलन निकसे सरजू के तीर॥
'प्रागदास' चल सरजू तीर। बीच में मिलि गए सिया रघुबीर॥

इन तीनों छन्दों म 'प्रागदास' की छाप और अभिव्यक्त भाव मामा प्रागदास की पूर्वप्राप्त रचनाओं से सर्वथा अभिन्न हैं। ऊपर स देखने मे यद्यपि दोनो कवियों की भाषा शैली में कुछ अतर दिखाई पड़ता है, किंतु मामाजी की गलदश्रु भावुकता और पांडित्य के प्रकाश में उनका समीक्षात्मक अनुशीलन करने पर यह भ्रांति दूर हो जाती है। प्रस्तुत छन्दो मे उन्होंने अपने आराध्य 'रामलला' का स्मरण जितनी आत्मीयता तथा तन्मयता के साथ किया है, उसमे उनकी प्रगाढ सख्यासक्ति स्पष्ट झलकती है। रहा अभिव्यजना प्रणाली एव भाषा-विषयक अतर। इस सम्बन्ध म अपना यह विचार है कि प्रागदास की जो रचनाएँ पहले मौखिक परम्परा स सकलित की गई थीं, व समय-समय पर मस्ती म कही गई उनकी उक्तियाँ-मात्र हैं, जो अपनी विचित्रता के कारण इतनी आकर्षक हो गई थीं, कि सत-समाज उन्हें श्रुति-परपरा मे सुरक्षित किये रहा। उनकी ठेठ अवधी अयोध्या के दीर्घ निवास का प्रसाद है। इनके अतिरिक्त उन्होंने तत्कालीन सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य-भाषा ब्रज म भी सरस रचनाएँ की थीं, किंतु उनका अधिकाश प्रागदास की यायावरी वृत्ति क कारण तथा गद्दीधारी सत न होने स नष्ट हो गया। प्रतीत होता है कि सजातीय सख्योपासकों ने उनकी कृतियो को सुरक्षित रखने का प्रयास किया था। अट्ठारहवीं सती के प्रसिद्ध सख्याचार्य रामसखे क हस्तलेखों के साथ प्रागदास के उपर्युक्त छन्दों की प्राप्ति इस धारणा को पुष्टि करती है। हो सकता है, खोज करने पर इसी स्रोत से उनकी कुछ और कृतियाँ प्रकाश मे आयें।

शिवसिंह सेंगर और ग्रियर्सन ने इनके गुरु मुरलीकिशोर का समय सन्

१७०४ ई० के आसपास निश्चित किया है।[1] इस आधार पर इन्हें अट्ठारहवीं शती के प्रथम चरण में विद्यमान मानना असंगत न होगा।

१ इन दोनों विद्वानों में सर्वप्रथम सेंगरजी ने इनके एक कवित्त में, जो 'सरोज' में उद्धृत है, 'किशोर सूर' छाप देखकर भ्रमवश उसे ही इनके नाम का शुद्ध रूप मान लिया था। सरोज के दूसरे छंद में दी गई इनकी वास्तविक संज्ञा 'सूरकिशोर' की ओर उनका ध्यान नहीं गया। ग्रियर्सन साहब ने इस विषय में सरोज का ही अनुगमन किया है। देखिए, शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण) पृ० ३६४ तथा 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, (हिंदी अनु०) पृष्ठ २१४।

बाबा लक्ष्मीनारायणदास पौहारी

गोरखपुर देवरिया जनपद भगवान बुद्ध की निर्वाण भूमि और गोरखनाथ की साधना भूमि के रूप मे विख्यात है। भारतीय धर्म साधना के इतिहास पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह भूभाग प्राचीन काल मे वेदबाह्य साधनाओ का प्रधान केन्द्र रहा है किन्तु मध्यकाल में यह भागवत धर्म का मुख्य गढ बन गया। सरयूपारीण ब्राह्मणो की आदिभूमि के रूप मे इसकी प्रतिष्ठा इसका सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है। इसके फलस्वरूप वैदिक कर्मकाड, उपासना तथा ज्ञान के प्रसार का द्वार खुल गया और संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का व्यापक रूप से प्रचार हुआ। अयोध्या से निकट होने के कारण रामोपासना यहाँ के लोकधर्म के रूप मे चिरकाल से प्रतिष्ठित थी किन्तु इसके सांप्रदायिक सगठन का श्रेय महात्मा लक्ष्मीनारायण दास पौहारी को है। पौहारी जी अयोध्या के प्रसिद्ध रामभक्त बिन्दुकाचार्य महात्मा रामप्रसाद की परपरा मे उनकी चौथी पीढी में विराजमान महात्मा अवध प्रसाद जी के शिष्य थे। इनका प्रारंभिक नाम लक्ष्मी नारायण था किन्तु साधना काल मे अन्न त्याग कर सदैव दुग्धपान एव फलाहार वृत्ति से जीवन यापन करने के कारण ये पौहारी (पयहारी) नाम से प्रसिद्ध हुए।

पौहारीजी का जन्म देवरिया जिले म राप्ती नदी के तट पर स्थित महेन नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार म हुआ था। इनके पिता का नाम प० शिवराम पाण्डेय था। लक्ष्मीनारायण जी के घर के निकट ही महेन्द्रनाथ' महादेव का मन्दिर था। बाल्यावस्था में ही इनको उस विग्रह में श्रद्धा हो गयी और ये प्रायः दिन भर मन्दिर में ही शिव नाम का जप किया करते थे। बड़ होने पर पिता ने इनका विवाह कर दिया किन्तु गार्हस्थ्याश्रम मे उनकी वृत्ति नही रमी और ये उत्तरोत्तर विरागोन्मुख होते गये।

एकबार की बात है, चन्द्रग्रहण क अवसर पर ये अयोध्या गये। वहाँ नारायण नामक किसी महात्मा से इनकी भेंट हो गई। उनके सम्पर्क से इनके हृदय म रामभक्ति का बीज वपन हुआ। वहाँ से घर आने पर इनकी विरक्ति

भावना और भी उद्दीप्त हो गयी। फिर तो ये माता-पिता, भाई-बन्धु, वित्त वनिता—सबसे नाता तोड़कर 'महेंद्रनाथ' के मन्दिर में ही स्थायी रूप से निवास करते हुए भजन करने लगे। इस अवधि में ये फलाहार करते थे और कभी कभी निर्जल व्रत भी रखते थे। इस प्रकार कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि एक दिन इन्हें आकाशवाणी हुई कि 'हे प्रिय ! तुम्हारे मन में सियाराम के प्रति अगाध श्रद्धा है अतएव तुम सप्रेम रामस्मरण ही करो।" भगवान शंकर की यह आज्ञा पाकर लक्ष्मीनारायण ने वन की राह ली। कहते हैं कि वहां एक दिन ये गायत्री मंत्र का जप कर रहे थे। इतने में एक हाथी आया। उसने इनको सूंड से उठा कर अपने कंधे पर चढ़ा लिया। वह इन्हें लेकर पहले पैकाली गया। वहाँ से बैकुंठपुर और बड़हलगंज होता हुआ उसने पुनः इनको पैकोला लाकर उतार दिया तथा स्वयं लुप्त हो गया। पयहारी जी की परंपरा के रामभक्तों का विश्वास है कि हाथी रूप में स्वयं श्री कृष्णदास जी पयहारी पधारे थे। इसी घटना के आधार पर सम्प्रदाय में उक्त तीनों स्थान पूज्य माने जाते हैं और वहाँ इस शाखा की गद्दियाँ स्थापित हैं।

इस घटना के उपरांत लक्ष्मीनारायण जी गुरु दीक्षा के लिए अयोध्या गये। वहाँ बन्ना स्थान के तत्कालीन महंत महात्मा अवध प्रसाद से दीक्षा प्रग्रहण की। अंतःसाक्ष्य से भी अवध प्रसाद जी के इनके गुरु होने की बात पुष्ट होती है—

सतगुरु हौं मैं अधम भिखारी।
कामक्रोध मोहि अधिक सतावत लोभ मोह अति भारी॥
ताते आज कियो शरणागत सुनि लीजै असुरारी॥
अवध प्रसाद अवध के वासी देखो नयन पसारी॥
लक्ष्मीनारायण दास तुम्हारो आरत बचन उचारी॥[1]

दीक्षोपरांत ये कुछ समय तक अयोध्या में ही रह कर गुरु सेवा और साधु संगति में लीन रहते हुए साधना करते रहे। इनके एक पद से यह प्रकट होता है कि इन्हें ज्ञान भी यहीं प्राप्त हुआ था—

हौं मैं हरि चरनन की दासी।
ता दिन ते हरि सरनन आये मेटल सकल उदासी।
गुरु की सेवा साधु की संगति मिलि गय मोहिं अविनासी॥
तब ते काम क्रोध भय छूटेउ होइ गयेउ सुख रासी।
ज्ञान विराग आगे बहु बाढ़त भक्ति भई हिय बासी॥

---

१ श्रीभक्ति प्रकाशिका।

होइ अनुराग परम पद पावत भये अवध के वासी ।
तन ते लोम भयो नहि नृप को जानेउ निजपुर बासी ।।
प्रभु कर कमल सीस पद परसत जम-मुख लागत मासी।
अस सयोग पूर करि रघुपति सीय लखन सग वासी ।।
लक्ष्मी नारायण दास तुम्हारो छूटि गइल जग लासी ।।

इनकी साधना से पूर्णत सतुष्ट होकर महात्मा अवध प्रसाद जी ने इन्ह रामभक्ति का प्रचार करने की आज्ञा दी । गुरु आज्ञा पाकर ये भवसागर मे डूबते हुए प्राणियो के उद्धारार्थ निकल पडे । विचरण करते हुए ये देवरिया जिले मे पैकोली के समीपस्थ गुर्रा नदी के तट पर आये और वही 'ठकुरही' के वन्य प्रदेश मे छ वर्ष तक घोर तपस्या करत रहे । वहाँ से सवत् १८६० मे ये पैकोली आये और एक बरगद-वृक्ष के नीचे कुटी बनाकर रहने लगे । पैकोली के निवास काल मे पैहारी जी की कई सिद्धियो की किंवदतियाँ प्रचलित हैं । अनेक औघडो डाकिनी-शाकिनी आदि पर विजय प्राप्त करने की कहावते आज भी उक्त भूभाग म श्रद्धा के साथ कही और सुनी जाती हैं ।

सवत् १८७७ म पाहारी जो ने सतो की जमात के साथ चित्रकूट की यात्रा की थी । वहाँ कुछ दिन रहकर जानकी कुड, कामदगिरि आदि स्थानो का दशन करके पुन पैकोली लौट आये । इससे अतिरिक्त हरद्वार, ऋषीकेश, आदि स्थानो पर भी इ होने कुछ समय तक निवास किया था ।

कहा जाता है कि एक बार ये अपने भक्तो के साथ धर्म प्रचारार्थ भ्रमण करते हुए नेपाल के तराई अचल मे पहुँच गये । वहाँ इन्ह एक महाजन मिला । उसके एकमात्र पुत्र का सप काटने के कारण दहात हो गया था । उसने बडे ही आतभाव से पौहारी जी स सब समाचार कह सुनाया और शव को लाकर उनके सम्मुख रख दिया । पहले तो इन्होने उसे भक्ति और ज्ञान का उपदेश दिया किन्तु उसने एक न सुनी । वह पुन पुन मृत बालक को प्राणदान देने की प्रार्थना करता रहा । अत म इन्होने उसकी स्थिति पर दया करके हरि-स्मरण करके पाँच बार मत्र पढा । दुर्भाग्य से मत्र का कोई प्रभाव नही पडा । तब पौहारी जी ने दुखित होकर यह पद गाया—

प्रभु तुम बदी छोर कहायो ।
वेद पुराण सत अस गावत शिव सारद मन भायो ।
जह जहँ गाढ परत जीवन पर तह तह बार न लायो ।
गज के काज तुरत उठि धाये द्रोपदी चीर बढायो ।
पाँचो पाडव लक्ष्यागृह मे तहाँ मणि खभ को खोलि जियायो।

नामदेव के भवन छवायो तिर्लोचन दरसायो।
खभ फारि हरनाकुस मारे जन प्रह्लाद बचायो।
अम्बरीष व्रत राखि लियो हैं दुर्वासा दुख पायो।
चक्र सुदर्शन जारन लाग्यो त्राहि त्राहि गोहरायो॥
एकबार अजामिल तुव जन नारायण सुधि पायो।
जम क दूतनि मारि निकार्‌यो निजपुर वेगि बोलायो॥
कीकलऊ मह वृद्ध भयो हो की, चक्र चोरायो।
की कहुँ राग्सस बाँहि लियो है ताते सुधि बिसरायो।

भक्त के इस कातरतापूर्ण पद की ध्वनि करुणासिंधु भगवान के कानो मे पडी और उनकी कृपा स महाजन का लडका उठकर बैठ गया। तब पौहारी जी ने इन पक्तियो को रच कर पद को पूरा किया—

गावत गावत पार न पावत निसिदिन बि" छोडायो।
'लक्ष्मीनारायण जन यहि अवसर प्रभुता देखि परम सुख पायो।

पर्यटन समाप्त होने पर यह पैकोली लौट आये और वही आजीवन निवास करते रहे। इनका साकेत वास आषाढ शुक्ला तृतीया, सोमवार सवत् १६०८ को हुआ।

पौहारीजी की गद्दियाँ अब भी पैकोली, बैकुठपुर और बडहलगज में चल रही हैं। इनमे व्रतोत्सव मनाने की जो परिपाटी पौहारीजी ने चलायी थी वह अब भी उसी रूप मे प्रचलित है। आज भी पैकोली मे रामजन्म तथा कृष्णाष्टमी बडहल गज मे रथयात्रा और बैकुठपुर में राम विवाह का उत्सव बडे धूम से मनाया जाता है। पौहारी जी के उत्तराधिकारी अपने पूर्वाचार्यों की भाँति आज भी विरक्तिपूर्वक कालयापन करते हुए रामभक्ति का प्रचार कर रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखपुर देवरिया जनपद के आध्यात्मिक इतिहास मे पौहारी जी का वही स्थान है जो मध्ययुगीन धर्मसाधना के इतिहास मे गलता गद्दी (राजस्थान) के प्रवर्तक श्री कृष्णदास पयहारी का था।

●●●

परिशिष्ट

परिशिष्ट

मीरावाई के रामभक्तिपरक पद

१ रामचरित

(क) प्रसग—लका पर राम की चढाई और उमसे भयभीत मन्दोदरी द्वारा रावण की भत्सना—

फीर गई राम दुआइ लका मे फीर गई राम दुआई रे ।
वेहत मदोदर सुन पीया रामण ऐमी कुबत चलाई रे ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल लपटाई रे ॥[1]

(ख) राम की अष्टयाम लीला—राम की शयनकक्ष मे जाने की तैयारी और सखियो द्वारा उनका शृङ्गार। निम्नलिखित पद शयन समय की आरती का है। शृगारी रामभक्ति की तत्सुखी शाखा में, प्रिया प्रियतम की विहार लीला का जालरध्रो से दर्शन और ध्यान ही साधक (सखी) का अभीष्ट होता है। मीराबाई उसी आनन्द (तत्सुखसुखित्व) को प्राप्त करने की आकाक्षा व्यक्त करती हुई कहती हैं—

मदिर पौढिये रघुराई ॥
कचन को महल कचन को दुलिया रेसम वरन बनाई ॥
फूलन सज फूलन के गिदवा फूलन लूँब लगाई ॥
चौवा चदन अगर कुमकुमा केसरि अग लपटाई ॥
सीताराम दोउ सग पोढे वलि जाय मीरा बाई ॥[2]

---

१ राजस्थान प्राच्य विद्या शोध सस्थान जोधपुर, हस्तलेख स० ६२९६ पत्रांक ६ ।

२ रा० प्रा० वि० शो० प्रतिष्ठान जोधपुर हस्तलेख स० १८८२ पत्र ६८ व
तुलनीय—पौढिऐ रसिक जानकि रमन ।
सवऋतु के भोग यामें महल अति मन हरन ॥
विविध रचना घनी जहँतहँ विधि निपुणता हरन ।
सेज रचना बनत कहि नहिं मनहुँ मनसिज भवन ॥
पिया प्यारी ताहि ऊपर केलि कर सुख सदन ।
यहै आसा अग्र सखियन सुफल कर ललि ललन ॥
— अग्रदास पदावली, पद स० १०

२ राम की भक्तवत्सलता—

राम जी बिना कूंण हरे म्हारी भीर ।
ऐक समै गजराज उबारयो काम्या जहर ज भीर ।
ऐक समै प्रह्लाद उबारयो धारियो नृसिंह सरीर ॥
ऐक समै द्रोपनि पत राग्नी खैंचत बाढ्यो चीर ॥
रांका भी त्यारा रामजी बांका भी त्यारा, त्यारा है कानू कीर ।
मीरां के प्रभु हरि अवनासी वै साहि गहर गभीर ॥

३ आत्म प्रबोधन—

अपराधी तैं राम न जायो रे ।
हारा सो तन छाडि कै रस सो बिस छायौं रे ॥
जठरागिनि ते काढ़ि कै बाहर लै आ यो रे ।
उहाँ ते आयो कोल करि इहाँ बिसरायो रे ॥
मात पिता सुत बधवा इन सौं मन मायो रे ।
मीराँ प्रभु गिरधर बिना कोउ लख न समा योरे ॥

४ राम शरणागति—

रघुवर माघो री मुरत लोल वरन घनश्याम ।
सीयावर माघो री मूरत ।
परण कर तारत सबको दाता मनसा री पूरन काम ॥
जनक सुतावर लक्ष्मण राजींद क्रीट मुकुट अभिराम ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल निज धाम ॥

५ कर्कर्य निष्ठा—

राखो राम हजूरी बाला हममे बडो सबूरी ।
अयोध्यापुर में चाव त्याने तो राखो राम हजूरी ॥
हे जी ! सर हू सेरी बजरी दीज्या नातर दीज्यो कूरी ।
पचा अमृत कर कर मनु मान् हमने घडी सबूरी ॥
हे जी ! वोढनको कारी कामरी दीजे नातर दीज्यो कूरी ।
मेरा जीव सो लागि धरत न मेले कमल की दूरी ॥
हे जी ! चारो त्यासू पूलो त्यासूं-मैंस दुवासो मूरी ।
जीमन जूठन करि करि मेनू झारी लेर हजूरी ॥

७. रूपासक्ति—

रघुवर मोंहि परनाई अमां मोरी।
सुन्दर सुघड सुजान सांवरो जनम-जनम भरतार ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै गल मोतीयन की माल।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर चरण कंवल चित लाइ ॥[1]

● ● ●

माई मोरे नयन बस रघुवीर।
कर सर-चाप कुसुम सर लोचन ठाढे भए मन धीर ॥
ललित लवंग लता नागर लीला जब देखो तब रणधीर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बरसत कंचन नीर ॥[2]

८. मधुर मिलन—

तवै नावे तीयाणो वाणो रामायो झीवैडो हारे
मुगतै रो माल सोहीयो ॥
मारे सीले सतोकै चुदडे वाणे रमायो ही सालुडा री कोरै।
सन्तेल्यां हे घाणो पेरियो चोते चोतने चुन्नेलो वाणो ॥
रामायो हे चालेया जी रे लुवै झुवै बाजु बदि बाणा
रामायो है बाजुबादे री लुबै ॥
महल्या हे मैं तो कारणी रो काजाले सारियो सील पैला लाइ।
ईतरी गणो जी पैहारै नीकैल्ली रामाया री सेजै ॥
बाई मीरा ने लाल गिरधारे मील्या पुरो पुरी
य मनैडा री आसा ॥[3]

● ● ●

ग्रु तो मेरा राम मील्या दालजानी, मेर उपर मेरबानी
दस देस ओर मुलक मुलक म पाई नही तरी निसानी ॥
जगकी आस बास सब तज दी, लाव होवो चाहै हानी।

---

१ रा० शो० सं० चौपासनी (जोधपुर) हस्तलेख सं० २८८४।
२ मीरा माधुरी—परशुराम चतुर्वेदी, पद २५६।
३ रा० शो० सं० (जोधपुर) हस्तलेख सं० ८३९६ से संकलित।

काए मेर तार्‌या जग मे तेरी सुरत मन मानो ॥
सुणीए साम काम जलदी कर कहा पत्री लघु छानी ।
बाई मीरा भणें साम स मु जाचक थु दानो ॥[१]

६ विरह निवेदन

कोई राम पिया घर लावै रे ।
तलफत प्राण दुखी अति मेरो जरती अगन बुझावै रे ॥
है कोई मीत हमारो ऐसो जाय सदेसो सुणावै रे ।
ब्रेह अगन भई अति आतुर जागत रैण बितावै रे ॥
तलप तलप तन तालाबेली सास कलप सम जावै रे ।
नीर बिना पछी किम जीवै बीछड़िया मर जावै रे ॥
अब तो किरपा कर आवो मनमाहन दरस बेगि देखावो रे ।
जन मीरा ब्रेहन अति व्याकुल मरतक आन जियावो रे ॥[२]

● ● ●

मोरे घर आज्यो राम पियारा ।
मैं निगुणी मे गुण नहि कोई मो मैं ओगण सारा ।
तन मन धन सब अरपण करसूं भजन करू मैं थारा ॥
बोहा गुणवंता साहिब मेरा गुना बकस ज्यो सारा ।
मीरां तो चरणन की दासी तुम बिना नैन दुख्यारा ॥[३]

● ● ●

रांम जी मिलावै तो फर मिलेंगे मिल विछड़ो मत कोई हो ॥
लगन लगी जब लाज कहाँ रही निंद्या करो सब कोई ।
प्रीत करी मैं सुख के कारण प्रीत किया दुख होई ॥
आप तो जाय विदेसै बसे हो मिल्लण किमी विध होई ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हूंण मतै सो होई ॥[४]

---

१ अनूप स० पु० लालगढ़ (बीकानेर) हस्तलेख स १७० से सकलित ।
२ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ११३ सकलित ।
३ ,, ,, ,, , ,, ,, हस्तलेख स० ११२ से सकलित ।
४ राजस्थान शोध सस्थान चौपासनी, जोधपुर हस्तलेख स० ७१४३ से सकलित ।

१० भावासक्ति—

राम दिवानी हो गई मैं तो राम दिवानी हो।
भावै लोक हसी करो, मेरे मन मानी हो ॥
लोक कुटुब परवार तज्यो लेहों चात्रग पानी हो।
स्वात बूद रघुनाथजी तन सू ललानी हो॥
प्रेम सुधारस सीचता नही मैं ध्यू अधानी हो।
गावे मीरा व्याकुली हरि हाथ बेकानी हो ॥[1]

मीराबाई के ये पद अधिकांशत बीकानेर और जोधपुर के प्राचीन हस्तलेख सग्रहो स छिटपुट प्राप्त हुए हैं। राजस्थान मे अनेक बृहद् ग्रथागार अभी तक अनालोडित हैं। सभव है उनक मथन स मीरा के कुछ और पद प्राप्त हो जिनसे रामानन्दीय सम्प्रदाय के भक्तो तथा रामभक्तिधारा से उनके सम्बन्ध पर नया प्रकाश पडता हो।[2]

---

१ रा० शो० स० चोपासनी (जोधपुर) हस्तलेख स० ८२९१ से सकलित।

२ श्री कल्याण सिंह शेखावत ने इनके सकलन मे प्रशसनीय प्रयास किया है। देखिये उनका शोध प्रबन्ध मीराबाई के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

नामानुक्रमणिका

अ

अजनी नदन शरण -२८०, २८५ २८८

अकबर--४६, १३४, १३५, १३६, २३२

अकबरपुर—१६१

अख्तरनगर—१६१

अगस्त्य सहिता--२६८

अगायरि—(मिथिला) ३०८

अग्रअली--(अग्रसहचरी) ८०, ८२

अग्रदास--२८, ३४-३८, ६६ ७० ७८ ८२, ८४, ६५ १३८ २५८, २६०, २७३, २७४ २६४ २६५ २६६, ३००

अग्रदास पदावली--परि० १

अग्रमागर—८२

अग्रस्वामी—८२, ८३

अणिमा सिंह—१७४

अध्यात्म रामायण--१५१ २०२, २६६ २७८

अनन्तस्वामी—२०

अनाद -२४, २७ ३२ २५८ २५८ २७३ २७४

अनूप स० पु० लालगढ़, बीकानेर--परि० २, ५

अब्दुल मगूर अनी खाँ सफदर जग—२३

अभयसिंह—३०८

अमदही—१४८

अमतौरि—(जनकपुर) ३०८

अमररामायण—३०१

अमानीगज—१४८

अमीरसिंह--२७६

अम्बाप्रसाद सुमन—२८३

अम्बिका प्रसाद वाजपेयी—२८४

अयोध्या—८ ११ १३ १४, १६, २० २३ ४३, ४७, ५१, १३५, १३८ १४३, १४७, १४८ १५१, १६१, १६३, १७३-१७६, १७८, १७६ २०३ २०७ २२०, २२१, २२४, २३० २४५ २८१, २६२, २८६ २८७ २८८, ३००, ३०१ ३०४, ३२३।

अयोध्या दिग्दर्शन—१४८

अयपचक—३०३

अलख रामदास--३०६

अवध प्रसाद--३२७

अवधी भाषा का विकास--२८६

अष्टयाम चरित—८०

अष्टछाप—१५३

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय--१५७

अष्टछाप परिचय -१५४

अष्टयाम वार्तिक—३००

अस्सीघाट—२३०

अहिर्बुध्न्य संहिता--१०

आ
आगरा—१६०
आत्मसंबंध दर्पण—३०१
आनंद कृष्ण राय—१३४ १३६
आनंदराम—१५१
आनंद लहरी (टीका)—२८०
आमेर—३२ ३३ ३८, २५८ २६०
आरा—३०७
आनंददार स्तवन—१५ १६
आसफुद्दौला—१६०
आस्तिकाश्रम—१४८
इ
इंडक्स वर्बोरम आव दि तुलसी रामायण—२७८
इंद्रदेव नारायण सिंह—२८१
इसुआपुर- (छपरा) २८८
इस्त्वार दि ला लित्रेत्यार इंदुई ए इंदुस्तानी—२७८
इस्लामपुर (पटना)— ३०२
ई
ईश्वर प्रसाद नारायण सिंह—२८० २८७
उ
उज्ज्वल—उत्कंठा विलास—३०३
उडुपा—१८
उत्तरादिमठ—१८
उत्तरीभवानी—१४७
उदयभानु सिंह डा०— १६६ २८२ २८६
उद्दालक—१४८
उभय प्रबोधक रामायण—१४७ १४६ २६२
उमाडा- ४२
ऋ
ऋषिवन—३२७
ए
एच० एच० विल्सन—२७८
एटा—१३७
एम० जाज—२८४
एफ० एस० ग्राउज—२७८
एल० पी० टसीटरी—२८४
एशियाटिक रिसर्चेज—२७८
ए हिस्ट्री आव साउथ इंडिया—१७
ए हिस्टारिकल स्केच आव दी फैजाबाद तहसील—१६०
ए हिस्ट्री आव इण्डियन फिलासफी—२६८
ऐ
एनीराम—२८४ २८५
ओ
ओरछा—२८७
ओरियण्टल कांग्रेस—२७८
औ
औरंगजेब—१६१ २६२
क
कचनारी—३०८
कनक भवन—३२०
कन्याकुमारी—३०२
कबीर—२४ २७, २८ २६३, २६८ २७१ २७८
कमलकुँवरि रानी—१५६
कमला (नदी)—३०७
कमला सांकृत्यायन—२८५
कमियार—१४८

कल्याण--१६ ४२
कल्याण सिंह—परि० ६
कलिजित स्वामी—१८
कमलानंद—७१
कवितावली -१५८, १५६, १६०, २०६ २०८, २१० २१२, २१३, २१५ २२४ २३४, २३८, २४०, २४५ २४६ २४८ २५३ २५४, २८५ २६१, ३१२।
कस्तूरी गिरि ३०८
काठियावाड--३००
कार्तिक प्रसाद खत्री--२७६
कामद गिरि- ३२७
कामदराम--९७
कार्नेगी—१६७
कालिदास—८
कावरी—६
काशी—१८ २० २१ १४१, १५६, २०७, २२५, २३०, २३६ २८१, २६२, २६३
काष्ठ जिह्वा स्वामी--२८०, २८७ २६३ २६४
किला मुबारक--२३
किशारीलाल गुप्त—१४५
कील्हदास (कील्हस्वामी)-- २६, ३४, ३५ ३६ ३७ ४७ ७८, ८० २५८ २८५, ३०६
कुबेर स्वामी—१७
कुलशेखर—८ ११, १२
कुल्लू—(पंजाब) ३२
कुलियाग का यंत्रा रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन—२८४
कृपानिवास—३०८
कृपाराम- २६५
कृपासखी--३०५
कृष्ण--१३ २२३
कृष्णदत्त मिश्र--१४१ १४८
कृष्णदास--३१ ३३ ३४ ३६, २६०
कृष्णराम पयहारी—२७ २८, २६ ३१ ४०, ४२, ४७, ७८ ७६ ८० २५८ २५८, २७३ ३२६ ३२८
कृष्णमाचार्य—१३
कृष्णाचार्य--१६
कृष्णानंद रामसागर—८३
केकावली—१५२
केशवजी दडाली—७५
केसरीगिरि—३०८
केरिनट है फास—१३४
कटरा—१४०
कोठारी भरोहजी—१५१
कोद राम मंदिर—१६
कौशिकी नदी—३०७

ख

खरदूषण- ११
खलुरा -२६५
खमराम--२६५
खरानाद--१४०

ग

गंगाराम—२६५
गंडकी—३०८
गणेशानंद—२५८
गरीबदास—२७२, ३०१
गरुड़—१३

गलता—१६, २८, ३१, ३६ ४५ ५३, ७८ ८० २५८ २६५ ३२८
गाधी—२०५ २२७
गार्सा द तासी—२७८
गिरधर शर्मा चतुर्वेदी—२८२
ग्रियसन—१४५ १६८, २७८ २७६, २८१, २६५ ३०४ ३२३ ३२४
गीतगाविन्द—५३
गीतावली—१३६ १५८ १७३ १८५, २११ २१६ २२१ २५४ २७५ २८२ २८५ २६१
गीताप्रस—२८०
गुडहट्ठा ठाकुरबाड़ी (भागलपुर)—३०३
गुणरत्न काप -१७ २८२
गुरपरम्परा—४३
गुरुवम भारती ३०८
गाकुलदास--७१ ७३
गुनीनदी--३२७
गाकुलदास—७१ ७३
गाकुलपुर—१४८
गाघनी—१३८
गाण्डा—१३७ १४२ १४३ १४४, १४७ १४८ १५१ १५६, १६० १६३ १६४ १६८ २८१
गापीनाथ कविराज--१५४
गामतीदास--३०४
गारखनाथ—२७ २६ २६४ ३२५
गारखपुर—१४२ ३२५ ३२८
गारखबानी—२६
गारख सिद्धात सग्रह—२७३
गोमाइगज—१४८
गासाई चरित—१३८, १३६ १४०, १४३, १४४, १४६, १५२, १५४, १५६, २३० २७६
गावद्धन—२६६
गोवर्द्धन नाथ शुक्ल—१५७, २८१
गोविन्द—२६६
गाविन्दाचाय--१६
गोस्वामी तुलसीदास चरितामृतम—१४०
गास्वामी तुलसीदास का जीवन चरित—१५६
गौडीय वष्णव सम्प्रदाय—१६
गौतम चद्रिका—१४१ १४२ १४८
ग्यानकूप—३०६
ग्यान तिलक—२२ ३६
ग्यानदेव—२४
ग्यानलीला—२२ ३६
ग्यानवती त्रिवेदी—२८२
ग्यानी सत सिंह—२८० २८७
ग्यानेश्वर—२७२
ग्राम साहित्य—१६७ १७० १७७, १८०

घ

घनश्यामदास—३०८
घाघरा—१४२ १४५ १५१
घृताची कुण्ड—३०२

च

चतुभुजा जी—२६०
चद्रगुप्त--६
चद्रवली पाण्डेय--२८१
चद्रभान रावत—२८६
चद्रहास--१५१
चनहट--१४०

चरणदास—६८, २६५
चरणदास दासा—२८२
चादपाल (गद्दी)—४७
चित्रकूट—१४ ४१ ४७ १३५ १३६ १५८ २०७ २६३, २६७, ३०२ ३०६, ३०७ ३०८ ३२७
चिन्तामणि पाप—२७८
चिंतामणिदास—२६४ २८५
चिरान (छपरा)—२८४ २८५ २६८ ३००
चन्द्रागम—४२

छ

छपरा—२८८ ३०३ ३०४

ज

जगजीवन साहब—२७२
जगन शिरामणि मंदिर—२५८
जगदेवदास—१५१
जगदीशनारायण—२८४
जगन्नाथदास—२७२ ३०६
जगन्नाथपुरी—१८ ३०२ ३०७
जनकपुर—१७४ १७८ १८७ २११ २१३ २४८ २७५ २६३ ३०२ ३०५
जनगोविन्द—३०६ ३०७
जनहरिया—५३
जन्मेजय शुड--१४८
जम्बूद्वीप - १४८
जयपुर—२४ ३१ ४२ ४३ ४७ ७८ ७६, ८० २५५
जयपुर मंदिर (अयोध्या)—२८८
जलपुर—२६५
जमालपुर—२६५
जहांगीर—२३२, २५३
जानकी कुण्ड—३२७
जानकी गीत—५३
जानकी घाट—३०० ३०२
जानकी चरण—२८८, ३०८
जानकी जयन्ती—३०४
जानकीदास—१५० १५१ ३०६
जानकी मंगल—१५७ १६५ १६६ २१२ २१३ २१७ २२४ २४८ २८२
जाम्बवन—८
जायसी (मलिक मुहम्मद)—२७ १७६ २८३
जायसी ग्रंथावली—२८७
जालान—३०१
जीवाराम युगल प्रिया—२२ ८० २७३ २६५ २६८ २६६ ३०० ३०२ ३०६ ३०७ ३०८ ३२०
जे० एo कारपेण्टर—२८३
जे० एम० मर्फी—२८२
जोधपुर—४१ ८५ परि० ६
जौनपुर—१६१
ज्योतिमठ—२४

झ

झांपूदास—४१ ४३ ४५ ४६

ट

टिकारी (बिहार)--२६६, ३००
टीकमगढ़--२८३
टट्टी मगम—१४८

ठ

ठुरही—३२३

ड

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (गोण्डा)—१४२ १४५, १४६ १४७ १६०
डिस्ट्रिक्ट गजटीयर फर्रुखाबाद—१६१

त

ततारि—३०८
तजकिरतुल फुकरा—२५७
तपसाराम—३०३
तमसा नदी—३०१
तानसेन—४६
तारानाथ यागी—२८ ३३ २५८
तारी—२८१
तिरुपति—१० १६ ३०२
तिरुमलि शाह—१०
तिलाइ राज्य (रायबरेली)—३०१
तुलसी उद्यान—३०५
तुलसी का कथा शिल्प—२८३
तुलसी का काव्य दर्शन—२८३
तुलसी काव्य मीमांसा- १६६
तुलसी चरित--१३६
तुलसी का प्रगीत काव्य—२८३
तुलसी का सामाजिक दर्शन—२८२
तुलसी का समाज दर्शन—२८२
तुलसी की अलंकारयोजना—२८३
तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा—२८१
तुलसी की काव्य कला—२८३
तुलसी की दृष्टि में नारी— २८२
तुलसी के भक्त्यात्मक गीत - २८३
तुलसी की भाषा--२८६
तुलसी ग्रंथावली- १६७ १६८ २७५
तुलसीदास के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण -२८४
तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य—२८२
तुलसी-दर्शन—२८२
तुलसीदर्शन मीमांसा--२८२
तुलसीदास आधुनिक वातायन से—२८८
तुलसीदास (माताप्रसाद गुप्त)—१६६ १६६ १८४, १८७
तुलसीदास का अंतर्जगत - २८५
तुलसीदास आज के संदर्भ में--२८६
तुलसीदास और भारतीय संस्कृति—२८८
तुलसीदास (गोस्वामी)—२४-२७ ३० ३६ ४० ८२ १३७
तुलसीदास और उनका साहित्य—१५७
तुलसीदास और उनका काव्य—१५३ १६०
तुलसीदास के रामचरित मानस का मूलाधार व रचना विषयक समालोचनात्मक अध्ययन--२८० २८१
तुलसीदास और रामभक्ति सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मलयालम कवि एड्डुत्च्छन का तुलनात्मक अध्ययन--२८४
तुलसी मिश्रा (श्रीमती)--२८४
तुलसी शब्दकोश—२८७
तुलसी सतसई—२८२
तुलसी साहब--२७२
तुलसी साहित्य के बदलते प्रतिमान—२८६
तोताद्रि मठ -१४

त्रिभुवननाथ चाव -२८८
त्रिवर्णी सगम--२६७

थ

थियालाजी आव तुलसीदास--२८३

द

द क्लासिकल एज--८
दत्तसिंह, महाराज (गाडा)—१६०
दधीचि--३१
द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान--३२४
दयाराम (महात्मा)--३०६
दरावगज--१४८
दरियाबाद--१६१
दरियासाहब--२७२
दबिस्तानुल तवारीख--२५७
दशनामी (शैव)--३०८
दसरथ--२२० २४८
दासकवि--१३८
दासायदास १३७ १३८ १४४
दिक्लिया--१३६
दि रिलीजस पालिसी आव मुगल एम्परस--२६३
दिवाकर--८१
दिल्ली--१६०
दीनदयाल गुप्त (डा०)--१४७
दूलमदास--१६१ १६२
देवकीनन्दन साहब -२७२
देवकी नन्दन श्रीवास्तव--२८६
देवनारायण द्विवेदी--२८८
देवमुरारि--८१
देवराजाचार्य -१७
देवरिया--३५, ३२५, ३२७, ३२८
देवस्वामी--२६३
देवाचार्य--१६, २०
देवाजी--२५९ २६०
देवादास--२६५
देवानंद--२५६
देवी भागवत--१४७
देवेन्द्र सिंह--२८४
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता--१४१ १५३ १५८ १५६, १६३, २०१, २०६,
दोहावली--२०७ २०८, २०९, २१३, २१५ २१६ २१७, २२२ २२५ २२८, २३३ २३८, २४१, २४३, २४५, २४७, २४६, २५४, २७० २८२ २६१, ३१२
द्वादश स्नात--१६
द्वारकादास -३४

ध

धनीदास--२७२
धीरेन्द्र वर्मा (डा०)--१५३
ध्यानमजरी--३७ ७०, ८१, ८२, २७४ २६४, २८६।

न

नगवा--१४८
नचिकेता--१४८
नरयूदास--३०६
नददास--१५१ १५८ १५७
नददास प्रयागवासी--१५६
नदार--१४२
नम्मालवार--१०, २६८, ३०३
नरधारी -२८८ ३०६

नरसिंह (नरहरि)--१३९ १४२ १५१
नरहरि तीर्थ--१८
नरहरिदास- २४ १५७ २०३, ४६
नरहर्यानंद--२४
नरेन्द्रकुमार--२८३
नवनिधि--२७२
नवरहस्य प्रकाश--४७
नागरी प्रचारिणी पत्रिका--१५३
नागरी प्रचारिणी सभा काशी--२६९ २९०
नाथमुनि--८ १३ १४ १५
नाथमुनियाग पटल--१४
नाथ सम्प्रदाय--२६५ २७२
नानक--२७२
नानकवाणी--२७२
नाभादास--१२ २० २८ ३१ ३५, ३७ ३९ ७३ ७५ ७९ ८२ ८५ २५८, २६० २६९ २७८ २७८
नामदेव--२५६ २५८ २६२ २६३ २७१
नामदेव के हिंदी पद--२५७, २६३
नारायण महात्मा--३२५
नासिक--३६
निम्बाचार्य रामसख--१८, ३२२, ३२३
निर्मलीकुण्ड--३०२
निराला सूर्यकांत त्रिपाठी--२७६
निपनिया--२६८
नीमपार--१३८ १४० १४९ २८८
नूरजहाँ--२५३
नृत्यराघवमिलन--१८
नृसिंह - १३
नृसिंहाचार्य - १७
नेपाल--३२७
नेहवली--२९७
नेह प्रकाश--७०
नौ आही - ३०२

प

पचगगा घाट--२०
पंचवटी--१३६, ३०२
पंचस्तवी--१७
पंडित पुरवा--३०१
पांचरात्र--९
पुंडरीक--१५
पचारी--३०२
पटना--३०३ ३०४
पटरगा--१४८
पद मुक्तावली--४१ ४२ ४८ ४९ ५३ ६८ ७५ ७७, ९५
पदावली--८२ ८५ १३८ ३००
पद्मावत--१७६
पदमावती शवनम - २५८, २६०
परमानंददास--२९५
परशुराम चतुर्वेदी--परि० ४
परसा (सारन)--३०३
पराशर भट्ट--२८२
पराशर भट्टाचार्य--१७
पारस भाग--३०३
परिशोध--१६७, १८४
पसका (गोण्डा) - १४० १४२ १४३ १४४ १४५ १५१ १६३
पलटूदास--२७२
पलटू साहब की शब्दावली--१६२

पावना मगल—१५७ १६५ २१२
२१३ २१७, २१८, २८२
पिपरा—२८८
पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—७३ १५४
पुखरनी—२८८
पुरुषोत्तमाचार्य -१६, २०
पुष्कर (राजस्थान)--२८, ३२
२८४
पूर्णनाम--३०७
पूर्णवरागी—८१
पूर्णिमा--३०२
पृथ्वीराज—३२ ३३
पृथ्वी सिंह -२८, ३८
प--१०
पम्मल त्रिम्मुडि--१३
पकौली—३२६ ३२७, ३२८
प्रपन्नामृत—१० ११, १३-१८
प्रभात—७० २५६
प्रभावती गुप्ता—६
प्रभुदयाल मीतल -१५३ १५५
प्रयाग--२० ३६
प्रयागदत्त -२६६
प्रयागदास--४८, २६६ २८७
प्रयागदास जगी—८१
प्रसादराम—३०७
प्रसादीराम—३०७
प्रियादास—१७ १८ २१ ७६
१५६, २६० २८८
प्रेमनगरी— ३०८ ३०९
प्यायगार -१०

फ

फलाहार मठ—१८
फल्गु नदी -३०२
फेलेन—डॉ० ३०३
फैजाबाद--२३ १४८, १६१

ब

बक्सर—३०५
बगौरा—३०४
बघनगरी—२८८
बडजियर मठ—१४
बड़हलगंज—३२६ ३२८
बडागाव—४६
बदरिकाश्रम— १८
बदरीनाथ -२८८
बनादास—१४७, १४८ १४९, १६१
बरवरामायण—१५८ २५२ २८२
बराही—२८८
बरेली— १५६
बलदेवराम 'चन्द्रमणी'- ४७
बलदेवप्रसाद मिश्र -२८२
बलदेव उपाध्याय--२५७
बनवाटोला—३०१
बेलहा—३०६
बलिया—२८१
बस्ती—१३७ १४८ १५६
बहराइच—१६३ १६८ २१५ २४५
बानर—१६१
बाबूराम सक्सेना—डा० २८६
बारानकी—१६१, १६८
बालकृष्णदास महन्त--३०७
बालकृष्ण देव तलग--२८७
बालकृष्ण नायक बालअली--४१ ७०
८१
बालाजी--१४

बालानद—३६ ७१, २६८
बावरीपथ—२४
बिजराम—७१ ७४
बिटाय—३०४
बिहरव—२६८
बिहहर—१६१
बिपट्टी भवन—३०५
बिसनपुर—२८८
बिहारकुण्ड—(जनकपुर) ३०१
बीकानर -परि० ६
बीठलदास—७१ ७२ ७३
बुद्ध—२०१ २२३ २२५
बुद्धचरित—२८७
बूदीराम- ३०६
बेनीमाधवदास -१३८ १४१ १४३, १४४ १४५, २३० २३१ २७६
बकुठपुर—३२६ ३२८
बजनाथ कूम बहरि—१५६ २८० २८७
बजनाथ सिंह—२८२
ब्रजपुरी—७१ ७४
ब्रजरत्नदास—२८५
ब्रजमोहन—२६५
ब्रह्मसम्प्रदाय -१३ १८
ब्रिटिश म्यूजियम—१३४

भ

भक्तदास- १२
भक्तमाल -१२ २० २४ २८ ३१ ३२ ३४ ३५ ३७ ३६ ७१, ७३ ७६ १५१, १५३ १५६ २२२ २७६।
भक्ति सुधाबिन्दु स्वाद तिलक—३५
भगवती प्रसाद सिंह—२८१
भगवान वत्सदास -२७२
भगवदाचाय—२५६
भगवन्नारायण—८१
भविष्यपुराण—२३
भागवत—२७ २७६
भागवतदास—२८५
भागवतदास खत्री- २७६
भागवत सम्प्रदाय—२१७
भागवती सिंह -२८३
भानुकवि- १६०
भारत कला भवन—(काशी) १३४, १३५
भारतीय विद्यामदिर- (बीकानेर) २६१
भावप्रकाश टीका -१५ २८०
भाषा काव्यसग्रह—१३८ १४३
भिक्षुक राम—३०६
भीखमदास बाबा—३०४
भीम -१६
भूत्तार—१०
भृगुआश्रम- (बक्सर) ३०२
भोलानाथ तिवारी -२८७
भ्रमरगीत—२७

म

मगनीराम -२६५, ३०७
मडुआ—३०८
मखदूम शाह जूरन गारी—१६१
मठिया—३०८
मणि गिरि—३०८
मत्स्यपुराण—२४६
मथुरा—३४, १४० १४३ २५८, २६२

मधुर कवि—११
मधुर मंजुमाला -३०३
मधुसूदन सरस्वती—१५४
मधुराचार्य—४७ ५३, २८५
मध्वाचार्य—१३, १८, १६
मध्व सम्प्रदाय १८, १६
मध्वाश्रम -१८
मध्वविजय--१८
मनवर—१४८
मनारामा--१४८, १४६
मनहरदास—२८४
मलीहाबाद—१४०
मलूकदास—२७२, ३०८
महाकवि भानुभक्त के नेपाली रामायण और तुलसीदास के रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन -२८४
महाभारत--६ १४८ १७२ २५२
महायान -२६६
महन--३२५
महादत्त शुक्ल—१३८ १४३, १४४ २७६
महेश्वर बख्श सिंह -१३६
महेश्वर गागज चिकित्सा—१४१
महेश्वर रसमार ग्रंथ -१४२
महेश प्रसाद चतुर्वेदी--२८२
माडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान -१४५
माताप्रसाद गुप्त -१४३ १४४, १५३ १६६ १७५ १७७ १८२ १८४ १८७ २८१ २८२ २८५ २८६,
माधवदास-- २८५
माधापुर - (मिथिला) २८७
मानस का सामाजिक दर्शन--२८२
मानस परिचर्या—२८० (परि०)
मानस भूषण--२८०
मानस पीयूष टीका—२८०, २८८
मानसार--२८०
मानस सदन धारा—२८७
मानसिंह—३६ २६०
मामा प्रयाग दास—३२०-३२३
मिर्जापुर—२८८
मिथिला--८१ १७३, १७३ १८३ २६३ २८५, २६६, २६८, ३०१ ३०५, ३०८ ३०६
मिथिलादास—३०७
मिथिलाविलास—४८, २६३, २६५ २६६, ३०१
मिथिला बिंदु -२६४
मिथिला माहात्म्य--३०६
मिसरिख—१४०
मिहिरकुल—१०
मिहीलाल—२६६
मीरा—२५ २५८ २६३
मीरा पदावली— २६२
मीराबाई-- (डा० प्रभात) २६०
मीरा वृहद पद संग्रह--२५८, २६०
मीराबाई—परि० ६
मीरामाधुरी--परि० ४
मुंशीराम राज--३०४
मुजफ्फरपुर--३०८
मुसलमान हुक्मरानों की मजहबी रवादारी--२५७
मुहम्मदशाह—२३
मेघदूत--८

मथिली लोकगीत--१७४ १७८, १८३
मथिली रहस्य पदावली—३०२
मैसूर—१८
मैहर- १६
मादलता - ३०८
मारिया--३०८
मारापन्त--१५२
माहनन्दास--२०७
माहन शुक्ल—१३८, १३६
माहन सिंह -२५७
माहिनी श्रीवास्तव--२८७
मौजीराम- २६५

य

यशाधमन -१०
यादवाचल--१६
यामुनमुनि—१५ १६
यारीमाहव--२७२
युगलमजरी---४७
युगलानन्य शरण हमलता -१६१
१६२ ३०२ ३०३
योगेन्द्र प्रताप सिंह--२८३
युगेश्वर—२८६
योगचिन्तामणि- २२ ३६
योगप्रवाह -२१ १५५
योगमार्ग- (सारा) १५८

र

रगाचाय -१४
रघुनाथदास--३०५
रघुनाथदास रामसनेही— २६२
रघुनाथाचाय--१४
रघुराजदास—८१
रघुराजशरण शर्मा—२८८
रघुराज सिंह—७६ ८०
रघुवर गुण दपण--३०३
रजनीरात नारती—२८१
रज्जब—२७२
रत्नसागर-- ३०५
रमन दुबे--२६८
रमानाथ त्रिपाठी--डा० २८४
रमण कुतल मेघ डा०—२८६
रवनाही (फैजाबाद) १४०
रशीदुद्दीन मालाना -२५७
रसिक अली (जनक राजकिशारी
शरण)--८१, ३००
रसिक सम्प्रदाय—५३ २७६
रहस्य पदावली १६२
राघवदास - २० ३०८
राघवानन्द--१८ २० २१ २२ ७७
२६२ २६८ २६६
राजगिरि—८
राजपति दीक्षित—२८६
राजयोग-- २७ ३६ ३८ २७४
राजराघवदास--३०० ३०१
राजस्थान प्राच्य विद्या शाध प्रति-
ष्ठान—६५ परि० ३
राजस्थानी शाध संस्थान चापासनी
(जाधपुर) २६२ परि० १ २ ३
४ ५ ६
राजापुर—२८१
राधाकृष्णदास—२७६
राधाकृष्ण मंदिर—(पटना) ३०८
राधावल्लभ सम्प्रदाय- १५८
रांगेय राघव--२८३
राजकुमार पाण्डेय--२८३

राम अवतार—२८३
राम अवधदास—१५१
रामउदार सिंह—३०२
रामकवि दौलत राम—१४२
रामकिंकर—२९९
रामकिशोर शुक्ल—२८१
रामकिशुनदास—१५१
राम की शक्ति पूजा—२७६
रामकुमार वर्मा डा०—२८२, २८५
रामगुलाम द्विवेदी—१६८, २८१
रामगुलेला—२६५
रामघाट—४३
रामचंद्रिका—६५, २७६
रामचंद्रिका और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन—२८४
रामचंद्र शुक्ल—२५, १३७, १५३, १६८, १८७, २८५, २८७, २८८
रामचरणदास—८१, १४३, १५०, २६८, २८८, २८०, २८७, ३००, ३०३
रामचरित चिंतामणि—२७६
रामचरितमानस—२४, ८०, १४३, १५०, १५४, १५७, १६६, १७२, १८१, १८५, १८६, १८८, २०५।
रामचरितमानस का काव्य शास्त्रीय अध्ययन—२८३
रामचरितमानस का तत्वदर्शन—२८२
रामचरितमानस की काव्य कला—२८३
रामचरितमानस की वर्णानुक्रमणिका—२८७
रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत—२८१
रामचरितमानस-वाग्वैभव—२८३
रामचरितमानस में भक्ति—२८३
रामछटा—१४६
रामजानकी मंदिर (पटना)—३०६
रामज्यानार—८२
रामटहलदास—१४
रामतत्त्व सिद्धान्त—३०२
रामदत्त—२१, ३०१
रामदत्त भारद्वाज डा०—२८१, २८२, २८५
रामदयाल—३०८
रामदास कायस्थ—३०७
रामदीन सिंह—३०४
रामध्यान मंजरी—८२
रामनरेश त्रिपाठी—१५३, १५६, १६०, १६७, १७०, २८१, २८७, २८८
रामनवरत्न सार संग्रह—२६८
रामनाम माला—२६८
रामनिरंजन पाण्डेय—२८३
रामपट्टी—२६८
रामपुर—१४०, १५१, १५३, १५७
रामप्यारी देवी—३०४
रामप्रकाश अग्रवाल—२८४
रामप्रसाद—१४३, ३२५
रामप्रसाद विन्दुाचार्य—८१
रामप्रसाद शरण—२८८
रामप्रियाशरण प्रेमकली—२६७, २८८
राम प्यारी मुरत—२८१
रामबालक दास—२८५

रामभक्ति और हिंदी साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति—२८३
रामभक्ति परम्परा और साहित्य—२७२
रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—३६ ४१ ४६ ४७ ७१ ८१, २६६ ३२०
रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—२८२
रामभक्ति शाखा—२८३
रामभारती—२१
राममिश्र- १५
रामरक्षा—२६६
रामरक्षा त्रिपाठी—१४८, ३०५
रामरक्षा स्तोत्र—२२ ३६
रामरसिकावली—८०
रामरासदीपिका—३०१
रामलला—२८८ ३०६
रामलला नहछू १५७ १६५ १८८ २१२ २१७ २४७, २४८ ८८२
रामलाल सिंह—२८३
रामशंकर शरण—३०५
रामशरण—३०१
रामशरणदास -२६८
रामशलाका—२१६
रामसिंह महाराज- ४७, २६५
रामसेवक -२०७
रामस्वरूप ज्योतिषी—३०१
रामाज्ञा प्रश्न—१५८ २१६ २५६ २८२
रामाजी—३०४
रामानंद—२१-२४, २७, ३१, ३६, ३६ ७१ ७५ २२३ २५६ २५७, २५८, २५८ २६२, २६५ २७० २७१
रामानंद की हिंदी रचनाएँ—२३ ३८ २६६
रामानंद सम्प्रदाय—१५१, १५४ २५८ २६० परि० ६
रामानुज -८ १४, १६, १७, १६ २२, २२३ २६५ २६२
रामानुजदास—३०६
रामानुज रूपसरस—४३ ४६ ४७
रामानुज सम्प्रदाय—२६८
रामायण-टीका—१५०
रामायण मानस प्रचारिका टीका—१५० १५२
रामायणेतर संस्कृत काव्य और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन—२८४
रामावत सम्प्रदाय—१८
रामार्चन—३०७
रामार्चन पद्धति—२२
रामाष्टयाम—८२
रामेश्वर भट्ट—२८०, २८८
रामेश्वरी—२६५
रीवा—७६ ३०२
रुद्रयामलतंत्र—१४६ १४६
रुद्र सम्प्रदाय—१३
रूपकला—२४ ३५ ७६ १५६
राप्ती—(नदी) ३२५
रैदास—२६० २६१ २६२
रैपुरा—३०६

रवासा (राजस्थान) ७८, ७६, ८०, २५८, २६४

ल

लक्ष्मण -१६
लक्ष्मणकिला—२३
लक्ष्मणदास—४६
लक्ष्मीकुमार ताताचार्य—१७
लक्ष्मीनारायण—१३
लक्ष्मीनारायणदास पयहारी--३५ ३२५ ३२६
लखनीपुर—१४८
लखनऊ—१४०
लघुकलव—७१ ७५
लवकुश—१३
ललिताप्रसाद दुबे--१५३
लाडलीलाल शरण -३०१
लाल गुलाम--७१ ७५
लाला भगवानदीन- २८५ २८८
लाला सीताराम--२८५
लोकाचार्य—१७, १६
लोमपाद—२४६
लोहागल सीकर—४७

व

वशीलाल महात्मा--३०८
वचनदेव कुमार—२८३
वरग्राम (बिहार)--३०६
वरवरमुनि स्वामी--१७
वल्लभ सम्प्रदाय--१५८
वागीश दत्त पाण्डेय -२८७
वामन १३
वायुपुराण -२४६
वारकरी सम्प्रदाय २०२
वाराह मदिर--६, १५१
वाल्मीकि—१५४
वाल्मीकि आश्रम—१४०
वाल्मीकि रामायण—८ ११ १४, १५, १६ १५१, १७३, १७४ १७६, १८५ २०२ २४८
वाल्मीकि रामायण अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन- २८४
वाल्मीकि और तुलसी का साहित्यिक मूल्यांकन—२८४
वासुदेवदास--३२१ ३२
वासुदेवशरण अग्रवाल—१३४
विजयनगर—१७
विजयाटीका—२८०
विजयानंद त्रिपाठी—२८० २८५, २८८
विट्ठलदास—१५२
विट्ठलपंत--२४
विद्याधर—३२
विद्यामिश्र—२८४
विनयकुमार—२८३
विनय पत्रिका—१३६ १५८ १५६, १८६ १९० १९२ २०९ २१०, २१८, २१८ २२७ २२८ २३४ २३६ २३५ २३८ २४१ २४२ २४३ २५४ २८२ २८५ २६१, ३१८
विनयपीयूष—२८८
विनायकराव—२८०, २८८

विनायकी टीका—२८०
विनाद स्वामी—६६
विनोवा—२०५
विभीषण ६ १५ २२५
विमला--(नदी) ३०६
वियागी हरि—२८५ २८८
विरूपाक्ष राजा—१७
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—१४२ २८१, २८२ २८५ २८८
विश्वनाथ सिंह महाराज--३०२
विष्णुकाची—२२३
विष्णुशमा—२८२
वीर कवि—२८०
वीरशवमन—१७
वृदावन—१५३
वृहत्संहिता—८
बृहद ब्रह्म संहिता—१३
वेंकटाचल—१० ११ १६
वेदान्ताचाय—१६
वेन—२७८
वैराग्य संदीपनी—१५८ २२८ २८२
वैष्णवदास—२६६
वैष्णवमताब्ज भास्कर—२२ २५६ २५६ २६२
वैष्णविज्म शविज्म— (भंडारकर) १८

श

शकरदास—२६८ २८८
शकराचाय—१५४ २२३
शठकोप आलवार—६ १० ११ २६८
शम्भूनाथ चौबे—२८५
शरणागति गद्य—१७
शाता—२४८
शाण्डिल्य—१४२
शारदाराम उदासीन—२७२
शालिग्रामी (नदी)—३०७
शार्लोत वोद वील—२८०
शाहजहाँ—१६१
शहाबुद्दीन गारी—१६१
शिवकाची—२२३
शिवकुमार शुक्ल—२८४
शिवनंदन सहाय—२८१
शिवपूजन सहाय—२८६
शिवराम पाण्डेय—३२५
शिवलाल पाठक—२८० २८७
शिव व्रतलाल—२७२
शिवसिंह सरोज—१०८ १४४ २७६, ३२४
शिवसिंह सेंगर—१३८ १४४, २७६, ३२३ ३२४
शुकदेवलाल मुंशी—२८०, २८७
शृंगीऋषि का आश्रम—१४८
शृंगवेरपुर—३०८
शृंगाररस रहस्य--३००
शृंगार सागर—८२
शेष—१६
शेष पंडित—१५४ १५५
शेष सनातन--१५४ १५५
शैलपूर्ण स्वामी--१६
शैलेशस्वामी—१६
श्यामाराम चतुर्वेदी—२६८
श्यामदास—२६४ २६६
श्यामपुर—१५३, १५७

श्यामसुंदरदास—२७६ २८१, २८५, २८८
श्रीकांतशरण—१७३, १७४, २८०, २८५, २८६
श्रीकृष्ण गीतावली—१५८, २८२
श्रीधर सिंह—२८५
श्री भक्ति प्रकाशिका—३२६
श्री भगवान—३०७
श्रीभाष्य—१६
श्रीमद्रामानंद दिग्विजय—२१
श्रीमानस अभिप्राय दीपक—२८०
श्री रंगदेव—१६
श्रीरंगधाम—८
श्रीरंगपुरी—३०२
श्रीरामरहस्य त्रयाथ- १० १४ १५
श्रीराम षडक्षर प्रपत्ति स्तोत्र--१५
श्री वचनभूषण—१७
श्री वष्णव सम्प्रदाय--६ १३ १५ १६ १६ २३१, २५७, २६५, २७२
श्रीशकुमार- २८०, २८२
श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश - ३०३
श्री स्वामी गोसाइं तुलसीदास के चरित्र--१४४

स

संगीतराग कल्पद्रुम- ८३
संत साहित्य मण्डल (बीकानेर)-परि० ३
संत नामदेव की हिंदी पदावली--२७१ २७२
संतोषमणि--३०८
सदीला—१४०
सपदकुमार—१६
संतवचनावली- ३०३
संतवाणी संग्रह--१६२
संत सिंह पंजाबी--२८०
सआदत अली खां--१६०, २३
सत्यनारायण नामा--२८३
सदगुरुशरण अवस्थी--२८१, २८५
सदाशिव संहिता—१०, २६८ २७४
सनक सम्प्रदाय—१३
सफदरजंग अब्दुल मंसूर अली खा—२३
समथ गुरु रामदास—२२२
समस्तीपुर—३०७
सय्यद मसूर वेहानी—१६१
सय्यद सवाहुद्दीन अब्दुल रहमान—२५६
सय्यद सालार मसऊद गाजी - १६१, १६२ २१५, २४५
सरया (छपरा)--३०५
सरयू—११, ४३, १४२
सर्वसिद्धांत संग्रह -१५४
सहजराम—३०७
सहस्त्रगीति—१०
सिकंदरपुर—१४८
सिमरदेही—२६८
सिद्धान्ततत्त्व दीपिका—७०
सिद्धांत तिलक—२८०
सिद्धान्त पंचमात्रा—२१
सिद्धान्त पटल—२२
सिद्धान्त पंचमात्रा—२६८, २६६
सिद्धांत मुक्तावली—३०१
सियावार—१५

४७
सिपाग—२०४
सियारण—४५
सिसिनी—३०८
सीकर—२८५
सीताराम—१३
सीताकुण्ड—१४८
सीतापुर—१३८ १४०
सीताप्रसाद—२०६
सीतामढ़ी—३०५ २०६
सीताराम कपूर—२८१
सीताराम चतुर्वेदी—२०३
सीताराम स्वार्ह सदी—३०६
सीतारामशरण भगवानप्रसाद रूप-कला—२०३ ३०४
सीतारामीय हरिहर प्रसाद—२८० २८७ ३०२
सुखराम गिरि—३०८
सुग्रीव—८
सुदरदास—२७२
सुदामापुरी—३००
सुधाकर द्विवेदी—२७६
सुरसरि--३०२
सुरसुरानद--७१ ७५, ३०६
सूकरखेत--१३६ १४०, १४२, १४४, १४६ १५१ १५६ १६३, १६४ २०८ २४५
सूरकिशार--२६५ २६७, ३०६ ३२० ३२२, ३२३ ३२४
सूरजपाल—३१
सूरदास--२५, २७ १६५ २४५ ३०६
सूमकुंड—१४८
सेंट मार्टिन्गाम—१४४
सैन्पुर (मिथिला)—३०७
सोरो - १३७ १४४, १४३ १४७ १५० २८१
सोरों सामग्री पर एक दृष्टि १४७
स्वदेश--३०६
ह
हंसराज—३०१
हजाराराम मन्दिर - १७
हजारीप्रसाद द्विवेदी - १४३
हडप्पा - २६४
हनुमान--६ १३ १४ १५ १८, १८
हनुमानघाट—१८
हनुमान प्रसाद पोद्दार--२८०, २८८
हनुमान बाहुक--२२२, २३६
हनुमान मन्दिर -२६१
हनुमान हवेली -८१
हरद्वार - ३२७
हजारीलाल शर्मा--२८५
हरमाला—४४, ४६
हरिदासपास—३०६
हरिजापास—३०६
हरिदासी सम्प्रदाय--१५८
हरिद्वार--३६
हरिनाम सकीर्तन -३०४
हरिभक्त रसामृत सिन्धुवेला—२०
हरिलाल—३०८
हरिवंशपुराण २४६
हरिसहचरी हरिया सखी--५३

हरिहरनाथ हुक्कू डा०—२८३
हरेराम - ३०६, ३०८
हरेराम जीवन--३०६
हर्याचार्य—४१, ४२, ५३
हर्षभारती--३०८
हर्षवर्धन—१०
हवेली—१५६
हस्तिनापुर--२८१
हाजीपुर—२८१
हिंगलाज—२६४
हितहरिवंश—३०८
हितोपदेश उपपाणवावनी —८२
हिंदी वैष्णव भक्तिकाव्य तथा काव्य सिद्धान्त -२८३
हिंदी साहित्य—१५३
हिंदी साहित्य का इतिहास—१३७, १५६
हिंदी साहित्य को मराठी संतों की देन—२५७ २६८, २७२
हिंदुस्तान का मध्यकालीन साहित्य विशेष रूप से तुलसीदास - २७८
हुमायूं--२३२
हृदयराम—१४०
हेमानंद—४२ ४६
